दहाड़ता सूर्य

आचार्य श्री रामलालजी म.सा.

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

दहाड़ता सूर्य

आचार्य श्री रामलालजी म.सा.

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, 2019 प्रतियाँ 5,000

मूल्य : 100/–

ISBN 978-93-86952-71-4

प्रकाशक :
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत– श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड
गंगाशहर, बीकानेर 334401 (राज.)
दूरभाष : 0151-2270261, 3292177, 0151-2270359
visit us : www.sadhumargi.com

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड
बीकानेर 334003 (राज.)

प्रकाशकीय

संसार के अधिकांश प्राणी निरंतर अपने भौतिक विकास में लगे हुए हैं। भौतिक विकास की लालसा उन्हें आध्यात्मिक विकास से दूर कर दे रही है। इस लालसा में वह इस सच्चाई को विस्मृत कर दे रहे हैं कि आध्यात्मिक विकास के बगैर भौतिक विकास की हर मंजिल अधूरी है।

भौतिक विकास की होड़ में दिन-रात लगे लोगों में से कम ही लोग इसके पीछे सूर्य की भूमिका को समझ पाते होंगे। वे अपने विकास का सारा श्रेय अपनी मेहनत, अपने ज्ञान आदि को देते हैं। कम ही लोग इस बात को समझते होंगे कि संसार का सम्पूर्ण विकास सूर्य की सत्ता पर निर्भर है।

विकास में सूर्य की भूमिका को समझने के लिए हमें अपने से ऊपर उठकर देखना होगा। अपने से ऊपर उठकर देखने पर ज्ञात होगा कि सूर्य की शक्ति के बिना पौधे नहीं उग सकते, वायु का शोधन नहीं हो सकता, जल की उपलब्धि नहीं हो सकती। यही नहीं, सूर्य की शक्ति के बिना पृथ्वी का जन्म नहीं हुआ होता। जगत् की सत्ता ही सूर्य पर अवलंबित है। जिस तरह भौंरा अपना जीवन रस प्राप्त करने के लिए फूल के चारों ओर मंडराया करता है, उसी प्रकार पृथ्वी अपनी जीवन रक्षा की सामग्री को प्राप्त करने के लिए सूर्य की परिक्रमा किया करती है।

हमारे भौतिक विकास में जो भूमिका सूर्य की है, आध्यात्मिक विकास में वैसी ही भूमिका आचार्यप्रवर की है। सूर्य अपनी रश्मियों से जग को प्रकाशित करता है तो आचार्यप्रवर हमारे भीतर ज्ञान का उजियारा फैलाते हैं। सूर्य किरणें हमें कई रोगों से बचाती हैं तो आचार्यप्रवर गलत राह पकड़ने से सावधान करते हैं। सूर्य शारीरिक चिकित्सक है तो आचार्यप्रवर आध्यात्मिक पोषण देते हैं। सूर्य अपना प्रकाश बिना किसी भेदभाव के सबको देता है तो आचार्यप्रवर के लिए भी सब एक समान हैं।

जिस तरह सूर्य नभ की शोभा है, सिंह वन भी शोभा है उसी प्रकार आचार्यप्रवर जिनशासन की शोभा हैं। सूर्य ग्रह नक्षत्र का राजा है, सिंह वन का राजा है तो आचार्यप्रवर चतुर्विध संघ का नेतृत्व करते हैं। सूर्य किरणें

बहुत दूर से पृथ्वी पर आती हैं, सिंह की दहाड़ पूरे वन क्षेत्र में गूंजती है, उसी प्रकार आचार्यप्रवर की ओजस्वी वाणी लोगों के अंतर्मन तक पहुंच जाती है। आचार्यप्रवर रामलाल जी म.सा. सूर्य की तरह लोगों को आलोकित करते हैं तो सिंह की तरह निर्भय, निडर विचरण करते हुए नित्य नया रास्ता दिखाते हैं।

आचार्यप्रवर श्री रामलाल जी म.सा. 2019 के चातुर्मासार्थ सूर्यनगरी जोधपुर में विराजे थे। वहां उन्होंने लगातार चार महीने तक अपनी ओजस्वी वाणी से लोगों को संसार के सत्य/असत्य से परिचित कराया।

वहां लगातार उनके व्याख्यान चले। उन्हीं व्याख्यानों को संकलित कर हम पुस्तक के रूप में '**दहाड़ता सूर्य**' के नाम से प्रकाशित कर प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें संकलित व्याख्यान पूरे चार मास के नहीं हैं। ये कुछ दिनों के ही हैं।

सिंह की दहाड़ तो पाठकों ने सुनी होगी। अब वे सूर्य की दहाड़ सुनें। सूर्य की दहाड़ की तरह फरमाये गये इन व्याख्यानों को पढ़कर जो मनन करेगा और इसमें कही गई बातों को अपने जीवन में उतारेगा वह निश्चित ही सिंह की तरह निर्भय बनेगा और सूर्य की तरह जगत् के लिए उपयोगी बनकर अपना आत्म कल्याण करेगा।

पुस्तक के प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्य श्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्य श्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहो भाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हे चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**दहाड़ता सूर्य**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

अर्थ सहयोगी

कुशलराज गौतम चंद कोठारी
ब्यावर–चेन्नई

॥ सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें॥

अनुक्रमणिका

1. ज्ञान को जीया जाय 7
2. तीन सूत्र-तीन रत्न 21
3. साँप से खेलना 33
4. लघुभूत विहार प्रशस्त 43
5. धरा धैर्य की है सुखकार 54
6. शेर बन शूर दहाड़े 65
7. शस्त्र नहीं निश्शस्त्र 79
8. बाराती नहीं दूल्हा बनें 94
9. अवसर जानो– सफल करो 107
10. ज्योति और ज्वाला 122
11. बदला नहीं– पर बदल गया! 132
12. जलता जाए बोध दीप 144
13. जय-जय भारत देश महान् 156
14. मन का मोती भिदे नहीं 178
15. जे आचरहिं ते नर न घनेरे 196

1

ज्ञान को जीया जाय

संसार 4 गति रूप में है–नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति। जीव इन चारों गतियों में संसरण करता रहा है, भ्रमण करता रहा है। भ्रमण कहना ठीक नहीं रहेगा। भटकना कहना ज्यादा ठीक लगेगा। भ्रमण करने का मतलब घूमना है, टहलना है। किन्तु यहां वह भटकता है। बिना मार्ग के चलना भटकना है। इस चतुर्गति संसार में जीव भटक रहा है। उसको मार्ग प्राप्त नहीं हुआ।

यदि हमसे कोई पूछे कि मोक्ष जाने के लिए कौन-सा मार्ग है, कौन-से हाइवे पर चलेंगे, कौन-सी रोड पर चलेंगे, किस मार्ग पर या ओर गाड़ी दौड़ाने पर मोक्ष का मार्ग मिल जाएगा, तो हम क्या बतायेंगे? हम यह कह सकते हैं कि 'सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग' सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, मोक्ष का मार्ग है। इतना तो हम बता देंगे कि वह मोक्ष का मार्ग है किन्तु मोक्ष के उस मार्ग का निर्माण कैसे हुआ। इस विषय में यदि कोई पूछे तो हम क्या बता पाएंगे? सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं किन्तु इसका निर्माण कैसे हुआ, इस पर चलना कैसे होगा? इस बात पर हमें विचार करना होगा।

एक बार भगवान् महावीर से प्रश्न पूछा गया कि नाणसंपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? भगवन्! ज्ञान से संपन्न जीव को किस फल की प्राप्ति होती है? यदि व्यक्ति को ज्ञान मिल जाए तो उसको क्या लाभ होगा? उससे उसको क्या फायदा होगा? भगवान् ने यह नहीं कहा कि ऐसा करेगा तो ऐसा होगा, वैसा करेगा तो वैसा होगा। भगवान् ने स्पष्ट कहा कि जिसको ज्ञान हो जाएगा, जो ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कर लेगा, 'नाणसंपन्ने णं जीवे चाउरंते संसार-कंतारे ण विणस्सइ' वह चतुर्गति संसार में भ्रमण नहीं करेगा। वह संसार में भटकेगा नहीं। यह कितनी स्ट्राँग बात है!

हम कहते हैं कि हमको मार्ग तो बताया गया किन्तु उस पर चलें कैसे? उस पर चलेंगे तभी तो मोक्ष प्राप्त होगा। यदि किसी को मार्ग का पता चल गया, ज्ञान हो गया तो वह चलेगा ही। यदि उसको ज्ञान हो गया है तो अब भटकने की बात ही नहीं है। वह चलेगा। संसार में भटकेगा नहीं। वह मंजिल को प्राप्त करेगा।

कुएं का पानी भी आपने पीया होगा और तालाब का पानी भी पीया होगा। दोनों के पानी में फर्क क्या है? कुएं के पानी में और तालाब के पानी में फर्क क्या है? हम कोई फर्क बता सकें यह बहुत कठिन है किन्तु एक बात हम ध्यान में लें कि तालाब में पानी बाहर से आया हुआ है और कुएं में उसके भीतर से पानी आता है। उसके भीतर से प्रकट होता है। कुएं को बाहर के पानी का, वर्षा के पानी का इंतजार नहीं होता कि वर्षा का पानी आएगा तो मैं भर जाऊंगा। तालाब को वर्षा के पानी की आवश्यकता होती है। बाहर के पानी की आवश्यकता होती है। यदि बाहर का पानी नहीं मिला और पहले का पानी भी सूख गया या उपयोग में आ गया तो उसकी जमीन में तड़क (दरार) आ जाएगी। जमीन जैसे समतल बनी रहनी चाहिए वह बनी नहीं रहेगी– जबकि कुएं का पानी खत्म नहीं होता, कुएं का पानी निरंतर बना रहता है। एक, तो यह पानी का फर्क है।

दूसरा, कुआं गहरा होता है और तालाब छिछला होता है। तालाब का एरिया बड़ा होता है जबकि कुएं का एरिया छोटा होता है। पानी किसमें ज्यादा मिलता है? कुएं में ज्यादा मिलता है या तालाब में? लंबा-चौड़ा तालाब खाली हो जाता है किंतु कुआं वर्षों तक खाली नहीं होता है। इसका क्या कारण है? इसका कारण स्पष्ट है कि तालाब में बाहर से इकट्ठा किया गया पानी है और कुएं में भीतर से प्रकट हुआ है।

वैसे ही बाहर से इकट्ठा किया गया ज्ञान, तालाब के पानी के रूप में संग्रहित होता है भीतर प्रकट होने वाला ज्ञान कुएं के पानी के रूप में होगा। हैंडपंप लगाने की प्रक्रिया में पाइप को जमीन में डालते हैं। क्या प्रक्रिया होती है? मेरे खयाल से ड्रिल मशीन द्वारा पाइप गहरा उतारा जाता है, उसमें ऊपर से पानी डालते हैं जिससे मिट्टी बाहर निकलती रहती है। फिर और पानी डालते रहते हैं। एक समय के बाद बाहर से पानी नहीं डालते, भीतर से ड्रिल मशीन की सहायता से मिट्टी और पत्थरों को काटकर बाहर निकाला जाता है और फिर धीरे-धीरे मशीन की सहायता से गहराई तक पाइप डाल दिया

जाता है। एक समय ऐसा आता है कि फिर ऊपर से पानी नहीं डालना पड़ता और नीचे से पानी निकलता है।

ऊपर से पानी डालने का कारण क्या है? ऊपर से पानी क्यों डाला जा रहा है? ऊपर से पानी डालकर मिट्टी निकाली जाती है फिर बीच की मिट्टी व पत्थर हटाते हैं। इसलिए ड्रिल मशीन से उसको खोदा जाता है और पानी अंदर जाता रहता है। जैसे ही ड्रिल मशीन अंदर तक पूरा पहुंच जाएगी उसे ऊपर से पानी देने की आवश्यकता नहीं रहेगी। मोस्टली यही बात हमारे ज्ञान की है। हम ज्ञान इसलिए करें कि हमारे भीतर का ज्ञान प्रकट हो जाए। केवल रटने से, माथे में भरने से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी। हमारा उद्देश्य किताबों को पढ़कर, सुनकर भीतर के ज्ञान को प्रकट करने का होना चाहिए। केवल संग्रह करके रख लिया तो हम भूल जाएंगे।

यहां पर किसी को 25 बोल याद हैं क्या? पहले याद किया तो होगा किन्तु रिवाइज नहीं किया। एक को भी याद हैं क्या? एकदम कंठस्थ एक बोल से 25 बोल तक किसको याद हैं? यह बात बता रही है कि हमने रटा है। रटा तो उस समय याद हो गया फिर रिवाइज नहीं किया तो हमें याद नहीं रहा।

घर में टंकी में पानी भरते हैं तो समय-समय पर उसकी सफाई करनी पड़ती है। यदि समय-समय पर सफाई नहीं करें तो उसमें कई प्रकार के जीव पैदा हो जाते हैं। कचरा भर जाता है। तालाब में भी सफाई करनी पड़ती है। किन्तु कुएं की सफाई करने की जल्दी आवश्यकता नहीं पड़ती है।

हमारा ज्ञान तालाब या टंकी के पानी जैसा है इसलिए उसको हमें बार-बार रिवाइज करना पड़ेगा। देखना पड़ेगा कि कहीं कुछ चला तो नहीं गया है। कहीं कुछ कचरा या कुछ जीव पैदा तो नहीं हुए हैं।

स्वामी विवेकानंद जी विदेश गए। वे जिसके ऑफिस में बैठे हुए थे वह भाई हर 5-10 मिनट में अपने घर पर फोन लगा रहा था। वह बार-बार फोन लगाकर अपनी बीवी से बात कर रहा था। स्वामी विवेकानंद को यह देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने विचार किया कि भारत भूमि में तो लगाव है। वहां पर आपसी रिश्ते हैं और लोग उन रिश्तों को निभाते हैं किन्तु यहां पर तो ऐसे कुछ रिश्ते-नाते हैं ही नहीं। लोग रिश्ते निभाएं, ऐसा कुछ है ही नहीं। यहां जितनी मुहब्बत रिश्तों में होनी चाहिए, वह है नहीं। पिता-पुत्र का, माता-

पुत्र का जो संबंध होना चाहिए, रिश्ता होना चाहिए, ऐसा कुछ यहां नहीं है। भारत में ये रिश्ते-नाते थोड़े ज्यादा हैं और उनमें गहरे आत्मीय भाव हैं। वहां यदि पति अपनी पत्नी से, उससे बार-बार ऐसे संपर्क करे तो समझ में आता है किन्तु यहां का प्राणी, यहां की संस्कृति में जीने वाला व्यक्ति यदि ऐसा करे, बार-बार अपनी पत्नी से बात कर रहा है तो इसका हेतु क्या है, इसका कारण क्या है, बात क्या है? इतना प्रेम, इतना लगाव कि उसके बिना रह नहीं पाता और बार-बार बात करनी पड़ती है? स्वामी जी ने उस विदेशी व्यक्ति से पूछा– क्या आपको पत्नी से इतना प्रेम है? इस पर उस विदेशी व्यक्ति ने जवाब दिया कि सर! बात यह नहीं है। मुझे डर लगा रहता है कि मेरी पत्नी मुझे छोड़कर घर से भाग न जाए। इसलिए मैं बार-बार फोन करता हूं ताकि मुझे लोकेशन मालूम पड़ जाए कि वह घर में ही है।

वह व्यक्ति बार-बार इसलिए बात कर रहा है कि उसकी पत्नी भागे तो मालूम हो जाए। इसी तरह हम भी बार-बार रिवाइज करते हैं कि कहीं भूल तो नहीं गए, भूल तो नहीं जाएंगे। क्या ऐसा कोई उपाय है, जिससे उस ज्ञान को रिवाइज नहीं करना पड़े! किसी के ध्यान में है ऐसा उपाय? ऐसा है तो बताओ हमें भी, ताकि हम भी निश्चिंत हो जाएं। (प्रत्युत्तर– भीतर से प्रकट ज्ञान)

हां, कोई भाई बोल रहा है, क्या है बताओ? आप बोल रहे हैं कि भीतर से पैदा हुआ ज्ञान।

मुझे एक उपाय मालूम होता है। मैं बोल रहा हूं, ज्ञान को भूलें नहीं। इसका क्या उपाय हो सकता है? (प्रत्युत्तर– विशिष्ट ज्ञान) आप कह रहे हैं कि विशिष्ट ज्ञान। (एक प्रत्युत्तर– भावपूर्वक) भावपूर्वक किया गया ज्ञान। बहुत अच्छी बात है। आप लोग सोचते हैं। बहुत अच्छी बात है कि लोगों के भीतर यह सोच पैदा हो रही है। बहुत ही प्रसन्नता की बात है।

बाकी तो हम सोचते क्या हैं? विचार क्या करते हैं? हम सोचते हैं कि धन कैसे कमाना? अपने ज्ञान को कैसे बनाए रखना है, इसके लिए कहां सोचते हैं? धन कैसे बढ़े इसकी चिंता तो लोगों को अमूमन होती होगी। बताओ, धन बढ़ाने की चिंता होती है या घटाने की? परिग्रह बढ़ाने की चिंता होती है या घटाने की? अच्छा ये बताओ परिग्रह और धन बढ़ाना चाहिए या घटाना चाहिए? (प्रत्युत्तर– बढ़ाना) ज्ञान को घटाना चाहिए

या बढ़ाना चाहिए? हमने आज तक क्या किया, बताओ? कितना ज्ञान बढ़ाया? कितना ज्ञान बढ़ाया बताओ तो सही? मान लो एक आदमी की उम्र 50 साल हुई। शुरू के 5 साल घटा दो बाकी बचे 45 साल। उन 45 सालों में कितने महीने हुए? यह भी गिनना पड़ेगा। (प्रत्युत्तर– 540 हुए) मैं आपके बराबर गणित नहीं कर पा रहा हूं। गणित में गड़बड़ी होगी तो वह जवाबदारी आपकी है। 540 महीने हुए हैं। दिन कितने हुए? लगभग 16,200 दिन हुए।

घंटे की बात करूं तो... चलो घंटे नहीं निकलवा रहा हूं। घंटे निकालने में और टाइम लगेगा। 16,200 दिन हुए। यदि हमने रोज एक लाइन भी याद की होती, रोज एक सूत्र भी याद किया होता, रोज एक गाथा भी याद की होती तो अभी तक हमें 16,200 गाथाएं याद होनी चाहिए थी। अपने स्टॉक का मिलान करो कि हमारे भीतर स्टॉक कितना है? हमारे भीतर अब तक कितना संग्रहित किया हुआ है? कितना स्टॉक मिलेगा? 16,200 गाथाओं का स्टॉक मिलेगा क्या? नहीं, तो फिर हमने क्या किया इतने समय तक? यहां कुछ ने जवाब दिया है, यह बहुत अच्छी बात है। मतलब कुछ सोचने की क्षमता है। हम सोचते हैं, यह बहुत अच्छी बात है। हमारी सोचने की दिशा तो बनी कि हम उस दिशा में कुछ सोचते हैं। किन्तु कितने लोग जवाब दे पाए? 2-4 लोग जवाब देते हैं। सब नहीं देते।

बढ़िया है कि सभी ने जवाब नहीं दिया। सभी लोग जवाब देते तो यहां सब्जी-मंडी हो जाती। फिर किसी की भी बात सुनी नहीं जा सकेगी और वक्त हो-हल्ले में निकल जाएगा। बहुत ही समझने और सोचने की बात है कि भीतर के ज्ञान को प्रकट करने के लिए बाहर के ज्ञान को हमें प्राप्त करना पड़ेगा। बाहर के ज्ञान का उपयोग हमें करना पड़ेगा। कुएं की भी खुदाई करनी पड़ती है। हैंडपंप के भीतर भी पानी डालना पड़ता है, ड्रिलिंग करनी पड़ती है। हैंडपंप में पाइप अंदर पहुंचता है और नीचे से पानी निकालने के लिए भीतर पानी डालना पड़ता है। इसके बिना पानी मिलेगा नहीं!

बाहर के पानी का उपयोग होता है तो भीतर से प्रकट होता है! वैसे ही हम कैसे, क्या उपाय करें कि बार-बार खोदना नहीं पड़े? बाहर के पानी का उपयोग करना नहीं पड़े। मतलब हमें बार-बार उसको रिवाइज नहीं करना पड़े। बार-बार पानी नहीं भरना पड़े।

आप लोगों में से कितने लोग जानते हैं कि आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी महाराज के प्रवचनों की किताबें कितनी हैं? और प्रवचनों के अतिरिक्त

कितनी किताबें हैं? याददाश्त कमजोर हो गई क्या? आप लोग बता नहीं रहे हो? होमवर्क करके नहीं आए। महाराज साहब, पहले प्रश्न दिया होता तो याद करके आते। प्रवचन की कितनी किताबें हैं? सोच रहे हैं इन्दर चंद जी! सोचने से क्या होगा। कोई बोल रहा है 51 किताबें हैं? 51 किताबें हैं और नंबर से बतानी पड़े तो? और एक-एक का नाम पूछो तो? उसके अलावा ग्रंथ कितने हैं? चलो ज्यादा उलझन में नहीं डालते हैं। '**आगम पुरुष**' नाम की पुस्तक आपने पढ़ी होगी! किस-किस ने पढ़ी है? हाथ खड़े करेंगे क्या? तीन हाथ खड़े हुए हैं। महेश जी! किताब का नाम क्या है? आगम पुरुष। किसने लिखी? **डॉ. नेमीचंद जैन** ने। आपने कितने पेज पढ़े? (प्रत्युत्तर– पूरी) पूरी पढ़ी तो हाथ खड़ा क्यों नहीं किया? **आगम पुरुष का अर्थ** क्या होता है? जिसके भीतर में आगम उतर गया, जिसके जीवन में आगम रम गया, उसको कहते हैं आगम पुरुष। डॉ. नेमीचंद जी जैन एक बार बोले कि किसी दिगम्बर मुनि ने यह आपत्ति की कि आगम पुरुष नाम तुमने कैसे रख दिया? यह तो बहुत ऊंची बात है। डॉ. नेमीचंद जैन ने उत्तर दिया कि मैंने आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी महाराज साहब के साथ टुकड़ों में 24 घंटे व्यतीत किए। कभी 2 घंटा, कभी 1 घंटा, कभी आधा घंटा, कभी 15 मिनट ऐसे करके 24 घंटे मैंने उनका सान्निध्य प्राप्त किया। मैंने उनको हर तरफ से टटोला। उनको उलझाने का प्रयत्न भी किया किन्तु मुझे वहां पर आगम ही आगम नजर आया। वहां न तो क्रोध नजर आया और न किसी प्रकार के अहंकार की बात उनके भीतर देखी– न माया, न कपट और न ही छल देखा। राग-द्वेष की प्रवृत्ति उनमें 24 घंटों में नहीं देखी। मैंने कितने ही उलझन भरे प्रश्न उनसे किए, जो जवाब देना था उन्होंने सही-सही दिया। वे आगमों को जीने वाले बन गए। उनमें वह चीज रम गई।

आप एक बार और सोचो कि किसी के शरीर में कमजोरी आ गई और डॉक्टर ने ग्लूकोस की बोतल चढ़ा दी तो शरीर में ताकत आएगी या नहीं? (प्रत्युत्तर– आएगी) एक बोतल, दो बोतल, तीन बोतल ग्लूकोस चढ़ाया गया। ग्लूकोस सारे शरीर में रम जाता है। सारे शरीर में उसकी क्रियाशीलता हो जाती है या नहीं हो जाती? ग्लूकोस का एक्शन हो जाता है या नहीं होता?

जैसे सारे शरीर में ग्लूकोस का प्रभाव हो जाता है। वह शरीर में रम जाता है। वैसे ही आगमों के ज्ञान को पूरा रमा लें हम जीवन में तो फिर याद

करने और बार-बार उसे रिवाइज करने की आवश्यकता हमें नहीं पड़ेगी। उसको रटने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

धर्मराज के लिए बताया जाता है कि उन्हें सूत्र दिया गया था कि 'कोपं मा कुरू' क्रोध नहीं करना। द्रोणाचार्य के पूछने पर दूसरे राजकुमारों ने याद करके बता दिया था, किन्तु धर्मराज ने कहा– याद नहीं हुआ। दूसरे-तीसरे दिन उनसे पूछा कि वह सूत्र, वह बात याद की क्या। धर्मराज ने कहा– याद नहीं हुआ। तब द्रोणाचार्य ने एक चांटा लगाया तो धर्मराज ने कहा– थोड़ा-सा याद हो रहा है। फिर कहा– अब मुझे याद हो गया है। वह भी तब कहा, जब द्रोणाचार्य के चांटा लगाने पर उन्हें क्रोध नहीं आया। उन्हें शब्दों को रटने से मतलब नहीं था, उन्होंने उस बात का अनुभव किया। एक क्षण के लिए भी क्रोध नहीं आये तभी उसे याद करने का फायदा है। इसलिए सूत्र हमारे जीवन में उतर गए तो हमें उसको रटने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। क्योंकि वह हमने अपने दिल में उतार लिया है। जिस चीज को हम अपने जीवन में उतार लेते हैं उसको रिवाइज करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। नहीं तो, बार-बार रटना पड़ता है। बार-बार रिवाइज करना पड़ता है। बार-बार याद करना पड़ता है और उस विदेशी की तरह भय भी लगा रहता है कि कहीं पत्नी भाग नहीं जाए। वह बार-बार मोबाइल की घंटी बजाता है, लोकेशन देखता है। अगर भय नहीं होगा तो बार-बार फोन करना पड़ेगा क्या?

थोड़ा जमाना बदल गया। सिस्टम बदल गया है। कुछ समय पहले मारवाड़ के लोग कोलकाता, मुंबई, मद्रास (अब चेन्नई) जाते थे तो 12 महीने पहले लौटने की बात नहीं होती थी। 10 महीने तो सामान्य बात थी। 2 महीने के लिए आ जाते वह भी तब, जब व्यापार का मौसम ढीला होता था। बाल-बच्चे घर पर ही रहते थे। बीवी-बच्चे और परिवार वाले राजस्थान में ही रहते थे। उस समय फोन नहीं था। चिट्ठी भी कभी महीने में एकाध बार पहुंच गई तो पहुंच गई। उससे भी पहले के समय की बात करें तो लोग 12-12 साल में लौटते और 12 साल तक घर समाचार नहीं दे पाते थे। 12 साल भी उनके घर समाचार नहीं जाते तो भी उनका विश्वास होता था कि मेरी पत्नी घर पर ही मिलेगी। मर गई तो बात अलग है। पर आजकल भय रहता है कि पत्नी भागकर चली नहीं जाए! यह भय सताता रहता है। आजकल के लोगों को बड़ा खतरा रहता है, इसलिए जहां भी जाते हैं वाइफ को साथ लेकर जाते हैं।

कई बार यहां भी आते हैं कि महाराज, मैं आया हूं दर्शन करने के लिए। चार बजे के बाद आया और वाइफ भी साथ में है। वह भी दर्शन करना चाहती है। साथ में रहेगी तो उसको भय लगेगा नहीं। कहीं भी जाते हैं, साथ में ले जाते हैं। अगर छूट गई तो क्या पता वापस मिलेगी या नहीं। आजकल तो लड़कियों की कमी हो गई है। तलाक दे दिए जाते हैं। ऐसे में वाइफ वापस मिलेगी या नहीं मिलेगी, भय बना रहता है।

शायद ऐसी बात हर जगह नहीं हो किन्तु आज कल्चर बदल गया है। पहले के समय 10 महीने भी पत्नी से नहीं मिलते तो विश्वास करके चलते थे। इतना पत्नी पर विश्वास होता था कि 12 महीने भी घर नहीं आए तो भी उनको पत्नी मिल जाती थी।

अंजना जी जैसी सती, पवन जी के घर में रह रही थीं। उनको पवन जी ने कितनी बार देखा था? पवन जी से बहुत समय तक बात नहीं हुई। वर्षों का उल्लेख मिलता है। कहीं पर 12 वर्षों का उल्लेख मिलता है तो कहीं पर 22 वर्षों का उल्लेख आता है। 12 वर्ष भी मामूली नहीं हैं। 12 वर्ष बिना देखे रह गए, बिना बातचीत किए रह गए तो, 12 वर्ष छोड़ो 12 दिन भी काफी है। आप यदि किसी लड़की को बहू बनाकर घर लाए हो और आपका लड़का बहू से 12 दिन तक बात नहीं करता है तो क्या होगा? शायद वह लड़की बेचैन हो जाएगी और घर पर क्या समाचार भेजेगी? वह बहू अपने घर पर पापा को फोन करके समाचार देगी कि पापा! मैं यहां पर बोर हो रही हूँ।

अगर लड़का एक महीने तक बात नहीं करे। रुख नहीं मिलाए। कोई बातचीत नहीं, इशारा वगैरह कुछ भी नहीं हो तो मेरे खयाल से पत्नी हिल जाएगी। पति पर से उसका विश्वास डोल जाएगा। बात यहां तक पहुंच जाएगी कि इस घर में रहना है या नहीं।

ऐसा हो रहा है या नहीं हो रहा है? हम कितने अधीर हो गए? हम तालाब का पानी पीने वाले हैं या टंकी का? हम कुएं का पानी पीने वाले हैं या तालाब का? आज हम प्रदर्शन करते हैं। आज दिखावा होता है। हम गहराई में उतरने की कोशिश नहीं करते। जब गहराई में उतरते ही नहीं तो गहराई में रहे हुए रत्न कहां से प्राप्त होंगे?

आचार्य गुरुदेव श्री नानालाल जी महाराज साहब ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते थे। जैसे पहले सुना कि गुरु की सेवा और ज्ञान-ध्यान

के अलावा उनकी कोई गतिविधि नहीं थी। कौन आया, कौन नहीं आया? किसी से कोई सम्पर्क नहीं था। कोई आ गया और बैठ गया तो पूछते– बोलो और कुछ कहना है क्या? अब आप बात ही नहीं कर रहे हैं तो भाई साहब क्या कहेंगे? इतना-सा कहते थे और फिर अपनी किताब में देखने लग जाते। ऐसा उनका जीवन रहा। लोग सोचते, रुख ही नहीं मिलाया तो क्या कहना। शुरुआती दौर में एक घण्टे में 5 गाथा ही याद करना बहुत कठिन हो जाता था। फिर उन्होंने समय साधा तो 1 घण्टे में 40 श्लोक याद होने लग गए। पहले, एक घंटे में पांच नहीं होते थे, फिर एक घंटे में 40-40 श्लोक, गाथा याद होने लग गए। आप कहते हो कि याद नहीं होते हैं। हमें गाथा याद नहीं होती है, महाराज साहब! याद करते हैं पर होता नहीं है। अरे! प्रयत्न क्या किया आपने? आचार्य गुरुदेव श्री नानालाल जी महाराज साहब का ही लिखा हुआ एक चिंतन है कि– हमें किसी भी विषय में हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। एक बार सफलता प्राप्त नहीं होती है तो पुनः उसी उमंग के साथ व्यक्ति को अपने कार्य में लगे रहना चाहिए। आचार्य गुरुदेव लिखते हैं कि यदि व्यक्ति सही राह पर चलता रहे तो उसे मंजिल मिलेगी। चलते रहो, चलते रहो। बेधड़क, चलते रहो। पीछे मुड़कर मत देखो। रास्ता पकड़ने से पहले देख लेना चाहिए कि सही रास्ता है या नहीं है। अब बार-बार पीछे मुड़कर देख रहे हो तो गति नहीं बनेगी। बार-बार पीछे मुड़-मुड़ कर देख रहे हैं तो जो स्पीड बननी चाहिए, वह नहीं बन पाएगी। इसलिए बेफिक्र होकर हमें अपने रास्ते पर चलना चाहिए। बेधड़क होकर रास्ते पर आगे बढ़ते हुए चलना चाहिए। वह बेधड़क होकर आगे बढ़ेगा तो उत्साह भी बढ़ेगा।

आचार्य देव ने लिखा जिसका भाव है कि जब असफल हो जाते हैं तो मन को शिथिल नहीं करें। कार्य को पुनः उसी उत्साह के साथ, उसी प्रकार के मनोभावों के साथ करें तो एक दिन सफलता मिलेगी। भगवान् महावीर कहते हैं कि 'जाए सद्धाए निक्खंतो, तमेव अणुपालिया' यानी जिस कार्य में लगे हो उसमें तब तक श्रद्धा बनाए रखो, जब तक कार्य सफल नहीं हो जाए। मन की शंका, कुशंका को छोड़कर अपने लक्ष्य की तरफ जुटे रहो। पुराने लोग कहते थे–

रोवंतो जावे, बो मरयोड़ा रा समाचार लावे।

जो रोता-रींगता (बेमन से) जाता है, वह कार्य सफल नहीं कर पाता है। जो उल्लास से बढ़ता जाता है वह कष्टों को पैरों से कुचलकर, कार्य

सफल कर जाता है। वह खाली नहीं लौटता है। जिसमें उमंग है वह करेगा। जिसके भीतर उल्लास और उमंग भरे हैं वह कार्य को करने में सफल भी हो जाएगा। हम अगर पहले से ही रोते-रोते जावें तो क्या होगा? पहले ही सोचते हैं होगा या नहीं होगा? जाऊं तो हूं काईं पतो नहीं हुयो तो? आप सोचते हो कार्य होगा या नहीं होगा। यह संशय तुम्हार भीतर में है तो तुम्हें सफल होने नहीं देगा। तुम्हें कंबल ओढ़कर सो जाना चाहिए फिर तो...!

जम्बू कुमार सोच लेते हैं कि उनको दीक्षा लेनी है। पिताजी ने बोल दिया कि पहले गृहस्थ जीवन को जीना है, अब उनकी बात को कैसे टालूं? ज्यादा विचार करके जिरह करके क्या करूंगा? ऐसा सोचकर कंबल ओढ़कर सो गए होते पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। उनका दृढ़ निश्चय था कि साधु जीवन स्वीकार करना है। पिताजी द्वारा भरमाने के बावजूद वे अपने निर्णय पर अटल रहे। सत्य, सत्य ही है। जो उसको जान लेता है उसे उसको प्राप्त किए बिना चैन नहीं पड़ती। सुदर्शन श्रावक अर्जुन के आतंक से नहीं घबराया। वह भगवान् के दर्शन हेतु पिता की अनुमति प्राप्त कर अपने कार्य में सफल हो पाया। साधु जीवन को पाना और कठिन है–

साधु जीवन कठिन है, जैसे पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर॥

जैसे खजूर के पेड़ पर चढ़ना, नारियल के पेड़ पर चढ़ना आसान काम नहीं है। मदनलाल जी! आप कभी नारियल के पेड़ पर चढ़े क्या? नारियल के पेड़ पर चढ़े या नहीं चढ़े? (प्रत्युत्तर– बोरड़ी पर) बात कर रहे हैं नारियल के पेड़ की और आप बोल रहे हो बोरड़ी पर चढ़ गए। खजूर के पेड़ पर और नारियल के पेड़ पर चढ़ना बहुत कठिन होता है किन्तु चढ़ने वाले चढ़ते भी हैं। चढ़ते हैं या नहीं चढ़ते हैं? (प्रत्युत्तर– हां, चढ़ते हैं)

नारियल लेने वाले नारियल के पेड़ पर चढ़ते हैं। पैरों में रस्सी या अन्य कुछ बांधकर चढ़ जाते हैं। रस्सी को पैरों में, कमर में बांधकर चढ़ जाते हैं। ये चढ़ने के तरीके हैं। किन्तु चढ़ते समय कब गिर जाएं, कब चोट लग जाए कोई पता नहीं होता है। वैसे ही साधु जीवन थोड़ा कठिन होता है। अरे! साधु जीवन की क्या बात करें? चढ़ने वाले तो हिमालय पर भी चढ़ जाते हैं। लूले-लंगड़े, जिनके एक पैर तक नहीं होता है, वे लोग भी चढ़ जाते हैं हिमालय के ऊपर। और, नहीं चढ़ने वाले, दो पैर वाले नीचे बैठे रह जाते

हैं। वे केवल दूसरों को देख सकते हैं। जो अपने भीतर हिम्मत पैदा करते हैं, वे ही चढ़ पाते हैं। जब वे लोग चढ़ जाते हैं तो आप उनको देखकर अपने भीतर उमंग पैदा करो कि, मैं भी चढ़ूंगा। चढ़ सकूंगा। अर्थात् कार्य के प्रति इतनी हिम्मत-विश्वास होना चाहिए।

अगर कोई दीक्षा ले रहा है और आप उसको देख रहे हो तो अपने भीतर भी उमंग लाओ कि मैं भी दीक्षा लूंगा। मैं भी एक बार दीक्षा, लूं तो सही। शायद ही किसी के मन में ऐसा आता हो। जब आप किसी को शादी करते हुए देखते हो तो आपके मन में विचार आता है कि मेरे लिए लड़की कब देखेंगे? शादी करते हुए देखकर विचार करते हो कि मैं भी एक बार शादी करके देखूं, क्या मजा आता है। तो दीक्षा लेने वाले को देखकर यह विचार क्यों नहीं करते हो कि मैं भी एक बार दीक्षा लेकर देखूं। क्या मजा आता है दीक्षा में? दीक्षा का मजा दीक्षा लेने वाला ही जानता है। आपको क्या पता क्या होता है। जब तक दीक्षा नहीं लेंगे वह आनंद प्राप्त नहीं होगा। साधु जीवन जीने का आनन्द नारियल के पेड़ पर चढ़ने वाले के सदृश है, वह आनंद तो चढ़ने वाला ही जान सकता है। जिस माता ने बेटे को जन्म नहीं दिया, बेटे को गोद (दत्तक) लिया, वह जन्म संबंधी प्रक्रिया को कैसे जानेगी? उसके भीतर ममत्व-मातृत्व प्रकट नहीं होगा। वह हकीकत में मां नहीं बन पाएगी। उसके भीतर ऊपर-ऊपर का वात्सल्य होगा, दिखावे का वात्सल्य होगा। भीतर से प्रकट हुआ वात्सल्य कुछ और ही होता है। वह पैदा होता है जब मां बच्चे को जन्म देती है।

करोड़पति व्यक्ति के लिए लाख रुपये खर्च करना कठिन बात नहीं है। जो करोड़ों का मालिक हो, दो लाख खर्च कर दे कोई बड़ी बात नहीं है। मान लो आप अभी अलसाये हुए हैं। आपकी नींद अभी पूरी खुली नहीं है। आंख मसल रहे हो। इतने में घण्टी बजी। आपने अन्दर से आवाज लगाई, कौन है? बाहर से आवाज आई, दूध वाला। आपने झट दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खोलते ही धड़ाधड़ इनकम टैक्स वाले आ गए। कहा कि हम इनकम टैक्स वाले हैं, आपके यहां रैड डालने आए हैं। अब क्या हो गया? नींद उड़ गई या नहीं उड़ी? पता नहीं कितने कागजात हाथ में आ गए? रैड डालने वालों के हाथ में कितने डॉक्यूमैंट आ गए पता नहीं?

अब कौन-सी प्रक्रिया चालू होती है? किसी आदमी को बीच में डालेंगे। किसी सीए को बीच में डालेंगे कि मोल-तोल करके समझौता हो

जाए। समझौता एक्सप्रेस दौड़ने लगती है। कौन-सी एक्सप्रेस दौड़ती है फिर? भ्रष्टाचार एक्सप्रेस चालू होगी। पंजाब से पाकिस्तान जाती है ना समझौता एक्सप्रेस। अब नाम परिवर्तित हो गया है। नाम तो वही था ना...!

समझौता एक्सप्रेस चालू हो जाती है। हम दो आदमी लगा देते हैं कैसे भी करके सलटा दो। कागज हाथ से ही चले गए तो क्यों ना सेटलमेंट करके अब थोड़ा-सा समझौता कर लें। थोड़ा-सा उनको देंगे तो कुछ तो बचेगा, नहीं तो पता नहीं क्या-क्या चला जाएगा! कितने करोड़ का नुकसान हो जाएगा। सामने वाला कह रहा है, कितने चाहिए? (प्रत्युत्तर–लाख) अरे भाई! किस दुनिया में जी रहे हो आप? अब लाख वाला जमाना नहीं रहा अब करोड़ों से काम चलता है। खोखा चाहिए। कार्टून, पेटी का जमाना नहीं है। खोखे का जमाना है अब। 100 करोड़ फंसे हुए हैं तो यदि वह 5 करोड़ में निबट जाए तो 5 करोड़ लगा देगा या नहीं लगा देगा? (प्रत्युत्तर–जरूर लगा देगा)

यह वैसी ही बात है जिसके पास करोड़ों की सम्पत्ति है वह लाख दो लाख खर्च करे तो उसको दिक्कत नहीं आएगी। कार्य करने का यह तरीका नहीं है कि उलटा-पुलटा काम किया जाए? जिससे जग हंसाई हो वैसे काम नहीं करने चाहिए। धर्म-ध्यान करने में व्यक्ति को लगता है कि लोग क्या कहेंगे? पर वायदा बाजार में, शेयर मार्केट में, कत्लखाने वालों को ब्याज पर पैसे देने पर जग हंसाई होती है या नहीं होती है? कत्लखाने वालों को ब्याज पर दे रहे हैं! क्या आपको पता है कि उन ब्याज पर दिए हुए पैसों से आगे क्या-क्या धंधा हो रहा है? उन पैसों से कत्लखाना चल रहा है तो क्या इसमें जग हंसाई नहीं हो रही है? रुपया ब्याज पर लेने वाला कत्लखाना चला रहा है। आपको ब्याज चाहिए। कत्लखाने वाले ने बाकी लोगों से ज्यादा ब्याज दिया तो उसे पैसे दे दिए। अच्छा ब्याज मिल रहा है, इसलिए किसी को भी पैसे दे दो। मुर्गी पालन में किसका पैसा गया हुआ है? बड़े-बड़े मार्केटिंग में, शेयर मार्केट में पैसे किसके दिए हुए हैं? कत्लखाने वालों ने शेयर बेचे। उन शेयरों को किसने खरीदा है। शेयर की कमाई से वे आगे क्या कर रहे हैं आपको पता है क्या? क्या-क्या कर रहे हैं? वे, कत्लखाना खोले हैं। हम उनके सहभागी बन रहे हैं या नहीं बन रहे हैं? (प्रत्युत्तर–बन रहे हैं) वे अनैतिकता कर रहे हैं तो हम उनके सहभागी बन रहे हैं या नहीं बन रहे हैं? बड़े गौरव से हम अभी बोल रहे हैं कि सहभागी बन रहे हैं? वाह! वाह! हमें गौरव हो रहा है।

सोचिए, बंधुओ! जग हंसाई की बात किसमें हो रही है। इस दुनिया में बहुत से लोग जग हंसाई नहीं चाहते। वे अपना स्टेटस बनाए रखना चाहते हैं। लोग मुझे सम्मान देने वाले होने चाहिए। लोगों को यह पता चलना चाहिए कि मैं बहुत बड़ा सेठ हूं। बड़ा धनवान हूं। प्रसिद्धि वाला हूं।

लेकिन हमारी प्रामाणिकता कितनी है, हमारी नैतिकता कितनी है, हमारी ईमानदारी कितनी है, हमारी सचाई कितनी है इसका कोई मापदण्ड होना चाहिए या नहीं। इसका थर्मामीटर लेकर देखना चाहिए कि हमें बुखार कितना आया है? हमारे में ईमानदारी कितनी आयी है? हमारी प्रामाणिकता कैसी है अब? हमारे भीतर पैसे की कौन-सी बीमारी निकली। पैसे की भूख की बीमारी। जिसको देखो पैसा-पैसा। हाय पैसा, हाय पैसा। 'पइसो म्हारो परमेसर' मैं किसी भी रास्ते पर जाऊं मुझे पैसा मिलना चाहिए। इस स्कूल में आने के कई दरवाजे हैं। किधर से भी आएंगे स्कूल में प्रवेश हो जाएगा। उसी तरह हम किसी भी रास्ते से जाएं पैसा आना चाहिए। हम विचार करें पैसा ही सब कुछ नहीं है। पैसा आज है कल वह रहेगा, भरोसा नहीं है। इसलिए पैसों के लिए नहीं अर्थात् जीवन के लिए जो अच्छा हो वह किया जाए। हम भले तो जग भला। हम अच्छा कर रहे हैं–

जो करना सो अच्छा करना।
फिर दुनिया में किससे डरना॥

हम अच्छा कर रहे हैं तो जग हंसाई की बात नहीं है। कोई गलत काम करे, खराब काम करे तो बात समझ में आती है। हम अच्छे मार्ग की तरफ बढ़ रहे हैं। उसमें यदि दुनिया हंसती है तो हंसने दो। हमें हमारे लाभ को देखना है। हमें श्रेष्ठता को देखना है। इसलिए जो भी अच्छा करना हो दृढ़ संकल्पपूर्वक हो। यदि दीक्षा लेने का भी स्पष्ट विचार हो तो– मेरा संकल्प दृढ़ है, मैंने अच्छी तरह से विचार कर लिया है। संयमी जीवन में आने वाली हर परिस्थितियों का मुकाबला करूंगा। किसी भी परिस्थिति में पीछे हटने वाला नहीं हूँ। आप मेहरबानी कीजिए। आप आज्ञा दें। आप अनुमति देने की, अनुज्ञा देने की कृपा करें ताकि उस मार्ग पर बढ़ सकूं जिस रास्ते पर चलकर अनेक आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया है। मैं भी मोक्ष प्राप्त कर लूँ और ज्ञान व क्रिया के मार्ग पर बढ़कर श्रेष्ठ बनूं।

आज मंजू बाई देसरड़ा ने मासखमण का प्रत्याख्यान किया है। और भी कई लोगों की तपस्या चल रही है। आप सबको भी कोई-न-कोई नियम

ले उस तप का अनुमोदन करना चाहिए। आज हमने सुना है कि संसार चार गति रूप है। जिसे मोक्ष मार्ग का ज्ञान नहीं है, वह भटकने में रह जाता है। ज्ञान से हमें प्रकाश मिलता है और प्रकाश पा कर आत्मा भटकती नहीं, वह उजाले में रहती है– भटकती है अंधेरे में। अंधेरा रहेगा तो भटकते रहेंगे। हम भी प्रयास करें कि प्रतिदिन एक गाथा, एक लाइन ज्ञान की याद करेंगे। एक लाइन या दो लाइन याद करेंगे। आप अपने भीतर निश्चय बना लें कि रोजाना एक लाइन या गाथा याद करेंगे।

आचार्य पूज्य श्री श्रीलाल जी म.सा. का नियम था कि 45 वर्ष की उम्र तक एक बोल, एक गाथा या कोई भी एक ज्ञान की बात याद करना। वैसे ही आज यहां पर बैठे हुए जो लोग 45 साल से कम की उम्र के हैं, जब तक 45 की उम्र नहीं हो जाती है तब तक कम से कम एक लाइन ज्ञान की रोज कंठस्थ करेंगे। बंधुओ! जो ज्ञान कंठस्थ हो गया, भीतर उतर गया, वही काम आता है।

ज्ञान को हम केवल शब्दों से याद ही नहीं करेंगे, अपने भीतर भी उतारेंगे। ऐसा हम संकल्प करेंगे और अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर चलेंगे तो अपने जीवन को धन्य बनाएंगे। यह संकल्प करें कि कोई काम कठिन नहीं है। मेरा संकल्प सुदृढ़-मजबूत होगा तो सारे कार्य सिद्ध होंगे। फिर कोई भी ऐसा कार्य नहीं जिसे सिद्ध न कर सकूं।

आज बस इतना ही।

03 अगस्त, 2019

2

तीन सूत्र-तीन रत्न

हम दो प्रकार की जीवनचर्या देखते हैं। एक जीवनचर्या व्यक्तिगत होती है। व्यक्ति का अपना जीवन होता है और वह अपनी प्रवृत्ति करता है। दूसरी चर्या समष्टि की होती है, समुदाय की होती है। समुदाय, व्यक्ति से अलग नहीं है और व्यक्ति, समुदाय से अलग नहीं है। दो, तीन या अनेक व्यक्तियों के जुड़ने को समुदाय कहा जाता है और इकाई को व्यक्ति कहा जाता है।

इकाई का जीवन या उसकी चर्या उसकी अपनी निजी होती है और समुदाय की चर्या समुदाय के अनुसार होती है। समुदाय व्यापक है। समुदाय अंगी है, व्यक्ति उसका अंग है। समुदाय के विकास में व्यक्ति का विकास सन्निहित होता है। समुदाय में आई किसी विकृति का प्रभाव व्यक्ति पर भी होता है और व्यक्ति की विकृति का प्रभाव कई बार समुदाय पर भी देखने में आता है। दोनों की चर्या भिन्न होते हुए भी एक-दूसरे पर आधारित है।

मनुष्य सामुदायिक प्राणी है। समुदाय के बीच में रहता है। समुदाय में उसका उठना-बैठना होता है। परिवार भी समुदाय है। समाज भी समुदाय है और राष्ट्र भी समुदाय है। यह बात अलग है कि हम एक समुदाय का दूरी तक फैलाव करते हैं, उससे अपने आप को जोड़कर चलते हैं। जैसे-जैसे विस्तार होता है वहां समुदाय परिवार तक नहीं रुककर, समाज, राष्ट्र और प्राणी मात्र तक उसका फैलाव हो जाता है।

भगवान् महावीर ने प्राणीमात्र के लिए बात कही है, चाहे वह किसी भी रूप में हो। त्रस या स्थावर सबमें जीव है। वे भी प्राणी हैं और वे भी सुख के इच्छुक हैं। उन्हें भी शांति की अभीप्सा है। एक सूत्र 'मित्ती मे सव्वभूएसु' में बताया गया है कि प्राणीमात्र के साथ मैत्री भाव होना चाहिए। भाईचारे में तो ऊंच-नीच का भाव भी हो सकता है। किंतु मैत्री भाव में समानता का, समता

का बोध होता है। मित्रता में गरीबी और अमीरी बाधक नहीं होती। वहां अंतरंग, आत्मीयता से ओत-प्रोत होता है, इसलिए वहां पर किसी प्रकार का कोई व्यवधान खड़ा नहीं होता है। हम कृष्ण और सुदामा की मित्रता देखते हैं। कहां सुदामा और कहां श्रीकृष्ण?

भाई बंटवारा करने वाला होता है किंतु मित्रता में बंटवारे की बात नहीं होती। वे एकमेक बनकर चलने की भावना वाले होते हैं। समानधर्मिता उनका गुण होता है। इसी कारण उनके साथ मैत्री भाव विकसित होता रहता है। इसलिए भगवान् ने भाईचारे की बात नहीं कहकर प्राणीमात्र के साथ मित्रता की बात कही है। कभी कदाचित् हमारे से किसी कारण से कोई ऊंच-नीच हो गयी हो तो उसके लिए बहुत सुंदर बात कही है– हमें क्षमा याचना करनी चाहिए, ताकि मैत्री भाव बना रहे।

आचार्य पूज्य गुरुदेव का मुंबई की तरफ पधारना हो रहा था। भिवंडी में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बसंत दादा पाटिल उपस्थित हुए। उन्होंने पर्युपासना करके निवेदन किया कि हमारे लिए दिशा दर्शन, मार्गदर्शन, कुछ उपदेश दें। हमें भी अपने कर्तव्य का बोध कराएं। हम राष्ट्र से, प्रांत से जुड़े हुए हैं। हमारा क्या दायित्व होना चाहिए, क्या कर्तव्य होना चाहिए? हमें क्या करना चाहिए?

उसके लिए पूज्य गुरुदेव ने उन्हें तीन सूत्र दिए। यदि इन तीनों सूत्रों पर समीक्षा कर लें, समीक्षा ही नहीं, वैसा जीवन जी लें तो भगवान् महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति हमारे जीवन में उतर जाएगी।

सबसे पहला सूत्र है, 'सह-अस्तित्व' का। जैसे तुम जीवन जीना चाहते हो, वैसे ही जीवन संसार के सभी जीव, सारे प्राणी जीना चाहते हैं। मरना कोई नहीं चाहता। हमें प्रत्येक प्राणी के जीवन का अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए। उसके अस्तित्व को स्वीकार करने का मतलब क्या? स्पष्ट है कि मैं उसे अपनी आत्मा के समान इस समुदाय का एक अंग मानूं। जैसे मेरा शरीर है, कान है, नाक है, आंख है, शरीर के बाकी अवयव हैं। शरीर अवयवी है और सारा अवयव मिलकर एक शरीर बना है। शरीर के किसी भी भाग को चोट लगती है या पांव में कांटा गड़ेगा तो उसका शरीर पर असर आएगा। शरीर के किसी भाग में कोई छोटा-सा भी फोड़ा हो गया, तो उसका असर शरीर पर आएगा। भले ही किसी एक अवयव पर वह फोड़ा हुआ है, उसकी पीड़ा पूरे शरीर पर

आएगी। वैसे ही सह-अस्तित्व की बात है कि हमें दूसरों के स्वरूप व अस्तित्व को भी स्वीकार करना चाहिए। दूसरों की जीवनचर्या को भी स्वीकार करना चाहिए। दूसरों के जीवन को भी स्वीकार करना चाहिए। किसी को निरर्थक नहीं समझना। किसी के अस्तित्व का अपलाप भी नहीं करना।

श्रीमद् आचारांग सूत्र कहता है कि हम किसी दूसरे प्राणी का अपलाप करते हैं, तो इसका मतलब है कि हम अपने आप का अपलाप करते हैं। उसके अस्तित्व को ठुकराते हैं तो अपने अस्तित्व को ठुकराने वाले होते हैं। क्योंकि जैसा स्वरूप दूसरे आदमी का होता है, वैसा ही स्वरूप हमारी आत्मा का है। चाहे वह पृथ्वीकाय में रहने वाले हों, चाहे अप्काय में। चाहे स्थावर प्राणी के रूप में रहने वाला प्राणी हो, चाहे त्रस जीव के रूप में रहने वाला। चाहे नरक में रहने वाला प्राणी हो या स्वर्ग में रहने वाला। मूल आत्मा का स्वभाव, मूल आत्मा का स्वरूप सबमें एक समान रहा हुआ है। भिन्नता हमारी नजर में आती है, ये कर्मजन्य है। हमने जिस प्रकार के कर्मों का उपार्जन किया है, उसके अनुसार हमने भिन्न-भिन्न रूपों को प्राप्त किया है। हमारी आत्मा ने भी अनेक बार नरक की यात्रा की है।

अनेक बार स्वर्ग के सुखों को भोगा है। अनेक बार स्थावर प्राणियों में भी हम रहे हैं। हमारी आत्मा निगोद में भी रही है। अनंत रूप हमने धारण किए हैं। उस समय हमारे को कोई पीड़ा दी थी या नहीं दी थी? आज यदि उसको याद करें तो आज भी हमें उस पीड़ा का अनुभव होना चाहिए। यदि स्व-संवेदन की दृष्टि से विचार करें तो जैसी पीड़ा हमें उस समय हुआ करती थी, आज उन प्राणियों को हमारे द्वारा वैसी पीड़ाएं हो सकती हैं। अतः मैं किसी को पीड़ित क्यों करूं?

मनुष्य में भी हम दो प्रकार की जीवनशैली देखते हैं– एक साधु जीवन, दूसरी श्रावक जीवन। साधु जीवन किसी प्रकार का आरंभ-समारंभ नहीं करता, किसी प्राणी की घात नहीं करता। सारे प्राणियों को अपनी आत्मा के समान मानता है। सारे प्राणियों में स्वयं का अनुभव करता है। आचारांग सूत्र में बहुत स्पष्ट कहा है कि जिसका तू हनन करना चाहता है वह तू ही है। उसका और तुम्हारा कोई भिन्न रूप नहीं है। उसके साथ तुम जो भी व्यवहार करोगे उसकी प्रतिछाया तुम्हारे पर गिरेगी। जैसी हमारी छाया होती है, वैसी ही हमारे कार्यों की छाया होती है। हम जैसा कार्य करते हैं, उसकी वैसी ही छाया हमारे ऊपर गिरती है।

हम किसी प्राणी को कष्ट देते हैं। दुःख देते हैं, पीड़ा पहुंचाते हैं तो उसका प्रत्यावर्तन होता है। वह पीड़ा हमें पीड़ित करेगी, दुःखी करेगी। हम उससे बच नहीं पाएंगे। कहा जाता है कि जैसा बीज हम बोयेंगे, वैसी ही फसल हमें मिलेगी। यदि बीज हम कड़वा बो रहे हैं तो हमको उसका भोग, भोगना पड़ेगा। हम दुःख बांटेंगे तो हमें भी दुःख ही मिलेगा। सुख देंगे तो सुख प्राप्त करेंगे। 'मैत्री भाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।'—जगत् के समस्त प्राणियों के साथ सदा मैत्री भाव बना रहना चाहिए।

आचार्य देव ने पहला सूत्र दिया, 'सह-अस्तित्व' का। समष्टि के साथ हमारा जीवन होना चाहिए। हमें उनके अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए। समाज और राष्ट्र में कई प्राणी अमीर होते हैं, तो कई गरीब भी। अमीर उस गरीब का हनन नहीं करे। गरीब का दोहन नहीं करे। उस व्यक्ति का अपमान नहीं करे। हम किसी का तिरस्कार नहीं करें। कोई ज्ञानी है और कोई अज्ञानी तो ज्ञानी पुरुष, अज्ञानी का तिरस्कार नहीं करे। अपलाप नहीं करे। उसके स्वरूप का बोध करे। वह उनके अज्ञान से पीड़ित होता है, अहो! ये लोग अज्ञान में जी रहे हैं! उसका वश चले तो वह दूसरों के अज्ञान को दूर करे।

यदि तीर्थंकर देवों के उपदेश की चर्चा करें तो प्रश्न व्याकरण सूत्र कहता है कि 'सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं।' भगवान् ने जो प्रवचन कहे, जगत के जीव की रक्षा, रूप-दया, करुणा के लिए कहे। जैसे ही उन्हें केवलज्ञान हुआ, दुनिया की दयनीय अवस्था देखी, उनका दुःख देखा, उनके भीतर करुणा तो भरी हुई ही थी बस प्रवचन प्रवाहित हो गया—सभी जीवों के दुःख को दूर करने के लिए और दया रूप रक्षा के लिये। ये है सह-अस्तित्व। किसी का अपलाप नहीं।

दूसरा सूत्र गुरुदेव ने दिया, 'सहिष्णुता' सहिष्णुता हमारे जीवन का आधार है। जिस पृथ्वी पर हम बैठे हुए हैं, वह सहनशील नहीं हो तो हमारा जीवन चलना मुश्किल है। हमारे लिए सहिष्णुता बहुत आवश्यक है। समुदाय में जीने वालों के लिए यह अनिवार्य अंग है। व्यष्टि में जीने के लिए सहिष्णुता बहुत जरूरी है। आज व्यक्ति में सहिष्णुता की कमी होती जा रही है। सहिष्णुता के बिना हम जीवन में शांति नहीं पा सकते। जीवन में सुख नहीं पा सकते। जीवन का आनन्द नहीं ले सकते। सारे जीव समान हैं, हम उन भावों से देखेंगे तो किसी ने भी कोई अपकार किया तो मुझे उसको सहन करना चाहिए और विचार करना चाहिए कि अपकार करने वाला वह व्यक्ति

नहीं है। मेरे ही कर्म उस व्यक्ति के रूप में खड़े हुए हैं और मेरा ही कर्म मुझे दुःख देने वाला हो रहा है। मेरा अपकार करने वाला हो रहा है।

एक व्यक्ति ने अपराध किया। न्यायालय से उसको दंड मिला कि इससे चक्की पिसवाओ। ये काम करवाओ, वो काम करवाओ। जेलर उस अपराधी से वैसा कार्य करवाता है तो जेलर दोषी नहीं है। जेलर तो न्यायाधीश के निर्णय के अनुसार, न्यायाधीश के कहे अनुसार उससे कार्य करवा रहा है। वह यदि जेलर के प्रति मन में द्वेष लाता है तो गलत है। जेलर अपनी इच्छा से या मन से वह कार्य नहीं कर रहा है।

वैसे ही हम कर्म सत्ता की बात करते हैं तो किसी भी व्यक्ति द्वारा अपकार हो रहा हो, तिरस्कार हो रहा तो उसे उस व्यक्ति से द्वेष नहीं पालना चाहिए। उसके साथ वैसा ही मैत्री भाव रहना चाहिए और विचार करना चाहिए कि मेरे द्वारा किये गये पापों का परिणाम है। मेरे द्वारा ऐसा कर्म किया गया है। वह व्यक्ति मेरा क्यों बिगाड़ करेगा? उसको क्या कुछ मिलेगा, वह मेरा बिगाड़ क्यों करेगा? यदि यह भावना हमारी होती है तो सहनशीलता बढ़ती चली जाती है। अन्यथा छोटी-छोटी बातों में एक समुदाय दूसरे समुदाय से भिड़ जाता है। लड़ाई-दंगे हो जाते हैं। मार-पीट हो जाती है और कई जीवों की घात हो जाती है। वर्तमान में इस प्रकार की बात हम देखते-सुनते हैं। जानते हैं। क्या ये सहिष्णुता की परिचायक है? ये सब अज्ञान के कारण से हो रहा है, अहंकार के कारण से हो रहा है। ऐसा करके व्यक्ति अपनी हवस पूरी करता है।

कोई भी धर्म कभी भी यह नहीं सिखाता है कि दूसरे को दुःख दो। यदि कोई मजहब ऐसा कहता हो कि जो तुम्हारी बात नहीं माने, उसे समाप्त कर दो, दुःखी कर दो, पीड़ित कर दो, उसको जीने का अधिकार नहीं है, वह कभी धर्म नहीं कहा जा सकता है। धर्म उसको कहा गया है जो धारण करता है। जो सभी जीवों के अस्तित्व की सुरक्षा करता है। जो सभी को जीने का अवसर देता है। मेरी बात नहीं माने, मैं जैसा मानता हूं वैसा नहीं माने, इसलिए उसको पीड़ित किया जाना चाहिए, यह धर्म की परिभाषा नहीं हो सकती है। ये धर्म की शब्दावली नहीं हो सकती है। यदि कहीं ऐसी शब्दावली धर्म का अंग है तो समझना चाहिए कि धर्म को अभी समझा ही नहीं है।

धर्म कहता है 'राग-द्वेष पतला करो...।' राग-द्वेष हमारे भीतर नहीं आने चाहिए। धर्म हमेशा राग-द्वेष को घटाने की बात करेगा। जो धर्म, राग-

द्वेष को बढ़ाने की बात करता है, समझ लेना चाहिए कि वह धर्म नहीं है। राग-द्वेष धर्म से बढ़ता है या अधर्म से बढ़ता है? (प्रत्युत्तर– अधर्म से) हमारे भीतर का अहंकार धर्म नहीं, अधर्म है। अहंकार से राग-द्वेष पनपता है। हमारे भीतर रहा हुआ कषाय, राग-द्वेष को बढ़ाने वाला होता है। अधर्म कहता है कि राग-द्वेष करो। कषाय बढ़ाओ।

आचार्य देव ने तीसरा सूत्र दिया, 'समता' का। समता का सूत्र बहुत ऊंचा सूत्र है। 'समो निंदापसंसासु' कोई तुम्हारी निंदा करे, चाहे प्रशंसा करे, चाहे मान करे या अपमान तुम्हारी चेतना में उतार-चढ़ाव नहीं होना चाहिए। तुम्हारे अंतर्मन में हलचल पैदा नहीं होनी चाहिए। हम पृथ्वी पर मल त्यागते हैं, लघुशंका भी करते हैं, बहुत जोर से पांव भी मारते हैं। पृथ्वी यह सब सहती है या नहीं सहती है? यह सहनशील नहीं होती तो हमारा जीवन जटिल हो जाता। हम जी नहीं पाते।

आप देखो, जहां पर भी भूकम्प की त्रासदी आती है, वहां पर जन-जीवन की क्या हालत हुई है। कुछ वर्षों पहले महाराष्ट्र में आये भूकम्प से जन-जीवन पीड़ित हुआ। कच्छ में भूकम्प की त्रासदी हमने देखी भले नहीं हो किंतु हमने जाना-सुना जरूर है। यदि सब जगह ऐसे ही भूकम्प से पृथ्वी हिलने लगे, सारी पृथ्वी ऐसे ही डांवांडोल हो जाए तो मनुष्य का जीवन नष्ट हो जाएगा। मनुष्य रहेगा ही नहीं ऐसी बात नहीं है, कहीं-न-कहीं तो रहेगा ही। पर सुरक्षित रूप से रहना कठिन होगा। जब हम समुदाय में जी रहे है, हमें समता भाव का उत्थान करना चाहिए। हमारे भीतर वह प्रवर्धमान हो, ऐसा हमें प्रयत्न करना चाहिए।

कभी हम कह सकते हैं कि महाराज! ये तो साधु-संतों के लिए हो सकता है, गृहस्थ के लिए कैसे संभव है? असंभव किसी के लिए नहीं है। सबके लिए संभव है। आप ये बताइए कि गृहस्थ में रहने वाले सुख चाहते हैं या दुःख? क्या चाहते हैं? सुख चाहते हैं। सुख कैसे मिलेगा? क्या किसी से क्रोध, कषाय बढ़ाने, लड़ने-झगड़ने से सुख मिलेगा? नहीं। ऐसे सुख मिलने वाला नहीं है। यदि गृहस्थ जीवन में भी हमें सुखी रहना है तो कषाय का त्याग करना पड़ेगा। हमारे भीतर इतनी क्षमता आ जाए कि कोई निंदा करे, प्रशंसा करे, मन में उसके प्रति न राग के भाव पैदा हों न द्वेष के। न ही ईर्ष्या के भाव पैदा हों। यदि हम निंदा करने को अच्छा नहीं समझ रहे हैं तो निंदा को सुनें भी क्यों? मेरा मन निंदा सुनने को क्यों आतुर हो? इसी तरह यदि

हम प्रशंसा प्रिय हैं और प्रशंसा चाह रहे हैं तो प्रशंसा की चाह भी हमें शांति देने वाली नहीं है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव ने अपने एक चिंतन में जो लिखा है उसका भाव है कि– 'प्रशंसा जहरीला विष है।' जैसे विष के सेवन से प्राणी का जीवन संकट में पड़ जाता है, वैसे ही प्रशंसा की चाह हमारे जीवन को संकट में डालने वाली होती है। हमारे जीवन को संकट में डालती ही है। हमारे सुख को भी संकट में डाल देती है। हमारे सुख को ले लेती है। एक बार हम विचार करें, इस पर सोचें। मैं इस प्रशंसा को विष ही नहीं, भूतिनी, पिशाचिनी मानता हूँ। जिसको ये पिशाचिका लग जाती है वह तांडव करने लग जाता है। वह प्रशंसा की चाह हमें शांति से जीने नहीं देगी। वह उछल-कूद कराएगी। वह चाहेगी कि बस मेरी प्रशंसा हो। जो व्यक्ति चाहता है कि मेरी प्रशंसा हो वह कभी सुखी नहीं रह सकता। इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि 'समो निंदापसंसासु'। चाहे कोई निंदा करे, चाहे प्रशंसा, दोनों ही अवस्था में अपने आप को सम बनाए रखो। सहन करने की क्षमता रखो। यही समता तुम्हें वीतरागी बनाएगी। वीतरागता का अनुभव इसी समता से किया जा सकता है। हम गीत गाते हैं–

कुल्हाड़ी से कोई काटे, कोई आ फूल बरसाए,
खुशी से दे दुआ इक-सा, अजब सारे चलन ही हैं।
जगत को तारने वाले जगत में-संत जन ही हैं।

एक लक्षण से सारे लक्ष्य का समावेश हो गया है। कुल्हाड़ी से काटने में सारी बातों का समावेश हो गया है। जैसे कोई हमें भिन्न-भिन्न प्रकार से कष्ट देने वाला, मन से पीड़ा पहुंचाने वाला, वचन से कष्ट देने वाला और काया से भी कष्ट देने वाला हो या फूल बरसावे, मेरी प्रशंसा करे, मेरा गुणानुवाद करे। दोनों के प्रति हमारे मन में वही भाव है।

भगवान् महावीर को संगम ने कष्ट दिए। संगम ने भारी परीक्षा ली। भारी परीक्षा का सामना भगवान् महावीर को करना पड़ा किंतु क्या भगवान् के मन में विपरीत भाव प्रकट हुए? शिकायत के भाव आए? हम झट से अपना बचाव कर लेंगे कि वे तो भगवान् थे। ऐसा कह करके आप अपना बचाव कर लेते हो। यह बताओ कि जिस समय गजसुकुमाल मुनि के सिर पर अंगारे डाले गए तो क्या उस समय वे भगवान् थे? क्या वे उस समय सर्वज्ञ थे? क्या वे केवलज्ञानी थे? बाद में केवलज्ञान जरूर हो गया किंतु

जिस समय सिर पर अंगारे रखे गए, उस समय उन्होंने वह कष्ट सहा या नहीं सहा?

कामदेव श्रावक के सामने एक देव, पिशाच का रूप धारण करके आता है। उस पिशाच का रूप, उसका शारीरिक दृश्य, उसका क्रोध, उसकी आवाज भी यदि कोई सुन ले तो उसके रोंगटे खड़े हो जाएं। जीभ बाहर निकाले हुए, पैर पटकते हुए, अट्टहास करते हुए कहता है कि यह धर्म छोड़ दे। जिस धर्म में लग रहा है वह सही नहीं है। उसने उनको विचलित करने के अनेक प्रयत्न किए किंतु कामदेव श्रावक विचलित नहीं हुआ। ऐसा मत समझ लेना कि ऐसे कष्टों में साधु ही अडिग रह सकते हैं। साधु ही उसको सहन कर सकता है। साधु ही सहन करता हो ऐसी बात नहीं है। गृहस्थ में रहने वाला श्रावक भी सहने में सुदृढ़ हो सकता है। बात एक कामदेव की ही नहीं हैं। कई श्रावक हुए हैं जिन्होंने सहा है।

सेठ सुदर्शन को देखिए, 'शूली का सिंहासन हो गया।' केवल कहने से वैसे भाव हमारे भीतर आने वाले नहीं हैं। वैसा ओज तुम्हारे भीतर प्रकट नहीं होगा। एक बार नहीं, हजार बार कोशिश करने पर भी कुछ नहीं होने वाला। गुण केवल गाने से नहीं आएंगे। बिना भावों के कोई भी क्रिया सार्थक नहीं होती है। केवल मुंह से बोलने से कुछ होने वाला नहीं है। आज तो मुंह में राम बगल में छुरी रहती है। 'नमो अरिहंताणं' कहते हुए हम माला फेरते हैं और मन हमारा कहीं और होता है तो नाम लेने से क्या कल्याण होगा? राम नाम लेने से हमारे भीतर राम की भावना, वह स्वरूप प्रकट होता है क्या?

हम यदि माला जपते हैं और वैसे भाव हमारे भीतर नहीं आते, हम उनके गुणों को स्वीकार करने में समर्थ नहीं हैं तो वह माला हमारे किसी काम की नहीं है। हम यदि बुखार उतारने की दवा लेते हैं, तो वह दवा जब अंदर तक जाती है और काम करना शुरू करती है तब उससे बुखार उतरता है। वैसे ही अरिहंत का नाम लेते हुए हमारे मन के भाव राग-द्वेष समाप्त होने की दिशा में होने चाहिए। 'अरिहंत' ऐसी दवा है, जिसके परिणामस्वरूप हमारे कषाय शांत हो जाने चाहिए। यदि वे कषाय शांत नहीं होते हैं और कषाय भाव बढ़ता जा रहा है तो मतलब क्या है? 'नमो अरिहंताणं' का मतलब क्या रहा? फिर अरिहंत कहने से मतलब क्या है? उससे कोई सार्थक लाभ होना नहीं है। उसके भावों को जब जीवन में आत्मसात् करेंगे तो वह लाभदायी कहा जा सकेगा।

सेठ सुदर्शन के भीतर जो समता भाव था, वही समाधि भाव होना चाहिए। किंतु मन में किसी प्रकार का उतार-चढ़ाव नहीं हो। हमारे सामने कोई आदमी ऊंच-नीच कर दे तो हमारे मुंह से जहर निकलने लगता है। ऐसे में हमारा मन विकृत हुआ या नहीं? हमारे भीतर आक्रोश झलकने लगेगा या नहीं? वाणी से जहर निकला या नहीं? यदि वाणी से नहीं तो दिल से तो निकला ही। ऐसा हुआ तो वह विकृत हो गया।

बहुत कठिन बात है। किंतु कठिन है कहकर उससे सदा के लिए किनारा कर जाएं तो हम उसको जीवन में कभी स्वीकार नहीं कर पाएंगे। जो कठिन कार्य होता है उसको भी हमें जीवन में स्वीकार करने का विचार रखना चाहिए। कठिन कार्य भी दुनिया में कई आत्माओं ने किया है। मुनियों और संतों ने किया है।

हिमालय पर चढ़ने वाले कौन और आकाश में प्लेन में आपको उड़ाने वाले कौन? नीचे समुद्र की गहराई में ले जाने वाले, पनडुब्बियों को ले जाने वाले कौन? वैज्ञानिकों ने आज यह काम नहीं किया होता, मनुष्य ने ये सब नहीं किया होता तो आज हम क्या करते? आज यहां बैठे-बैठे आप हजारों किलोमीटर दूर बैठे हुए लोगों से बात कर लेते हो। आपके सामने एक-दूसरे का चेहरा आ जाता है। ये सारी चीजें हमें मनुष्यों द्वारा ही प्राप्त हुई हैं। मनुष्य आज यदि कुछ करने की स्थिति में नहीं होता तो हम क्या कर पाते? इसलिए सोच लीजिए कि कितनी भी कठिनाइयां नजर आ रही हों, हमें उन कठिनाइयों का सामना करना है। उन कठिनाइयों का मुकाबला करना है। हमें कठिनाइयों को कभी मजबूत नहीं बनाना चाहिए बल्कि अपनी भीतरी शक्ति को जगाकर कठिनाइयों को दूर करना है और अपने आपको सहनशील बनाना है।

अब्राहम लिंकन किसी समय एक सामान्य व्यक्ति थे। उन्होंने अपने ध्येय को आगे बढ़ाया। अपने जीवन में कठिनाइयों का सामना करते रहे। एक-दो बार नहीं, कई बार उन्होंने प्रयास किया, असफल रहे किंतु प्रयास करते रहे। अंततोगत्वा एक बार वह जीते और अमेरिका के राष्ट्राध्यक्ष बने। यदि एक बार में ही हार मानकर वे पीछे हट जाते तो क्या कभी अमेरिका के राष्ट्रपति बन सकते थे? अब्राहम लिंकन का लक्ष्य ऊंचा था। उनका ध्येय ऊंचा था। आप देखें कि जैसे ही वे राष्ट्रपति बने, उनके सलाहकारों ने उनको सलाह दी कि अमुक व्यक्ति आपके प्रति थोड़ा अलग विचार रखने वाला है।

वह आपकी निंदा करने वाला है। उसको, उसके पद से च्युत कर दिया जाना चाहिए।

राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने कहा कि मेरे प्रति उसके विचार अच्छे नहीं हैं। किंतु वह अपने कार्य में दक्ष है या नहीं है? क्या वह कार्य में कटौती कर रहा है? क्या वह कार्य में प्रमाद कर रहा है? या फिर वे ठीक से काम कर रहे हैं? वे राष्ट्रभक्त हैं या नहीं हैं? उनमें राष्ट्र की भक्ति होनी चाहिए। मेरे प्रति नहीं, राष्ट्रभक्ति चाहिए। वे राष्ट्र की सेवा करने के लिए तत्पर हैं या नहीं? सलाहकारों ने जवाब दिया कि राष्ट्रभक्ति तो उनमें बहुत है और वे अपना काम ईमानदारी से करते हैं। फिर अब्राहम लिंकन ने कहा कि मैं ऐसे व्यक्ति को नहीं हटा सकता। मेरे प्रति शत्रु के भाव यदि रहे तो कोई बात नहीं किंतु राष्ट्र के प्रति समर्पण की उनमें भावना है तो ऐसे व्यक्ति को नहीं हटाना चाहिए। शत्रुओं को मित्र बनाओगे या मित्रों को शत्रु बनाओगे?

हम अपने जीवन में क्या करते हैं? हमने कितने शत्रुओं को मित्र बनाया या हमने कितने मित्रों को शत्रु बनाया? हमें अपने को बढ़िया बनाना है तो हमें हमारी क्रिया, हमारी प्रवृत्ति, हमारी भावनाएं, हमारे विचार को श्रेष्ठ बनाना होगा। दूसरों को नहीं अपने को भीतर से बदलना होगा। तभी दूसरे से श्रेष्ठ बनेंगे। यह दृष्टि समता की है। वह हमें समता में ले जाएगी। वैसी स्थिति में चाहे कोई हमारी निंदा करे या प्रशंसा, मेरे में कोई अंतर नहीं आएगा।

आचार्य देव के विचार सुनकर महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बसंत दादा पाटिल बड़े प्रभावित हुए। इंदौर में विराजते समय ये ही सूत्र आचार्य गुरुदेव ने उस समय के मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री मोतीलाल वोरा को भी दिये। वे वहां हो रहे अधिवेशन के दिन मुख्य अतिथि के रूप में आये थे। उन्होंने उन्हीं सूत्रों की व्याख्या की और उसे जन-जीवन के लिए उपयोगी बताया। उन्होंने गुरुदेव के विषय में सुना तो कहा मैं पहले दर्शन करना चाहूंगा। वे दर्शनार्थ आये तब वे सूत्र गुरुदेव ने उनको दिये। अधिवेशन में समझने वाले सूत्र से भी बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं और नहीं तो हमारे कान पर जूं भी नहीं रेंगेगी।

जंबू कुमार क्या करने जा रहे हैं? आप देखें कि कैसे उनके माता-पिता ने रंगीले स्वप्न देखे। शादी के स्वप्न देखे। उनकी शादी होने वाली थी—वह भी आठ कन्याओं के साथ। किंतु ऐसा क्या हुआ कि वह सुख त्याग कर विरक्त हो गए। सुधर्मास्वामी के व्याख्यान से, उपदेश से जंबू कुमार प्रभावित

हुए। जैसा मैंने बताया कि अरिहंत नाम लेते ही कषाय भाव शांत हो जाना चाहिए, क्रोध शांत हो जाना चाहिए। वैसे ही सुधर्मास्वामी की वाणी सुनकर जंबू कुमार के भीतर की विषय वासना शांत हो गई। जो शांति और सुख संयम में है वह गृहस्थ के सांसारिक सुख में नहीं है। जो सुख प्रवचन सुनकर, व्याख्यान सुनकर मिलता है, जो सुख संयमी जीवन में मिलता है, वह भोगी जीवन में कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। पर यह जिसको बदल जाता है, वही अनुभव कर पाया है। अन्य को तो कुछ अलग ही लगेगा।

बात तीन सूत्रों की चल रही थी। यह पृथ्वी जब तक शांत है तब तक ही शांत है। यदि इसने सहनशीलता छोड़ दी, भूकम्प आ गया उस दिन हमारे जीवन की क्या दशा होगी? उस समय जो त्रासदी आएगी हम उस समय ही जान पाएंगे कि वह त्रासदी कैसी है? पृथ्वी शब्द भी स्त्री पर्याय है। पृथ्वी की तरह माताओं के भीतर भरा हुआ गुस्सा जिस दिन बाहर आयेगा उस दिन भूचाल आ जाएगा। सब कुछ तहस-नहस हो जायेगा। जब तक माताओं के मन में भूचाल नहीं आता तब तक उनमें भीतर ममता की भावना, ममत्व है। वह पचाती है। माताओं में ममता और क्षमता दोनों है। माताओं में, आचार्य में और नेतृत्व कर्ता में ममता नहीं तो उसका नेतृत्व सफल नहीं होगा। इसी प्रकार जिसमें क्षमता यानी भेद करने की क्षमता नहीं है कि कौन किसको, क्या, कैसे कार्य करवाना, किसमें नियोजित करना? उसके लिए गुड़-गोबर एक समान हो जाएगा।

हमारे भीतर भी समता और क्षमता, दोनों होने चाहिए। हमें हमेशा समता का भाव रखना चाहिए। उसके पास कितना है, मेरे पास कुछ नहीं है या उसके पास ये चीज नहीं है ऐसे भाव नहीं रखने चाहिए। यदि कोई व्यक्ति हमसे कमजोर है तो उसके ऊपर भी अपना दबाव नहीं रखें। न ही उसका तिरस्कार या अपमान करें। हमारे अंदर द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिए। हमारे भीतर द्वेष की भावना होने का मतलब है कि हमने धर्म को समझा नहीं है। कोई बात हो या न हो तो यह नहीं कि भरे व्याख्यान में परोस दो। ऐसा करने वाला प्रवचन का अधिकारी नहीं है। यह शक्ति का दुरुपयोग है, यदि ऐसे भाव पनप रहे हैं तो उसे सुधर्मा पीठ पर बैठने का अधिकार नहीं है।

प्रवचन सभा में जाकर बोलने मात्र से प्रवचन का लाभ मिलने वाला नहीं है। प्रवचन उसे कहा गया है जो ज्ञान का वाचन करे और जिससे ज्ञान का प्रकाश प्रसारित हो। प्रवचन देने वाला किसी के मन में ज्ञान का प्रसार

करे तो वह प्रवचन सार्थक होगा। मन में रहा हुआ द्वेष, मन में रही हुई गांठ प्रवचन से निकालने के लिए यह प्रवचन पीठ नहीं है। यह स्थान मन में रहे हुए द्वेष को निकालने के लिए नहीं, अमृत की वर्षा करने के लिए है। यहां पर एकमात्र अमृत की वर्षा होनी चाहिए। प्रवचन को सुनकर, उसके ज्ञान को प्राप्त करके कितना भी दुःखी प्राणी हो, कितना भी कषाय हो, कषायों में तपने वाला हो, उसको शांति का अनुभव हो। उसको समाधि का अनुभव हो, इस प्रकार का कार्य करना चाहिए।

आचार्य देव के 3 सूत्रों की बात हो रही थी। ये तीन सूत्र केवल साधुओं के लिए नहीं हैं। वे श्रावकों के लिए भी हैं। जो भी सुख से जीना चाहता है, जो भी सदा के लिए सुख से जीवन जीना चाहता है, उसके लिए ये तीनों सूत्र, सह-अस्तित्व, सहिष्णुता और समता है। इन तीनों सूत्रों को हम अपने जीवन में आत्मसात् कर अपने जीवन का अंग बनाने का प्रयत्न करेंगे।

यदि हम ऐसा करेंगे तो निश्चित रूप से अपने जीवन में धर्म की अनुभूति करेंगे। जब धर्म हमारे जीवन में आएगा तो कोई कारण नहीं कि हमारे जीवन में दुःख रहे। ये बात हमें समझ लेनी चाहिए कि हम धर्म की आराधना करने तो निकले हैं किंतु असल में धर्म की आराधना क्या है? हमने जाना नहीं है। अभी तक हमने वचनों से कहा है कि हमें धर्म की आराधना करनी है। किंतु धर्म की असल आराधना को हमने जाना नहीं है। हमको यह समीक्षा करनी है कि हम धर्म की आराधना को जानें। यदि धर्म की आराधना को जानने के लिए प्रयत्नशील बनेंगे और सही स्वरूप को जानकर धर्म की सही आराधना कर सके तो अपने जीवन को ही नहीं हम अपने कुल को, परिवार को और समाज को सार्थक बनाएंगे। ऐसा विचार लेकर हम चलेंगे तो हमारा जीवन धन्य बनेगा।

04 अगस्त, 2019

3

साँप से खेलना

हमारी जीवनचर्या दो पाटों के बीच में चलती है। एक पाट है निश्चय का और दूसरा पाट है व्यवहार का। नदी का एक यह छोर है और दूसरा छोर होता है उसके सामने। नदी के एक छोर से दूसरे छोर को देख पाते हैं।

कोई पूछ ले कि समुद्र का छोर कहां है तो क्या बतायेंगे?

हम जिस जगह खड़े हैं, वही समुद्र का छोर है। समुद्र के किनारे खड़ा कोई व्यक्ति समुद्र का छोर ढूंढ़ रहा है। उसका अंत ढूंढ़ रहा है। समुद्र के किनारे पर खड़ा होकर वह कहता है कि समुद्र का किनारा मुझे दीख नहीं रहा है। वह खड़ा समुद्र के किनारे पर ही है। आप विचार करो कि वह बोल रहा है कि उसे समुद्र का किनारा नहीं दिख रहा है। उसको समुद्र का दूसरा छोर नजर नहीं आ रहा है। दूसरा छोर है या नहीं है?

(प्रत्युत्तर– है)

आप बोलने लग गए, है। पर किधर है? कहां है? कहीं नजर आ रहा है? हम जहां खड़े हैं वहीं छोर है या नहीं है? दूसरा छोर हमें नजर नहीं आ रहा है। वह है या नहीं है? दूसरा छोर है, यह हम मानते हैं। आगम की भाषा में कहें तो लवण समुद्र का एक किनारा जम्बू द्वीप है एवं दूसरी ओर धातकी खंड द्वीप आ जाता है। लवण समुद्र इन दोनों के बीच में है। इस प्रकार दोनों तरफ छोर है या नहीं है? किनारा है या नहीं है? दोनों तरफ किनारे होते हैं।

हमारी चर्या भी दो पाटों के बीच में चल रही है। एक निश्चय का पाट है और दूसरा व्यवहार का पाट है। निश्चय में हम यह मानकर चलते हैं कि आत्मा अमूर्त है और अमूर्त भाव नित्य होता है। आत्मा का स्वरूप अरूपी है, जिसे छद्मस्थ व्यक्ति देख नहीं सकता। उस आत्मा का दर्शन, उस आत्मा के स्वरूप को एक मात्र केवलज्ञान से ही देखा जा सकता है।

दूसरा है, व्यवहार। जिसे अभी हम जी रहे हैं। आज से पहले तक जिससे कोई संबंध नहीं था, उसके साथ संबंध जुड़ता है और वह परिवार का सदस्य बन जाता है। माता-पिता, पत्नी आदि सभी रिश्ते-नाते व्यवहार के धरातल पर हैं। निश्चय में न कोई माता है, न कोई पिता है। न कोई सगा है, न किसी से कोई संबंध है। निश्चय में कोई कुछ नहीं है। व्यवहार में हम कहते हैं कि यह हमारा अमुक संबंधी है। हम जिससे जैसा रिलेशन रखते हैं, उसके आधार पर हम उनके साथ वैसा संबंध करते हैं। वैसा व्यवहार करते हैं। किंतु केवल व्यवहार में आदमी जीता रहे और निश्चय को छोड़ दे तो निश्चय को प्राप्त कैसे करेगा?

हम सामायिक, स्वाध्याय, पौषध करते हैं। साधु, साधु बने हैं। साधु बनने एवं सामायिक-पौषध करने के पीछे किसी का उद्देश्य क्या है? यदि वह आत्मा को सिद्ध नहीं बनाना चाहता हो, यदि उसकी निर्जरा की भावना नहीं हो तो साधना मायने नहीं रखेगी। अभवी का लक्ष्य आत्मा की सिद्धि और निर्जरा के भावों का नहीं होता है। उसका लक्ष्य होता है वैभव पाने का। देवों का सुख प्राप्त करने का। देवों की संपत्ति प्राप्त करने का। देव ऋद्धि पाने का। इन कामनाओं से वह धर्म की आराधना करता है। सच्चे मायने में जो धर्म की आराधना करता है, उसका लक्ष्य कर्मों की निर्जरा करने का होता है।

मेरी आत्मा जिन कर्मों से बंधी हुई है, मुझे आत्मा को उन कर्मों से रिक्त बनाना है। जो दूसरे के कब्जे में है, दूसरे के अधीन है, उसको स्वाधीन बनाना है। जैसे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के हिसाब से कहता है कि वह अमुक राष्ट्र के अधीन है। भारत भी एक समय आजाद नहीं था। स्वतंत्र नहीं था। यह पराधीन था। लोगों के भीतर एक भावना जगी कि हमें अपने राष्ट्र को, अपने देश को स्वतंत्र बनाना है। वैसे ही किसी-किसी आत्मा के भीतर यह भावना जग जाती है कि उसे अपनी आत्मा को स्वतंत्र बनाना है। कर्मों से आत्मा को स्वतंत्र बनाने के लिए वह प्रयत्नशील हो जाता है।

कर्मों से मुक्ति आत्मा का निश्चय रूप है, आत्मा का शुद्ध रूप है। उस निश्चय में व्यक्ति का जाना होता है किंतु व्यवहार में भी उसको संबंधों का त्याग करना होता है। माता-पिता, परिवार सब केवल रिश्ते-नाते के संबंध हैं। जब तक शरीर है, तभी तक उनके साथ मेरा संबंध है। शरीर

छूटते ही ये सारे संबंध छूट जाएंगे। ये संबंध बने रहेंगे क्या? हो सकता है कि हम याद करते रहें, हम किसी का स्मरण करते रहें, हमारी स्मृति में वह व्यक्ति जल्दी से ओझल नहीं हो किन्तु रिश्ते-नाते उनसे छूट गए। इसलिए जिस समय हम निश्चय में जी रहे होते हैं, उस समय हमें निश्चय का ध्यान रखना चाहिए और जिस समय हम व्यवहार में जी रहे होते हैं, उस समय हमें व्यवहार का लक्ष्य रखना पड़ेगा। निश्चय में रहने वाला व्यवहार का लक्ष्य रखे तो नहीं चलेगा और व्यवहार में जीने वाला निश्चय की बातें करे तो वह भी नहीं चलेगा। जो निश्चय और व्यवहार दोनों में जी रहा है, उसको निश्चय और व्यवहार दोनों तरफ की बात करनी रहेगी। किसी समय वह निश्चय में जी रहा है और किसी समय व्यवहार में जी रहा है। ये जितनी मर्यादाएँ बनी हैं, नियम बने हुए हैं, सारे ज्ञान व्यावहारिक हैं। सामायिक में कैसे बैठना है, कैसे उठना, कैसे पूंजना, ये सारा व्यवहार है। निश्चय में तो आत्मा ही सामायिक है। आत्म भावों में हम आ गए तो वह सामायिक है। कोई जरूरी नहीं है यह देखना कि उसने कौन-से वस्त्र पहने हैं। कौन-सा भवन है।

भरत चक्रवर्ती अरिसा भवन में थे और उनको केवलज्ञान हो गया। उस समय उनकी पोशाक कौन-सी थी? उनके कपड़े सफेद थे या रंगीन? शरीर आभूषणों से युक्त था या आभूषण रहित? वहां सामायिक की पराकाष्ठा, सामायिक का उत्कृष्ट रूप प्रकट हो गया। वह कहीं भी प्रकट हो सकता है, वह निश्चय है। भरत चक्रवर्ती केवलज्ञान में चले गए। निश्चय सामायिक में चले गये तो केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। हम भी उस निश्चय तक जाने के लिए इस व्यवहार के माध्यम से आगे बढ़ रहे हैं। यदि व्यावहारिक धरातल पर ऐसी कोई मर्यादा, कोई अवस्था नहीं होगी तो व्यवहार का उच्छेद हो जाएगा, व्यवहार नहीं चलेगा। साधु की पोशाक नियत है। यदि साधु सोचे कि इस पोशाक से मोक्ष प्राप्त होने वाला नहीं है और वह निश्चय की बात करता है तो गफलत में पड़ जाएगा। उसको सावधानी रखनी चाहिए कि यह पोशाक सर्वस्व नहीं है। लोक में लिंग का प्रयोजन है, इसलिए जरूरी है।

श्रीमद दशवैकालिक सूत्र में एक सूत्र है 'संकट्ठाणं विवज्जए' अर्थात शंका के स्थान का वर्जन कर दे। जहां किसी पर शंका की बात होती है, वैसे स्थान का वर्जन करना। व्यक्ति किन-किन कारणों से शंकाशील हो सकता है? शास्त्रकार कहते हैं– 'एगो एगित्थिए सद्धिं, नेव चिट्ठे न संलवे'। एक मुनि,

एक बहन के साथ बातचीत कर रहा है। वहां न कोई दूसरी बहन है, न कोई दूसरा साधु है, न कोई श्रावक है। कोई नहीं है। अचानक कोई श्रावक आता है तो उसके मन में फीलिंग क्या होगी?

इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि ऐसे शंका वाले स्थानों का वर्जन करना चाहिए। हो सकता है कि मुनि पूर्ण शुद्ध है, उसके मन में कोई कुटिल भावना, गलत भावना नहीं आई। उस बहन के मन में भी कोई ऐसा विचार नहीं आया। फिर भी शास्त्रकार कहते हैं कि जो शंका का स्थान है, उसका वर्जन होना चाहिए। शास्त्रकार यहां तक कहते हैं कि सड़क के किनारे जहां पर बहुत से लोग आ-जा रहे हैं, वहां पर भी अकेला साधु, अकेली स्त्री के साथ खड़ा रहकर चर्चा नहीं करे। क्योंकि आने-जाने वाले क्या संदेश लेंगे? यही कारण है कि साधु और साध्वियों को एक ही दिशा में, एक ही दिन साथ-साथ विहार नहीं करना चाहिए। दूसरे-तीसरे दिन विहार होता है, वह अलग बात है। किंतु साथ-साथ चलने या थोड़ा आगे-पीछे चलने से लोगों में संदेश अच्छा नहीं जाएगा।

एक साधु ने जिस घर को फरस लिया है, साध्वियों को वहां नहीं फरसना चाहिए। गोचरी नहीं करनी चाहिए। ये व्यावहारिक है। फरस लिया तो कोई दोष नहीं है। यदि नहीं फरसा तो व्यवहार शुद्ध रह गया। साधु-साध्वियों को ये ध्यान रखना होता है कि गृहस्थ को वापस नया आरंभ-समारंभ नहीं करना पड़े। एक, दो, तीन, चार साधु-साध्वी या पूरा एक सिंघाड़ा या दो सिंघाड़ा एक ही घर में चले जाएंगे तो लोगों में विचार होगा कि क्या कोई और घर नहीं है? जिस साधु को देखो, साध्वी को देखो, पूरा सिंघाड़ा उसी घर में जा रहा है। यह विचार आएगा या नहीं आएगा?

साधु वहां क्या देखता है? यदि बड़ा घर है तो 2-2 साधुओं के अलग-अलग 3 या 4 सिंघाड़ों की गोचरी हो जाये। अलग-अलग समुदाय के साधु भी यदि चले गए और थोड़ी-थोड़ी भिक्षा ली तो वहां कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। क्योंकि एक बारात रोज जीम रही है वहां। विपुल बना हुआ रहेगा। यह भी निश्चित है कि बड़े परिवार में छोटे बच्चे भी होंगे तो बच्चों के लिए कुछ बचाकर रखना भी होता है। ऐसा नहीं कि डब्बा साफ हो जाए। किस समय किस बच्चे को भूख लग जाए, कोई बच्चा खाने के लिए कुछ मांग ले तो उनके लिए कुछ रखा जाता है। कोई चीज उनके लिए रखी जाती है। बच्चों को भूख लगने पर उनको वह खिलाकर राजी कर दिया जाता है। ऐसे

घर में 2-4 सिंघाड़े चले गए तो कोई फर्क नहीं पड़ता है। बड़े घर का मतलब घर बड़ा नहीं। बड़ा घर मतलब बड़ा परिवार से है। जिसमें मेंबर ज्यादा हैं। जोधपुर में ज्यादा से ज्यादा कितने मेंबर का घर है? कौन-सा घर है जिसमें ज्यादा से ज्यादा मेंबर हों? पता है क्या? बेंगलूरु में कौन-सा है? कौन-सा परिवार है? बम्बकी परिवार में लगभग 77 लोगों का खाना एक जगह, एक ही चौके में बनता है। कितना बड़ा परिवार है। जोधपुर में शायद ही हो। कोई हो तो भी पता नहीं। क्योंकि हमने कोई सर्वे नहीं किया है।

हमारे सामने अंतरकृतदशांग सूत्र है, जिसमें देवकी को इस बात की शंका पैदा हो गई कि दूसरी जगह भिक्षा देना लोगों ने बंद कर दिया क्या? हर मुनि मेरे घर में आ रहे हैं। हालांकि उसके घर में कोई कमी नहीं थी। वह उस हिसाब से विचार भी नहीं कर रही थी। उसके मन में दर्द यह था कि क्या द्वारिका के लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा कम हो रही है? साधुओं के प्रति श्रद्धा कम हो रही है? सुपात्र दान के प्रति लोगों का रुझान कम हो रहा है? अन्यथा मेरे घर पर ही एक, दो, तीन सिंघाड़े गोचरी के लिए क्यों आते?

इसलिए मुनि को सावधानी रखनी होती है कि जिस घर में भिक्षा ले ली, उस घर में वापस नहीं जाना है। कभी-कभार भूल होती है। फरसा हुआ वापस फरसने में आ जाता है तो उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए किंतु यदि संतों ने फरसा फिर साध्वियों ने फरस लिया तो प्रायश्चित्त की बात नहीं है। यह जरूर ध्यान रखना है कि वापस उनको आरंभ नहीं करना पड़े। फरसने के बाद फिर नया बनाना पड़ता है तो पश्चात् कर्म दोष लगता है। इसलिए उसका वर्जन करने को कहा गया है।

चितौड़गढ़ में आचार्य पूज्य गुरुदेव का चातुर्मास था। वहां दो वैरागी पास-पास बैठकर ध्यान-ज्ञान कर रहे थे। गुरुदेव की दृष्टि उन पर चली गई। गुरुदेव की दृष्टि उधर पड़ी। उस समय तो गुरुदेव ने कुछ भी नहीं फरमाया। प्रतिक्रमण के बाद जब वंदना हो रही थी, संतों की वंदना हो गई और वैरागी वंदना करने लगे तो गुरुदेव ने धीरे से उनको कहा– "यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं...। हालांकि कुछ भी बात नहीं है किंतु एकदम समीप बैठकर ज्ञान-ध्यान भी नहीं करना चाहिए। थोड़ी दूरी रखनी चाहिए ताकि किसी को भी कोई शंका पैदा नहीं हो।" बात कुछ भी नहीं है किंतु वैसे बड़ी महत्त्व की है। बात बड़ी महत्त्व की है, इसलिए व्यावहारिक जीवन में सावधानी रखना बहुत जरूरी है।

श्रीमद् दशवैकालिक सूत्र में मुनि के लिए कहा गया है कि वेश्या के घर में जाना तो बहुत दूर की बात है, उस मोहल्ले में ही नहीं जाना चाहिए। किंतु दूसरी तरफ स्थूलिभद्र मुनि ने कोशा गणिका के वहां चातुर्मास किया, जिसके साथ पहले 12 वर्ष व्यतीत किये थे।

ये मैं इसलिए कह रहा हूं कि किसी के भी मन में प्रश्न खड़ा हो सकता है कि ये भी तो शंका का स्थान था। वहां तो शंका होने की बात ही है कि 12 साल जिसके साथ रहे, वहीं पर चातुर्मास करने के लिए जा रहे हैं! किंतु वहां पर जो अनुमति मिली है, वह आगम व्यवहारी मुनि से मिली है। आगम व्यवहारी के अधिकार से मिली है। आगम व्यवहारी उसे कहा जाता है जो अपने ज्ञान में देखता है, उसका आचरण करने वाला होता है।

हमने इस कहानी को बहुत बार सुना है, पढ़ा है। आप देखें, स्थूलिभद्र मुनिराज के गुरु ने स्थूलिभद्र को अनुमति दी पर दूसरे साल दूसरे मुनि ने जब अनुमति मांगी तो उन्होंने क्या कहा? क्या वहां पर चातुर्मास होना ठीक है? जबकि पहले से सारी स्थितियां बदल चुकी थीं। स्थूलिभद्र के समय कोशा कुछ अलग रूप में थी और अगले वर्ष में उसका रूप बदल गया था। वह गणिका श्राविका बन चुकी थी। 12 व्रत उसने धारण कर लिए थे। अब वैसा कोई खतरा नहीं था फिर भी खतरा पैदा हो गया।

इसलिए कहा गया है कि 'संकट्ठाणं विवज्जए' यानी शंका स्थान का वर्जन करना है। विशिष्ट ज्ञानी अपने ज्ञान में जो देखते हैं, वैसा करते हैं। वैसा सबके लिए आचरणीय नहीं होता। सबके लिए आचरणीय वही होता है जो आगमों में निर्देशित है। यदि हम भी उस ज्ञान के स्तर पर पहुंच जाएंगे तो हमारे लिए भी आगम गौण हो जाएंगे। फिर आगम हमारे लिए जरूरी नहीं रहेंगे क्योंकि हम उस स्तर को लांघकर ऊपर चले गए। हम स्वयं आगम बन गए। वहां पहुंचने के बाद जैसा ज्ञान में देखा जाएगा, वैसा किया जाएगा।

एक रूपक है। एक व्यक्ति चल रहा है। उसकी आंखें काम कर रही हैं। मार्ग में चलते हुए खड्डा आएगा, तो वह खड्डे से बचाव कर लेगा। वहाँ दूसरी चीज, सर्प या कोई भी जीव आएगा, उससे बचाव कर लेगा। उसके पीछे एक अंधा आदमी चल रहा है। अंधा आदमी खड्डे में गिर सकता है। वह यदि बच गया तो भाग्य भरोसे, नहीं तो खड्डे में गिरने के पूरे चांस हैं। वह सड़क पर चल रहा है और सर्प पर पांव पड़ने से सर्प ने काट लिया तो

वह बचाव करने में समर्थ नहीं होगा। क्योंकि वह रास्ते को जानता नहीं है। उसने सर्प को देखा नहीं। वही प्रज्ञाचक्षु यदि किसी आंख वाले की अंगुली पकड़कर जा रहा है तो उसका बचाव हो सकता है। आंख वाला उसका बचाव करेगा कि वह खड्डे में नहीं गिरे। आंख वाला उसको इस प्रकार से ले जाएगा कि सर्प पर उसका पैर नहीं पड़े। आंख वाले के पीछे चलकर अंधा आदमी सुरक्षित मंजिल तक पहुंच सकता है। इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि गीतार्थ की निश्रा में अगीतार्थ का विचरण होना चाहिए। अगीतार्थ, जिसने अभी आगम को समुचित रूप से नहीं जाना है, जिसको निश्चय-व्यवहार का ज्ञान नहीं है, उत्सर्ग-अपवाद का ज्ञान नहीं है, वह आगेवान होकर विचरण नहीं करे। वह गीतार्थ की निश्रा में विचरण करे।

जो इन सारी बातों को जान रहा होता है वह आंखों वाला व्यक्ति, उसको सही दिशा में ले जाने वाला बनेगा, अन्यथा उसका भटकाव होना संभव है।

एक अंधे आदमी को यहां परकोटे में बीच में लाकर खड़ा कर दें। वह कितना प्रयत्न करेगा जब परकोटा उसके हाथ में आ जाएगा? वह कितनी देर में दरवाजे से बाहर आने में सफल हो पाएगा? बहुत कठिन काम है। उसको पता ही नहीं है कि मैं किस दिशा में चल रहा हूं तो वह चलता रहेगा, चलता ही रहेगा। मान लो किसी प्रसंग से परकोटा उसके हाथ में आ गया, दीवार हाथ में आ गई और वह दीवार के सहारे चलता रहा। उसको मालूम नहीं है कि दरवाजा नजदीक है। जैसे ही दरवाजा नजदीक आया, उसे जबरदस्त खुजली आई और खुजली करने के लिए उसने परकोटे से हाथ हटा लिया। वह आगे बढ़ता रहा और दरवाजा पार करके आगे बढ़कर फिर वापस मैदान में आ गया। उसकी दशा फिर क्या होगी? अब उसको दरवाजा फिर कब मिलेगा? कुछ भी पता नहीं है कि कब तक मिल जाएगा। 24 घंटे में, 48 घंटे में या 24 दिन लगेंगे? पता नहीं है।

वैसे ही अज्ञान में जीने वाले व्यक्ति को पता नहीं है कि वह कब सम्यक् दृष्टि बनेगा, कब धर्म की ओर अभिमुख होगा। पर हमें विचार करना चाहिए कि हमारा सौभाग्य उदित हो गया। हमारे सौभाग्य का सूर्य उदित हो गया है। हमें धर्म का मार्ग मिल गया और ये दीवार मिल गई, रास्ता मिल गया। अब ऐसा नहीं हो कि ये दीवार हमारे हाथ से छूट जाए और हम वापस बीच में गुम जाएं। इसलिए सावधानी बरतनी होती है। इसलिए हमें आगम की मर्यादाओं

का ध्यान रखना होता है। इसलिए जो दिशा-निर्देश मिले होते हैं, उन दिशा-निर्देशों का पालन करना होता है।

जंबू कुमार दीक्षा के लिए तैयार होते हैं। वे लालायित हैं कि बस मुझे अनुमति मिल जाये तो मैं दीक्षा लूं। किंतु अनुमति मिलना उतना सहज नहीं होता है। माता-पिता, धर्म नहीं जान रहे हैं, ऐसी बात नहीं है। वे धर्म को जानते हैं, किंतु मोह की भावना, ममत्व की बुद्धि नहीं हटती है। उस पर का पर्दा नहीं हटता है तो माता-पिता अनुमति देने के लिए तैयार नहीं होते। वे सोचते हैं कि ये अभी बालक है, बच्चा है। संयमी जीवन के कठिन परीषहों को कैसे ये सह पाएगा। कैसे उन पर जय प्राप्त कर पाएगा? कइयों को यह भी भय होता है कि कहीं ऐसा नहीं हो जाए कि साधु जीवन के कष्टों से भागकर, वापस गृहस्थी की ओर आ जाए। आगमों में कई ऐसे प्रसंग भी आए हैं, अतः माता-पिता को ऐसे विचार भी आ जाते हैं कि यह वापस घर नहीं आ जाए।

हालांकि कइयों के मन डोले भी होंगे किंतु आत्म-निष्ठ, संयमनिष्ठ, सत्यनिष्ठ माता-पिता के मन में ऐसे विचार नहीं आते। इसके पीछे मनोविज्ञान है। जो माता-पिता अपने आप में सही हैं, एकदम ठीक हैं, वे अपनी संतान पर अविश्वास नहीं करते। उनको भरोसा है कि हमारा जीवन आत्मविश्वासी है, हम अपने जीवन में सच्चे हैं तो मेरी औलाद कमबख्त नहीं निकल सकती है। मेरी औलाद भ्रमित होने वाली नहीं होगी।

मरुदेवी माता से जब ऋषभदेव दीक्षा की अनुमति देने के लिए कहते हैं तो माता कहती हैं कि हां, ले लो बेटा! उसे विश्वास था मेरा बेटा जो करता है वह अच्छा ही करता है। मरुदेवी माता यह विचार करती हैं– मेरा ऋषभ जो करता है वह सही ही करता है। मेरा ऋषभ जो करता है, अच्छा ही करता है। मेरा ऋषभ कभी गलत कुछ कर ही नहीं सकता।

और आपका ऋषभ जो करता है वह? इतना भरोसा है तो सही? कोई आपसे कह दे कि आज आपके कंवर साहब को शराब के ठेके पर किसी के साथ में शराब पीते हुए देखा तो मन में भ्रम तो नहीं होगा? मन में संदेह तो नहीं हो जाएगा? मेरे सामने भले ही नहीं कहो, कोई कह दे जाकर, तो आपको विश्वास होगा या नहीं होगा?

दीक्षा लेने की बात पर शायद विश्वास नहीं करो। दीक्षा की बात को हँसी-मजाक में नहीं लेंगे। किंतु शराब? हँसी-मजाक में पीता है या नहीं?

हँसी-मजाक में शराब पी सकते हैं या नहीं पी सकते हैं? और दीक्षा, दीक्षा? नहीं, नहीं? बात ही बात में किसी की बात हो जाए कि तुम दीक्षा लोगे तो मैं भी दीक्षा ले लूंगा। बात ही बात में कह दे कि दीक्षा लूंगा। यदि आदमी खरा है और कहता है कि तुम दीक्षा लोगे तो मैं भी लूंगा तो फिर वह भी दीक्षा ले सकता है। अन्यथा दीक्षा लेगा या नहीं लेगा, कहा नहीं जा सकता। यदि आदमी खरा है तो उसे दीक्षा लेनी ही होगी। वह लेगा ही।

एक बालक सर्प से खेल रहा है। माता-पिता यह देखते ही भौचक्के रह गए। वे उसको सर्प से खेलते रहने देंगे या वहां से हटाने का प्रयत्न करेंगे? वे हटाने का प्रयत्न करेंगे। माता-पिता जानते हैं कि इसको पता नहीं है कि सर्प जहरीला है। अभी तक सर्प ने कुछ नहीं किया, यह बहुत अच्छी बात है। पुण्य योग है, किंतु सर्प अज्ञानी जानवर है। किस समय डस ले कोई पता नहीं। माता-पिता प्रयत्न करेंगे कि वह सर्प से खेलना बंद कर दे। वे उसको वहां से अलग करने की तरकीब सोचेंगे। उसका उपाय सोचेंगे और वैसा कार्य करेंगे। पर मोह रूपी सर्प से बेटा खेले तो खेलने से रोकोगे या खुश होओगे? वहाँ उलटा होगा। यदि बेटा मोह-सर्प से नहीं खेलना चाहेगा तो प्रयत्न किया जाएगा कि वह उससे खेले।

एक आदमी उपवास करता है। भोजन की सुगंध उसके नाक में घुस रही है। खाद्य पदार्थ भी सामने आ गया। अब एक क्षण के लिए उसके मन में खाने का विचार आ सकता है। भले ही प्रतिज्ञा ली हुई है, प्रतिज्ञा में दृढ़ है, किंतु संज्ञा जग सकती है। बताया भी जाता है कि भोजन की वस्तु को देखने के बाद यदि मनोज्ञ है, मनोनुकूल है तो भूख नहीं होते हुए भी आदमी को खाने की इच्छा जग जाती है। भले ही भूख नहीं है किंतु ऐसी चीजें है जिसको देखते ही मन में खाने की अभिलाषा जग जाती है। ऐसा होता है। हालांकि अभी उसका पेट भरा हुआ है। खाली पेट हो तब तो और जल्दी संज्ञा पैदा हो जाएगी।

वैसे ही निरंतर संपर्क में रहने पर ममत्व का विस्तार होता है। संपर्क टूटता है तो ममत्व का भी विस्तार रुकता है। दीक्षार्थी विचार करता है कि ममत्व आत्मभाव में बाधक होता है। यह ममत्व न मेरे लिए हितकर है और न ही माता-पिता के लिए। यह माता-पिता के लिए भी घातक है और मेरे लिए भी घातक है। इसलिए मुझे माता-पिता के वचनों को सुनकर, ममत्व के भावों को सुनकर, ममता का विस्तार नहीं करना है। ममता के प्रवाह में

नहीं बहना है। मेरे भीतर यदि विवेक जागृत हुआ है, मेरे भीतर यदि ज्ञान का बोध पैदा हुआ है तो मुझे चाहिए कि मैं इस ममत्व के बंधन को तोड़ फेंकू। ममत्व के इस बंधन को तोड़ने से मेरा भी कल्याण है और माता-पिता का भी। उनके दिल से भी ममत्व भाव को हटा सकें, उनके दिल में भी ज्ञान का व्यापार या ज्ञान का जागरण हो सके, तो वे भी ममत्व से अपनी आत्मा को बचा पाएंगे। मोह-सर्प से बचना-बचाना ही उत्तम है।

यह निश्चित है कि आत्मा का कल्याण ममत्व से नहीं समत्व से ही होगा। ममता से आज तक किसी का कल्याण हुआ नहीं है और आगे भी कभी मोह-ममत्व में रहकर कल्याण पथ पर आगे नहीं बढ़ सकते। समता ही सर्वोपरि है। वही सभी के हित में है। इसलिए क्षणिक मोह की रक्षा करना कदापि सही नहीं है। मुझे भीतर के निर्मोह भाव की रक्षा ही करनी चाहिए। ऐसा विचार करके अपने मन को और दृढ़ बनाएं कि फिसले नहीं। मन विचलित नहीं हो। दृढ़ता के साथ किन्तु विनम्र शब्दों में अनुरोध करें। अनुरोध में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता है। निवेदन का भाव सामने वाले को प्रभावित करने वाला होता है। आग्रह और आदेश का भाव सामने वाले में भी अहंकार पैदा करने वाला होता है और आग्रही बनाने वाला होता है। इसलिए दीक्षार्थी अनुरोध के भाव को स्वीकार करें और विनम्र भाव से निवेदन करें।

यह व्यावहारिक धरातल है। व्यवहार में जीने वाला उसका उच्छेद नहीं कर सकता और न ही करना चाहिए। निश्चय दृष्टि व्यक्ति को द्रष्टा बनाती है। जो हो रहा है उसे देखो। प्रतिक्रिया मत दो। ऐसी स्थिति व्यक्ति को शांत बनाती है। औरों को भी संतोष दिलाती है।

05 अगस्त, 2019

4

लघुभूत विहार प्रशस्त

शांति जिन एक मुज विनति...

शांति की कामना लगभग सभी प्राणियों को होती है। सभी सुख से जीना चाहते हैं। सभी का विचार रहता है कि हम अशांत न बनें। हमें दुःख और पीड़ा न झेलनी पड़े। इसके साथ एक दूसरा विचार यह है कि सुख के लिए हम क्या कर रहे हैं? समाधि के लिए हमारा क्या कार्य क्या हो रहा है? हमारे कार्य सुख और शांति के लिए हैं भी या नहीं?

आगमों में एक बात बताई गई है– 'लहुभूय विहारिणं' यानी लघुभूत विहारी होना। ये समाधि का एक हेतु है, समाधि का एक कारण है। अशांत नहीं होने का, अशांति से बचने का एक उपाय है– लघुभूत विहारी होना। लघुभूत विहारी का अर्थ हमें समझ लेना है। लघुभूत यानी हलका होना। हलका हो कर विचरण करना, जीवन जीना।

हम भार में जीते हैं या हलका होकर जीते हैं? (प्रत्युत्तर– भार) क्या है भार? हमारा भार है तनाव। हमारा भार है– टेंशन। टेंशन किससे पैदा होता है? तनाव और टेंशन की पैदाइश क्या है? अच्छा यह बताओ कि किस-किस को तनाव है? किस को नहीं है? (प्रत्युत्तर– सभी को है)

सबको तनाव होने का कारण क्या है? कारण ध्यान में होगा या नहीं होगा?

मुंह में मिर्ची लेते हैं तो मुंह जलता है। धूप में खड़े होते हैं तो पसीना होता है। मुंह जलने का मतलब है कि मैंने तेज मिर्ची खायी है। यदि मुझे पसीना आ रहा है तो मैं धूप में, गर्मी में बैठा हूं। अगर ठंडक में गया तो मुझे पसीना आना बंद हो जाएगा। एसी रूम में जाएंगे तो बंद हो जाएगा। मिर्ची की बजाय मैंने घी खा लिया तो मुंह नहीं जलेगा। इतना वह जानता है फिर

उसको क्या करना होगा? मिस्त्री या गुड़ जैसी कोई मीठी चीज खाएंगे तो मुंह जलना बंद हो सकता है। मुंह जल रहा है किंतु मिर्ची खाना छोड़ेंगे नहीं तो कोई मतलब है क्या? मिर्ची छोड़ी नहीं, खाते गए। खाते जा रहे हैं और चिल्लाते भी जाएं कि मुंह जल रहा है। मुंह जल रहा है। इस प्रकार चिल्लाने से क्या होगा? गीत हम गाते हैं पर हमारी तैयारी क्या है? मिर्ची मैं छोड़ूंगा नहीं। मिर्ची खाने का मन है। जीभ जलती है तो जले पर मिर्ची तो खाऊंगा। मुंह जल रहा है किंतु मिर्ची खाना नहीं छोड़ सकता। मिर्ची से प्यार है। उसको नहीं छोड़ा जा सकता है। जब आप मिर्ची नहीं छोड़ सकते तो फिर ये मत बोलो कि मेरा मुंह जल रहा है। ये मत बोलो कि मेरा मुंह जल गया। कोई जबरदस्ती मिर्ची खिला नहीं रहा है। मिर्ची कोई खिलाए तो हम किसी की शिकायत करें पर मिर्ची हम अपनी पसंद से खा रहे हैं!

वैसे ही टेंशन अपनी पसंद से बढ़ा रहे हैं। दुःख और तनाव जितना भी बढ़ा रहे हैं, हम अपनी मरजी से ही बढ़ा रहे हैं। ऐसा नहीं है कि हमारी मरजी नहीं और बढ़ रहा है।

सुनने में आया कि अनुच्छेद 370 का कुछ हुआ? क्या आप लोगों को कुछ असर हुआ। कुछ फीलिंग तो हुई होगी! आपको फीलिंग तो कुछ हुई ही होगी! (प्रत्युत्तर–देशभक्ति-सी महसूस हुई) देशभक्ति कितनी है, मैं नहीं कह सकता। है या नहीं है, यह भी नहीं कह सकता। 370 हटने के बाद आप लोग कश्मीर में जमीन खरीद रहे या वहां जमीन लेकर बसने का विचार कर रहे हैं? है क्या ऐसा विचार? मेरे खयाल से होगा भी नहीं, किंतु फिर भी कुछ लगा तो सही। कुछ फीलिंग तो हुई। क्या हुई? बता नहीं सकते फीलिंग पैदा क्यों हुई, कैसे हुई? जैसे यह फीलिंग है, वैसे ही मेरेपन की बुद्धि हमारे भीतर रहती है। उससे जो वातावरण बनता है, उससे हम तनाव में आ जाते हैं। टेंशन में जीते हैं। मेरेपन की बुद्धि से हमारे सिर पर भार आता है।

यदि हलका होना चाहते हो तो इसका त्याग करो। मेरेपन की बुद्धि नहीं रखना क्योंकि मेरेपन की बुद्धि में संग्रह वृत्ति होती है। उसके त्याग या छोड़ने की दिशा में चलना होगा। संग्रह नहीं करने की दिशा में बढ़ना होगा। नहीं तो जितना उस बुद्धि का विकास होगा, उतना ही बोझ बढ़ेगा।

पूणिया श्रावक पर कोई बोझ था क्या? वह मस्ती से जीवन जी रहा था। कुछ लोग इतना बोझ डाल लेते हैं कि क्या पता, कल क्या होगा। परसों

क्या होगा। उससे आगे क्या होगा? उसकी अगली पीढ़ी का क्या होगा? उसकी आने वाली पीढ़ियों का क्या होगा? वो इतनी पीढ़ियां देखेगा क्या? उसको क्यों चिंता लगी है? वह अपना देखे कि उसे अपना जीवन कैसे जीना है? वह कहता है कि म.सा.! यह कोई बात नहीं है कि आगे की पीढ़ियों की नहीं सोचें। खाली अपनी चिंता लेकर जीएंगे तो आने वाली पीढ़ियों का क्या होगा? हमें आगे की पीढ़ियों का सोचना तो पड़ेगा। आगे की पीढ़ियों का सोचकर अपने माथे पर भार बढ़ा रहे हो या हलका कर रहे हो?

साधु के लिए बताया गया है कि वह लघुभूत विहारी है। वह प्रसन्नचित्त रहता है, तनाव में नहीं रहता है। लघुभूत दो प्रकार से होता है– एक द्रव्य से यानी उपधि कम करना और एक भाव से अर्थात् आसक्ति को कम करना।

शालिभद्र की जो कहानी हम सुनते हैं, उससे हमें नहीं लगता कि शालिभद्र के जीवन में कोई दुःख है। किंतु ज्ञानिवृन्द की आंखों में, नजर में वह सच्चा सुख नहीं था। यदि सुख था तो घर छोड़, साधु क्यों बने। सुख में था तो साधु बनने का क्यों विचार किया? साधु बनने की तोहमत क्यों ली? क्यों कष्ट में जीये? बहुत स्पष्ट है कि ज्ञानियों की दृष्टि में धन-वैभव हमारे सुख का हेतु नहीं है।

किसी को इतना वैभव, संपत्ति मिल जाये कि कुछ भी करने की जरूरत नहीं हो। जो चीज चाहिए वह सब मिल रही है। इतना होने के बावजूद वह सुखी नहीं है क्योंकि अभी सुख के सही स्वरूप को जाना नहीं!

एक राजा को एक चित्रकार की चित्रकारी बहुत पसंद आई। राजा ने उससे कहा कि तुम मेरे राज्य में, मेरे महल में रुक जाओ। राजा ने उसको अलग महल दिया– नौकर, दास-दासियां, पहनने के लिए वस्त्र-आभूषण, सुख-सुविधाएं, सब कुछ था। साथ ही राजा ने यह भी कहा कि– देखो भाई! मेरे यहां तुमको सारी सुख-सुविधाएं मिलेंगी किंतु यदि यहां से जाने की बात करोगे तो जिन कपड़ों में आए थे, वही पहनकर जाना पड़ेगा। उसको सुख मिल रहा है किंतु वह सुख स्वतंत्र है या परतंत्र? वहां रहने पर उसे सब सुख-सुविधाएं मिल रही हैं फिर भी उसे लग रहा है कि वह राजा का आश्रित है। उसे मालूम है कि जब तक राजा पर आश्रित हूं, यहां रह रहा हूं, तब तक ये सुख-सुविधाएं, महल मुझे मिले हैं। जिस दिन मैं जाना चाहूंगा, उस दिन ये सारी चीजें यहां से हट जाएंगी। सारी चीजें छीन ली

जाएंगी। मुझे एक भी चीज नहीं मिलेगी। मैं जैसा आया था, वैसे ही यहां से लौटना पड़ेगा।

मेरे खयाल से कोई भी समझदार आदमी वहां रुकना नहीं चाहेगा। जो आनन्द स्वतंत्र जिंदगी में है, वह आनन्द राजा के महलों में नहीं हो सकता, क्योंकि वहां परतंत्रता है।

वैसे ही यदि आप लोग सोचें कि यहां मुझे सारी सुख-सुविधाएं मिल रही हैं, सब कुछ है किंतु जब मैं यहां से जाऊंगा तो मेरे साथ क्या जाने वाला है? मैं जब पैदा हुआ तो नंगे बदन आया था। उस समय मेरे पास कुछ नहीं था और जब जाऊंगा तो कफन का कपड़ा जरूर रहेगा। किंतु वह कफन का कपड़ा भी शरीर को मिलेगा, आत्मा को नहीं। कहते हैं कि 'ज्यों आया, त्यों जाना होगा', यदि तुमने कुछ सार्थक नहीं किया तो साथ में भी कुछ जाने वाला नहीं। इसलिए हम यहां पर ऐसा क्या करें कि यहां से जाते हुए या जीते हुए हलके हो जाएं।

इसके लिए दो बातें बताई गयी। एक तो अपनी वृत्ति को सीमित कर लो। बहुत से व्यक्ति पच्चक्खाण करते हैं। कभी कुछ करते हैं तो कभी कुछ। वैसे तो 14 नियम चितारने चाहिए। 14 नियम जो बताए गए हैं, उनको चितारना चाहिए। शांतिलाल जी! आपने कितने नियम चितारे? 1, 2, 3, 4...बस! क्या दिक्कत है, 14 नियम चितारने में? कहने के लिए नियम थोड़े ही रखे हैं। आज 14 नियमों में कौन-कौन से खुले रहे और कौन-कौन से बंद हैं? जिसने आज तक पच्चक्खाण नहीं किया, 14 नियम में से कुछ भी नहीं किया, उनको मालूम होना चाहिए कि एक छोटा-सा पन्ना होता है, जिसमें 14 नियम लिखे हुए होते हैं। उनके आगे केवल यस या नो करना होता है। उसका खाली बॉण्ड भरना है और जिसने भरा है उसको वापस कल और परसों भी उस नियम को दोहराना है। यदि कोई कार्यक्रम है तो उस दिन थोड़ा फर्क कर लिया।

बताया जाता है कि 14 नियम चितारने-पालने से समुद्र जितना पानी एक छोटे लोटे में आ जाता है। समुद्र में कितना पानी होता है? कितने लिटर पानी है समुद्र में? और एक लोटे में कितना पानी आ जाता है? समुद्र जितना पानी, समुद्र जितनी क्रियाओं को, समुद्र जितने पापों को हम एक लोटे में भर सकते हैं। इसमें फायदा है या हानि है? फायदा होते हुए भी हम

नहीं करते हैं तो बाणिये का बेटा कैसा? बाणिया एक बार में चार काम करके आता है। एक बार किराया लगाया, एक बार में ही चारों काम करोगे या अलग-अलग किराया लगाकर काम करोगे?

एक बार बेगम साहिबा बादशाह अकबर से नाराज हो गईं। बेगम साहिबा रूठ कर अपने कमरे में सो गईं। बादशाह आए। बादशाह ने बेगम का मिजाज देखा तो पूछा कि हुआ क्या? नाराज क्यों हो? कुछ बताओ तो सही? बेगम चिल्लाते हुए बोली कि क्या बताना है? पूछ ऐसे रहे हो, जैसे कुछ पता ही नहीं है। बादशाह ने कहा कि मुझे नहीं मालूम। मालूम होता तो पूछता क्यों? बेगम ने फिर कहा कि, मैं नहीं बताऊंगी। बादशाह ने जवाब दिया कि बताओगी नहीं तो मालूम कैसे पड़ेगा? बेगम ने तब बताया कि आपने अपने दरबार में बीरबल को वजीर बना रखा है। बादशाह ने कहा– हां। बेगम बोली कि क्या आपको कोई मुस्लिम आदमी नहीं मिला? मेरा भाई क्या कम बुद्धिमान् है? अकबर बोले कि नहीं तो! यह किसने कहा? तुम्हारा भाई भला बुद्धिमान् क्यों नहीं है?– 'सारी खुदाई एक तरफ, जोरू का भाई एक तरफ'। तुम्हारा भाई कम थोड़े ही है। बेगम ने कहा– फिर उसे क्यों नहीं बनाया? बादशाह ने कहा कि हां! यह मुझसे गलती हो गई है। लेकिन उसमें क्या बात है? मैं आज ही बीरबल को हटाकर उसको वजीर बना देता हूं। यहां पर लोकतंत्र थोड़े ही है। मेरा राज चलता है। मैं जो चाहूं कर सकता हूं। मैं आज ही तुम्हारे भाई को वजीर बना देता हूं।

बादशाह ने बीरबल को हटाया और अपने साले साहब को वहां पर स्थापित कर दिया। एक दिन अकबर ने उससे कहा कि देखो, बाहर से व्यापारी आए हैं। तुम्हें ये जानकारी करनी है कि वे कहां से आए हैं? वजीर दौड़ा-दौड़ा गया और उन व्यापारियों का पता लगाया कि वे कहां से आए हैं? उसने पूछा– आप कहां से आए हैं– नरक, तिर्यंच, मनुष्य या देवयोनि से? (एक भाई को संकेत करते हुए) कहां से आए हो? (प्रत्युत्तर– उदासर से) पता लगाकर बादशाह के पास आया और बताया कि व्यापारी उदासर से आए हैं। अब बादशाह ने पूछा कि उनके नाम क्या हैं? वजीर फिर दौड़ा-दौड़ा गया और पूछा कि क्या-क्या नाम हैं? वे जो भी पांच-दस व्यापारी थे, उन्होंने अपना-अपना नाम बताया। वजीर, बादशाह के पास आया और बताया कि उनके ये-ये नाम हैं। बादशाह ने जानना चाहा कि वे क्या माल लाए हैं? वजीर फिर दौड़ा और वापस आकर बताया कि ये-ये माल विक्रय

करने के लिए लाए हैं। बादशाह ने फिर पूछा कि क्या भाव बेचना चाहते हैं? वह फिर से गया और भाव पता लगाकर बादशाह को बताया।

पुराने लोग कहते हैं कि 'पहली बुद्धि बाणिया और दूजी बुद्धि जाट' आज बाणिये की बुद्धि पर राहु लग रहा है या केतु लग रहा है? पहली बुद्धि बाणिये की, दूसरी बुद्धि जाट की और तीसरी ब्राह्मण की।

हमारे सारे गणधर ब्राह्मण थे। ब्राह्मण उसको कहा गया है, जो भौतिक जीवन में नहीं पड़ता है। जो आसक्ति में नहीं जीता है, वह ब्राह्मण है। जो ब्रह्म में जीता है, वह ब्राह्मण है। उसके लिए यह बाहरी आकर्षण काम का नहीं है।

वो वजीर बार-बार दौड़कर गया। जितनी बार अकबर ने पूछा उतनी बार वह पूछकर आया। वही कार्य यदि बाणिये को सौंपा गया होता तो वह एक ही बार में चारों काम करके आता या चारों काम के लिए चार बार अलग-अलग जाता? उस वजीर की जगह यदि कोई योग्य आदमी होता तो वह एक ही बार में सब कुछ पूछकर आ जाता। वह पता लगा लेता कि कौन व्यापारी आए हैं, कहां से आए हैं। क्या माल लेकर आए हैं। माल किस भाव में बेचना चाहते हैं और उसके बदले में क्या खरीदना चाहते हैं? ये सब जानकारी एक साथ ली जा सकती थी। किंतु वह वजीर बार-बार दौड़ा। बीरबल या कोई अन्य दीवान इस प्रकार से बार-बार दौड़कर नहीं जाता। वह एक बार में ही सारी बातों का निष्कर्ष निकालकर ले आता। इसलिए उसकी बुद्धि की दाद दी जाती है। हमारी बुद्धि कहां है? मैं नहीं कह सकता।

जब हम जान रहे हैं कि दुःख का कारण तनाव है, फिर भी हम किसमें जी रहे हैं? हम जानते हुए भी तनाव और टेंशन में जी रहे हैं। तनाव बढ़ाया किसने? हमने ही बढ़ाया है और ज्यादातर मानव तनाव में जीना चाहते हैं। अपने हाथ में सारा विश्व नहीं आ सकता है। हम चाहें कि सारा संसार हमारे हाथ में आ जाए, इस संसार की सारी चीजें हमारे हाथों में समा जाएं तो ये हो नहीं सकता है। हम आंखों से कितना कुछ देख रहे हैं लेकिन यदि एक अंगूठा आपकी आंखों को ढक दे तो दीखना बंद हो जाएगा। एकदम छोटी-सी जगह होती है, वह। हमारे हाथ में जितनी चीजें आ सकती हैं, उतनी ही आएंगी। हमारे हाथों में सारी चीजें नहीं भरी जा सकतीं किंतु हमारा मन चाहता है कि मैं सारे राष्ट्र पर अपना अधिकार जमा लूं।

14 नियम चितारने के लिए नित्य इन नियमों को स्वीकार किया जाता है। आज कितने पानी से ज्यादा उपयोग में नहीं लेंगे? पीने, नहाने आदि का मिलाकर कितने से अधिक उपयोग में नहीं लेना है? यह एक नियम है। एक अखबार में बताया गया है कि यहां जोधपुर में 50 करोड़ लिटर पानी नित्य मात्र गाड़ियां धोने में काम आता है। एक कार धोने में 162 लिटर जल, एक स्कूटर धोना है तो 50 लिटर जल एक दिन में उपयोग में लिया जाता है। इसमें कितना पानी वेस्टेज जा रहा होगा? पानी की कितनी भी किल्लत हो पर गाड़ियां धोएंगे। दिनभर गाड़ी चलेगी और गंदी होगी तो कल फिर धो देंगे।

एक तरफ हम कहते हैं कि 'पानी बचाओ, पानी बचेगा तो जीवन बचेगा' और दूसरी तरफ पानी का दुरुपयोग करते जा रहे हैं। हम उस को बचाने के सिद्धांत पर चलना नहीं चाहते। दूसरे जरूर उस पर अमल करें और मैं जैसा कर रहा हूं वैसा करता रहूं! 14 नियम चितारने से आपका माथा हलका होगा। भार हलका होगा। आज पानी कितने से ज्यादा उपयोग में लेना नहीं? वेस्टेज नहीं करना? मात्र इतने लिटर से ज्यादा पानी काम में नहीं लेना। आज इतनी जोड़ी पोशाक से ज्यादा पोशाकें नहीं पहननी। एक दिन में कितनी पोशाकें पहन लेते हो? एक तो है ही। सामायिक के कपड़े दूसरे हो गए और कहीं बाहर जाना हो गया तो एक पोशाक और महिलाओं को तो इससे बढ़कर चाहिए। बहनों के ज्यादा लग जाए तो बात अलग है। सुबह प्रार्थना में अलग साड़ी। व्याख्यान में अलग। वाचनी में अलग। मालूम कैसे पड़े कि मेरे पास इतनी साड़ियां हैं। इतनी पोशाकें हैं? आज कितने वाहनों से ज्यादा उपयोग में नहीं लेना है? इस प्रकार से 14 नियमों की जो पालना कर लेता है, उसके बहुत सारे पापकर्म दूर हो जाते हैं।

एक होटल में कितने कमरे होते हैं? कितने होने चाहिए? 40 या 50। जैसा होटल, वैसा कमरा। सब कमरे एकदम टॉप। यदि व्यक्ति ने एक कमरा किराये पर लिया है तो सारे होटल का पैसा लगेगा या एक कमरे का किराया लगेगा? एक ही कमरे का किराया उसे देना होगा। भोजन के लिए किसी ने ऑर्डर किया। होटल वाले जितना हर थाली में डालते हैं उतना उसकी थाली में परोसकर दे दिया। उससे अलग मांगेंगे तो अलग पैसा देना पड़ेगा। वह एक थाली का पैसा देगा या होटल में जितना भी खाना है उन सबका पैसा देना पड़ेगा? किसी ने कह दिया कि होटल के सारे कमरे मेरे लिए बुक कर दो। बुक कर दिए। किसी आदमी ने ऑनलाइन, उस होटल के एक कमरे का

किराया देखा और उसने एक कमरा बुक करवाया। किसी ने भूल से सारा होटल बुक करा लिया तो कितने कमरों का चार्ज देना पड़ेगा? सारे कमरों का चार्ज लगेगा। बस यही बात है 14 नियम में। जितने नियम हो रहे हैं, उतना हमको लाभ मिलेगा। ये 14 नियम चितार लेने से आदमी अपने आप में हलकेपन की अनुभूति कर सकता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. के जीवन का एक प्रसंग है। मुनि अवस्था में रहते हुए वे बहुत ही अल्प वस्त्र रखा करते थे। एक चोल-पट्टा, एक चादर और बिछाने के लिए एक तालपट्टी, जो कि एक बोरी जैसी थी। उस तालपट्टी पर मोम फेर लेते थे, जिससे उसके छिद्रों में जीव के प्रवेश होने की गुंजाइश नहीं रहती। वैसा कपड़ा आज शायद पसंद नहीं आता होगा। पर वे रखते थे। जब चोल पट्टा धोना होता तो उसे पहन लेते थे। ज्यादा वस्त्र नहीं रखते थे।

लघुभूत विहारी होने से तो वस्तुतः आनन्द की बात रहती ही है कि एक चोल पट्टा धारण कर लिया, चादर ओढ़ ली और तालपट्टी कंधे पर डाल ली। इसमें कितनी देर लगेगी? जिसके पास चार कपड़े हैं या मात्र एक चोल-पट्टा, चादर, तालपट्टी है तो उसे विहार करने के लिए निकलने में कितना समय लगेगा? आपको जाना है कहीं तो तैयारी में कितने घंटे लग जाते हैं? एकाध घंटा तो सामान्य बात होगी। यदि पहले बेग तैयार कर रखा हो कि कभी भी बाहर या यात्रा में जाएंगे और इसे लेकर बस निकलना ही है तो बात अलग है। ऐसे में सूटकेस लेकर रवाना हो गये। बाद में पता चला कि सूटकेस किसी ने खाली कर दिया था। अब क्या करेंगे? मेरे खयाल से निकलने से पहले एक बार खोलकर देख लेते हैं कि ऐसा तो नहीं कि किसी ने खाली कर दिया हो। इन सबके कारण आपको निकलने में टाइम लगेगा। और साधु को विहार करना है तो न आगे देखना पड़े, न पीछे देखना। ये चले–एक चोल-पट्टा, चादर ली और विहार के लिए निकल पड़े। लघुभूत बनने के लिए पहली बात है–उपधि कम करना।

बहनों में से किसके पास 25 साड़ियों से ज्यादा नहीं है? यहां कितनी ऐसी बहनें बैठी हैं जिनके पास 25 साड़ियों से ज्यादा नहीं हैं। 'म.सा.! हम घर की हलकी नहीं लगाना चाहती हैं।' एक बहन हाथ खड़ा कर रही हैं। अच्छा! कौन बहनें पच्चक्खाण लेंगी कि 25 साड़ियों से ज्यादा नहीं रखना। यह छूट है कि यदि आपको नई साड़ी लेनी हो तो भले ही रोज एक नई

साड़ी ले सकती हैं किंतु संख्या 25 से बढ़नी नहीं चाहिए। कौन-कौन खड़ी होती हैं? कौन-कौन बहनें पच्चक्खाण लेंगी, कौन महिला पच्चक्खाण लेगी कि 25 साड़ियों से ज्यादा नहीं रखना है? (कुछ बहनें खड़ी होती हैं) 25 साड़ियों से अधिक नहीं रखने का पच्चक्खाण। अब आगे नये पच्चक्खाण में 50 साड़ियों से ज्यादा नहीं रखना। भार कम होगा। यह छूट है कि महिला जितनी नई साड़ियां खरीदनी चाहे, खरीद सकती है किंतु संख्या में 50 से अधिक नहीं होनी चाहिए। भले ही रोज नई साड़ी लो। 50 साड़ी से ज्यादा नहीं रखना। (कुछ और बहनें खड़ी होती हैं पच्चक्खाण दिया गया)

भारत को स्वतंत्र हुए कितने साल हो गए? 72 या 71? 72 वर्ष। 72 साड़ी से ज्यादा नहीं रखना। (कुछ और बहनें खड़ी होती हैं पच्चक्खाण दिया गया)

अब तक बहनें पच्चक्खाण ले रही थीं, अब भाई कौन-कौन है? कौन भाई पांच ड्रेस से ज्यादा नहीं रखेगा? पांच ड्रेस से ज्यादा नहीं रखना। धर्म की पोशाक की छूट है। बाकी ड्रेस पांच से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। पांच पोशाक से ज्यादा नहीं, धार्मिक पोशाक अलग है। पांच ड्रेस से ज्यादा नहीं रखने का पच्चक्खाण दिया गया। अच्छा चलो, दस के लिए? मंगलचंद जी! दस पोशाक से ज्यादा नहीं रखने वाले? दस से ज्यादा नहीं रखना और दस से ज्यादा यदि पोशाक हो तो कौन से दरवाजे से पोशाक बाहर निकलेगी? आज घर में जाकर देख लेना कि दस से ज्यादा रखनी नहीं है। सामायिक की पोशाक अलग है। (दस पोशाक से ज्यादा नहीं रखने का पच्चक्खाण दिया गया) दस से ज्यादा पोशाक हो गई तो फिर बर्तन वाले को दे देंगे और बर्तन खरीद लेंगे। अब 15 से ज्यादा नहीं रखने का पच्चक्खाण। गुलाब जी! अब तो खड़े हो जाओ। (15 ड्रेस से ज्यादा नहीं रखना पच्चक्खाण दिया गया) अब 21, 21 ड्रेस से ज्यादा नहीं रखना है। (पच्चक्खाण दिया गया)

आज घर जाकर देखना कि कितना हलका लगेगा। मालूम पड़ जाएगा। हलका तब लगेगा जब पेटी हलकी होगी। पेटी भारी रहेगी तब तक हलका नहीं लगेगा किंतु जैसे ही पेटी हलकी होगी, अपने आप हलका लगने लगेगा। घर जाकर गिनना कि पेटी में कितनी ड्रेस है? 10 ड्रेस से ज्यादा नहीं रखने का पच्चक्खाण लिया है। खुदा-न-खास्ता एक पोशाक कम निकल गई तो छूट मिल जाएगी। यदि 11 पोशाक निकल गई तो– 'ये हटाऊं या ये हटाऊं'

सोचने लगेंगे। ये बहुत बड़ी दुविधा होती है। ये भी ठीक है, ये भी ठीक है। किसे कम करना? एक को भी निकालना भारी पड़ रहा है। मतलब है कि हमारा मन कितना अटका हुआ है? एक ड्रेस को कम करने का निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि किस ड्रेस का त्याग करें? नया लेकर आ जाएंगे पर निकालने के लिए सोचेंगे कि निकालें कौन-सी?

शालिभद्र की तरह भले ही रोज नई पहनो किंतु दस से ज्यादा नहीं हो। जो नियम लिया गया, जितने का पच्चक्खाण लिया गया है उससे ज्यादा स्टॉक में नहीं होना चाहिए। यह भी एक पच्चक्खाण है। बहुत छोटा-सा पच्चक्खाण है। इसी प्रकार 14 नियमों के पच्चक्खाण का प्रतिदिन पच्चक्खाण करें। रोज नियम करें कि आज किसमें क्या कमी करनी है। ऐसा करके अपने पापों को दूर करने का प्रयत्न करना है। यदि 14 नियम की बुक आपके पास नहीं है तो कहीं भी, किसी के भी पास से ले लें और अपनी डायरी में 14 नियम लिखकर तारीख लगा दें। 1 तारीख, 2 तारीख, 3 तारीख। ऐसे करके 31 तारीख तक लगा दो। कौन-सी तारीख को क्या-क्या पच्चक्खाण करना है, नोट कर लो। पच्चक्खाण लें किंतु यह ध्यान रखें कि नियमों का पूर्ण रूप से पालन हो।

पांच लिटर पानी से ज्यादा उपयोग नहीं करना है। मतलब पांच लिटर पानी से ऊपर का त्याग करना है। इतनी पोशाक का त्याग करना है मतलब इससे ज्यादा पोशाक नहीं पहननी है और इतने वाहनों का त्याग करना है इस प्रकार से रोज एक पच्चक्खाण करेंगे कि इससे ऊपर का त्याग करना है। किंतु एक बात का ध्यान रखना, ऐसे नहीं करना कि आज पांच हरी खुली है। खुला नहीं रखना है, बंद करना है। खुला रखने के लिए करेंगे या बंद करने के लिए? पांच लिटर पानी से ऊपर का त्याग करना है मतलब पांच लिटर तक का ही उपयोग करना है। पांच लिटर के ऊपर जाते ही ताला लग जाए। इस प्रकार यदि हम पच्चक्खाण लेते हैं तो हमारे अंदर हलकापन हो जाएगा। वस्तु को कम करना, सुखी रहना।

आज आपको नारा दिया जा रहा है कि 'छोटा परिवार, सुखी परिवार' छोटे परिवार में सुख है या नहीं है, यह तो वे जानें। जो लोग भरे-पूरे परिवार में रहते थे, उसका आनन्द वे ही जान सकते थे। अब 'छोटा परिवार, सुखी परिवार' का नारा लगाया जाता है। वह कितना सुखी है? उस परिवार में रहने वाले ही बता सकते हैं। साथ नहीं रहने वाले नहीं जान सकते। जो बड़े

परिवार, संयुक्त परिवार में रहते हैं, उसका आनन्द वे ही जान सकते कि हम कितनी अच्छी तरह से सुखी रहते हैं?

एक परिवार में चार भाई हैं। कभी एक भाई नहीं होता और कोई काम आ जाता तो बाकी के तीन भाई घर पर होते थे। आज छोटे परिवारों में एक अकेला आदमी कमाने वाला होता है– दुकान अलग, फैक्ट्री अलग, ऑफिस अलग। तीन जगह पर उस अकेले आदमी को दौड़ लगानी पड़ती है। कहता है– म.सा.! टाइम ही नहीं मिलता है। यदि संयुक्त परिवार होता तो टाइम निकल सकता है। सामूहिक परिवार होते हैं, एक ही साथ में रहते हैं तो कभी कोई, कभी कोई समय निकाल लेता है। छोटे परिवारों में ऐसा नहीं हो पाता है। परिवार बढ़े पर हमें वेरायटी, उपधि को कम करना है। उससे मन सीमित हो जाता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव का इस संबंध में स्पष्ट मत था। उन्होंने अपने विचारों को लिखा भी है कि पुद्गलासक्ति जिसकी जितनी कम होती है, वह व्यक्ति उतना ही उत्थान करता है। उतना ही अधिक विकास करता है। यदि हममें पुद्गलासक्ति है तो वह पुद्गल हमारी आसक्ति को आगे बढ़ाने लग जाता है जिससे हमारी दुर्गति होती है। यदि हम अपना विकास करना चाहते हैं तो हम उपधि को कम करें। उससे अवश्यमेव विकास होगा। लघुभूत विहार प्रशस्त है। उसे स्वीकारेंगे तो हलका बनेंगे। यदि हम ऐसा करेंगे तो विकास-पथ पर अग्रसर हो पाएंगे।

06 अगस्त, 2019

5

धरा धैर्य की है सुखकार

शांति जिन एक मुज विनति...

कविता में एक पद आया है– 'धीरज मन धरी सांभलो'

यह पद बहुत मायने रखता है। आज व्यक्ति अधीरता से बहुत दुःखी है। व्यक्ति का दुःख, उसकी समस्याएं– अधीरता का कारण है। यदि व्यक्ति धैर्य धारण कर सके तो बहुत सारी समस्याएं अपने आप ही समाप्त हो जाएंगी। उसकी परेशानियां उसे दिक्कत नहीं करेंगी। सब खत्म हो जाएंगी।

धैर्य बहुत महत्त्वपूर्ण गुण है। यह सुलभ किसे हो पाता है? मिठाई बहुत बढ़िया है। बहुत स्वादिष्ट है किंतु हर व्यक्ति उसको खा नहीं पाता। खा भी ले तो पचा नहीं पाता है। वैसे ही धैर्य को पचाने की क्षमता हमारे भीतर होनी चाहिए। सुख-शांति, समाधि की हम जितनी भी बातें कर रहे हैं, वे सभी धैर्य के आधार पर हमको प्राप्त हो सकती हैं। अधीरता, अधैर्य हमें सुख, शांति और समाधि से दूर कराने वाला बनता है।

धैर्य कैसे रखा जाए इस पर यदि विचार करेंगे तो 'कैसे' की तो कोई बात ही नहीं बनती है। धैर्य रखकर, देखेंगे तो पता चलेगा। बहुत सारे प्रसंग हमारे सामने आते हैं। उस समय हम अपने आप में अनुभव करें, स्वयं अपनी निगरानी करें कि मुझे धैर्य कितना रहता है और अधैर्य कितना?

सुबह उठकर देखिए कि चाय-नाश्ता हमारे सामने आने में यदि विलंब हो गया तो हम धैर्य रख पाते हैं या अधीर बन जाते हैं? केवल चाय-नाश्ते की बात नहीं है। अपनी पूरी दिनचर्या पर दृष्टिपात् करेंगे तो जहां तक मैं सोचता हूं कि बहुत से कार्यों में हमारे भीतर धैर्य नहीं रह पाता है। हम अधीर बन जाते हैं। बस, काम जल्दी होना चाहिए। फास्ट होना चाहिए। फास्ट इसलिए होना चाहिए क्योंकि हम उसी संस्कृति में पल रहे हैं। आजकल

फास्ट-फूड की संस्कृति हो गई है। खाने को हमें फास्ट फूड चाहिए। रहने को सर्व-सुविधा युक्त मकान चाहिए। नौकर भी ऐसा चाहिए जो फटाफट काम करने वाला हो। इस फटाफट की संस्कृति से हमारे जीवन की गहराई समाप्त होती चली जा रही है। धैर्य बिना गहराई के हो नहीं सकेगा।

'अधजल गगरी, छलकत जाए'

यदि गगरी पूरी भरी नहीं होगी तो वह छलकेगी। उसमें पानी यदि पूरा भरा हुआ हो तो वह छलकती नहीं है। जैसे भरी गगरी नहीं छलकती है, वैसे ही हमारे भीतर गहराई होगी तो धैर्य बनेगा और गहराई नहीं होगी तो हम अधीर बन जाएंगे।

एक घटना के माध्यम से इस बात को थोड़ा स्पष्ट कर दूं। आचार्य पूज्य गुरुदेव इंदौर का चातुर्मास पूर्ण करके भोपाल पधारे। तब तक सम्पत मुनि जी म.सा. की दीक्षा नहीं हुई थी। वे भोपाल में गुरुदेव के पास उपस्थित हुए और कहा कि आप छत्तीसगढ़ पधारें तो मैं दीक्षा लूँगा। उस प्रसंग से आचार्य देव का विहार छत्तीसगढ़ की तरफ हो गया। आचार्य देव भोपाल से होशंगाबाद पधारे। वहां पर दिगंबर समाज के तारण पंथियों के घर थे। गोचरी-पानी लाए और आहार किया। विहार की थकान से विश्राम करने का भी थोड़ा मन बन रहा था। विश्राम करने की तैयारी कर ही रहे थे तभी एक व्यक्ति पहुंच गया। वह आड़े-टेढ़े शब्दों से कुछ बातें करने लगा। आचार्य श्री उसकी बातों को सुनते रहे। उसने जो कहा, शांति से सुना। सुनने के बाद उसको धैर्य से जवाब दिया। लगभग 40-45 मिनट का समय लगा होगा। वह पूछता रहा और आचार्य श्री उसको उत्तर देते रहे।

हम विचार करें कि थकान थी, गोचरी की हुई थी। विश्राम की तैयारी के बीच कोई प्रश्न करने आ जाए, उस समय हमारा मन उसके लिए कितना तैयार होता है? यदि मन तैयार नहीं होता है तो हम हिचकिचाएंगे। फिर धैर्य रख पाना बहुत कठिन हो जाता है। लेकिन यह साधारण लोगों की बात है। जिन्होंने अपने आपको साध लिया होता है, उनके लिए ऐसी बातें कठिनाई की नहीं होती। आचार्य श्री ने स्वयं को साधा था, इसलिए उस भाई ने कितने भी टेढ़े-मेढ़े प्रश्न किए, आचार्य श्री उसको बहुत शांत भाव से, धैर्य से उत्तर देते रहे।

लगभग 40 मिनट बाद वह बोला, 'महाराजश्री! मैं तेली समाज से हूं और तारण पंथ को स्वीकार करके चल रहा हूं। पेशे से मैं वकील हूं। वकालत

करता हूं। सभ्यता, शिष्टता मैं भली-भांति जानता हूं। मैं ये इसलिए कह रहा हूं कि शुरुआत में मैंने आपके साथ बहुत अशिष्ट व्यवहार किया था। जैसा व्यवहार मैंने किया, सामान्यतः वैसा नहीं करना चाहिए था। मुझे कुछ पूछना भी था, तो सभ्यता और शिष्टता से पूछना चाहिए था, किंतु मेरी यह आदत है, स्वभाव है कि मैं किसी भी संत से यदि कोई चर्चा करता हूं तो पहले अटपटे रूप में ही करता हूं। उससे मुझे पता लग जाता है कि साधु कितने पानी में है? उसके भीतर कितनी गहराई है। आड़े-टेढ़े-तिरछे प्रश्न करने, असभ्य और अशिष्ट तरीके से पूछने से उसके भीतर की थाह लग जाती है कि वह कितने धैर्य और शांति से जवाब देता है। मैंने आपके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया। आज मैंने कोई नया प्रश्न नहीं पूछा। पहली बार पूछा हो ऐसा भी नहीं है। होशंगाबाद में समय-समय पर साधु-साध्वी आते रहते हैं। चाहे दिगंबर हों या श्वेतांबर या फिर वैष्णव समाज के साधु– मेरा उनके साथ प्रश्नोत्तर का संबंध जुड़ जाता है। बस अवसर मिलना चाहिए मैं पहुंच जाऊंगा। मैं पहुंच ही जाता हूं और हर किसी से ऐसे ऊटपटांग प्रश्न पूछा करता हूं। मैं आपसे क्षमा चाहता हूं कि मैंने आपसे असभ्यता और अशिष्टता से प्रश्न किए, किंतु उसके पीछे मेरी भावना, आशातना या अवज्ञा की नहीं थी। मैं बस थाह लेने के लिए ऐसा कर लेता हूं। आपने बहुत ही धैर्य से मुझे सुना और मेरे सारे प्रश्नों को समाहित किया।'

बहुत बार होता यह है कि सामने वाला कुछ बोलने लगता है और हम बीच में ही बात को काटकर अपनी बात कहने के लिए तैयार हो जाते हैं। होना यह चाहिए कि पहले सामने वाले को पूरा सुन लो। बिना पूरा सुने ही हम सोचते हैं कि हम समझ गए। हमने उसको सुन लिया। उसको पहले पूरा सुन लो और पूरा सुनने के बाद आपके जो समझ में आये, वैसा उत्तर दो। यदि समझ में आ रहा है तो उत्तर दो, यदि समझ में नहीं आ रहा है तो हमें साफ कहना चाहिए, कि भाई! यह मेरा विषय नहीं है। मैं इस विषय में तुमको समाहित नहीं कर सकता।

मुझे याद आ रहा है स्वामी विवेकानंद का एक प्रसंग। एक बार विदेश में उन्होंने लेक्चर दिया। उस लेक्चर से लोग बहुत प्रभावित हुए। उनके लेक्चर से प्रभावित एक स्टुडेंट ने कहा कि सर! मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। उसने पूछा कि क्या आप सब कुछ जानते हैं? स्वामी विवेकानंद बोले, कि भाई! वेदों के विषय में तुम पूछना चाहो तो मैं बहुतांश में समाधान दे सकता हूं।

यदि तुम कहो कि हल चलाना है तो मैं स्पष्ट कर देता हूं, मैं हल चलाना नहीं जानता। स्वामी विवेकानंद उसके आशय को समझ गए कि सामने वाला किस आशय से पूछ रहा है? वह पूछना चाह रहा था कि यदि विवेकानंद कह दें कि हां, मैं सब जानता हूं तो वह पूछने वाला कहता कि हल चलाना जानते हैं? हल कैसे चलाया जाता है? उनको पता है कि वह क्या सोच रहा है। इसलिए स्वामी विवेकानंद ने पहले से ही उसके अगले प्रश्न को नष्ट कर दिया कि मैं हल चलाना नहीं जानता हूं, वेदों के विषय में यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो मैं उसमें बहुत से प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हूं। या दे सकता हूं।

सामने वाला किस आशय से प्रश्न पूछ रहा है, यह समझना भी बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। कई बार तो टाइम पास के लिए भी व्यक्ति पूछता रहता है। उसको टाइम पास करना है या फिर अपनी विद्धत्ता का प्रदर्शन करने के लिए ऐसे प्रश्न पूछता है। उसको बताना है कि मैं बड़ा विद्धान् हूं। ऐसे व्यक्तियों के पास में रटे-रटाए पांच-दस प्रश्न ही होते हैं। वे प्रश्न पूरे होने के बाद कोई पलटकर उनसे एक-दो प्रश्न पूछ ले तो उनका मिजाज अलग हो जाएगा। जैसे मौसम का मिजाज बदलता है, वैसे ही उसका मिजाज बदल जाएगा।

यह बात मैं इसलिए कह गया कि हमारे सामने उत्तेजना के कई प्रसंग हो सकते हैं। हमारे सामने ऐसे भी प्रसंग आ सकते हैं, जिससे भीतर उत्तेजना पैदा हो जाये। व्यक्ति उत्तेजित हो जाए। ऐसे प्रसंगों पर भी व्यक्ति को धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए और न तत्काल जवाबी कार्यवाही करने के लिए तैयार होना चाहिए। कुछ कार्य भावुकता से हो जाते हैं। ऐसे समय में व्यक्ति को भावुक नहीं होकर गंभीर विचारक होना चाहिए। धैर्य उसके साथ में है तो उसकी जीत सुनिश्चित है। जिसने धैर्य का साथ छोड़ दिया, उसकी जीत में संदेह रहेगा।

'धीरज मन धरी सांभलो' यानी तुम शांति चाहते हो तो अपने कार्य में धीरज रखो। और जो कह रहे हैं उसको धैर्यपूर्वक सुनने की तैयारी रखो। धैर्य से सुनने का मानस बनाओ। धैर्य से सुनने से व्यक्ति द्वारा कही गई बात बहुत जल्दी समझ में आ जाती है। किसी को कुछ कहना भी है तो धैर्य से कहो। उत्तेजना से कही गयी कोई बात, कोई विषय जल्दी समझ में नहीं आएगा। धैर्य से बात कही जाती है तो वह विषय उसके समझ में

आएगा। सामने वाला यदि प्रतिप्रश्न कर रहा है तो भी उसे पूरी छूट होनी चाहिए। प्रश्न का उत्तर देने वाले को ये नहीं सोचना चाहिए कि मेरा समय व्यर्थ जा रहा है। समय बर्बाद हो रहा है। यदि हम विचार करें तो प्रश्न पूछने वाले बहुत कम मिलते हैं। जिज्ञासा व्यक्त करने वाले बहुत कम मिलते हैं। जिज्ञासा व्यक्त करने वाले हमारे ऊपर बड़ा उपकार करने वाले होते हैं क्योंकि उनकी जिज्ञासा के कारण हमें कुछ सोचने-विचारने का मौका मिलता है।

नीति में कहा गया है– 'वादे वादे जायते, तत्त्व-ज्ञानम्'।

वाद करते हुए, विचारणा करते हुए, ऊहापोह करते हुए, तत्त्व का विमर्श करते हुए ज्ञान की प्राप्ति होती है। ऐसे समय में यदि कोई आड़े-टेढ़े प्रश्न भी करे, हमारी अवज्ञा और तिरस्कार करते हुए भी करे तो पहले उसके अंतर को भांपना चाहिए कि उसके भीतर की स्थिति क्या हो रही है? साधुओं को अपने मन में कभी यह नहीं लगना चाहिए कि ये मेरी अवज्ञा कर रहा है या मेरा तिरस्कार कर रहा है। यदि उसके मन में विचार आ गया कि ये व्यक्ति मेरी अवज्ञा कर रहा है, ये व्यक्ति मेरा तिरस्कार कर रहा है तो उसके उत्तर देने की शैली में अंतर आ जाएगा। ऐसे समय में उसे केशी श्रमण व परदेशी राजा के प्रसंग को स्मृति में उभार स्वयं को धैर्य में स्थिर करना चाहिए। उसकी शब्दावली में अंतर आ जाएगा। आचार्य देव ने कुछ भी नहीं सोचा और उस मस्ताने वकील के प्रश्नों के जवाब देते रहे। उत्तर देते रहे। अंततोगत्वा वह स्वयं खुलता है। स्वयं अपने भाव व्यक्त करता है कि गुरुदेव, महाराज श्री! मेरे भीतर अवज्ञा की कोई भावना नहीं थी। मैं ऐसे ही साधुओं की सहनशीलता को, धैर्य को देखने-जानने के लिए, परखने के लिए टेढ़े-मेढ़े प्रश्न पूछ लिया करता हूं। साधु यदि उत्तेजित हो जाए तो सामने वाला पहले ही भांप लेता है कि समाधान क्या मिलेगा! यह बात स्पष्ट है कि व्यक्ति की सभ्यता कैसी है? शिष्ट है या अशिष्ट है? वह व्यक्ति कितना महान् है कितना हीन, इसका उत्तर उसकी पहचान, उसकी वाणी से हो जाती है। वाणी के माध्यम से व्यक्ति के भीतर तक पहुंचा जा सकता है। उसके विषय में जाना जा सकता है।

वकील ने अपनी बात स्पष्ट कर दी। यदि गुरुदेव धैर्य नहीं रखे होते तो बात अलग होती। उसने आगे और बात कही। उसने कहा कि महाराज श्री, आपके उत्तर सुनकर यह समझ पाया हूं कि आपके साथ मेरी पटरी बैठ

सकती है। उसने आगे विनती की कि आप यहां कुछ दिन विराजें तो हमें बहुत तत्त्व-ज्ञान मिलेगा। हमें बहुत-सा ज्ञान पाने का मौका मिलेगा।

आचार्य श्री ने फरमाया कि आज की रात तो यहीं पर हूं। कल यदि आप लोगों की इच्छा हुई तो मैं व्याख्यान दे सकता हूं, किंतु ज्यादा दिन तक रुकने की स्थिति नहीं है। क्योंकि आगे मुझे छत्तीसगढ़ की ओर बढ़ना है। वह व्यक्ति गुरुदेव पर श्रद्धा और भावना वाला बन गया। व्यक्ति ऐसा भावना वाला बनेगा तो वह चार आदमियों को कहेगा कि हमें महाराज श्री का सत्संग करना चाहिए। उनसे संपर्क करना चाहिए। उनका सान्निध्य प्राप्त करना चाहिए। जो कार्य विज्ञापनों से नहीं होता वह पारस्परिक संपर्क से होता है।

लोग अखबारों में विज्ञापन देते हैं तो जिसको जरूरत होती है, भले ही वह विज्ञापन पढ़ ले बाकी कितने लोग होते हैं उस विज्ञापन के पेज को पढ़ने वाले? विज्ञापन के पेज को पढ़ने वाले कितने लोग होते हैं? विज्ञापन में लिखा होता है कि वर-वधू चाहिए। कौन देखेगा उसे? कोई भी उसे देखने की कोशिश नहीं करेगा। जिसे वर-वधू की जरूरत है वह भले ही उस विज्ञापन को देख ले कि कौन-सा लड़का-लड़की कहां का है। लड़की कौन है, कितना उसका ज्ञान है, क्या कुछ है। नहीं तो उन विज्ञापनों को कौन पढ़ेगा? पूरा का पूरा पेज विज्ञापन दे देते हैं। मेरे खयाल से एक गहरी दृष्टि से देखने की भी हम कोशिश नहीं करेंगे। क्योंकि मुझे उससे कोई लेना-देना नहीं है और मेरे काम की चीज नहीं है। बहुत बार बहुत सारे विज्ञापन आंखों से ओझल रह जाते हैं किंतु भगवान् महावीर के युग की बात करें तो, साधु-संतों के विज्ञापन उनके दर्शन चारित्र से, उनके श्रावकों, भक्तों से हुआ करते थे।

जैसे मस्ताना वकील गुरुदेव से प्रभावित हुआ, वैसे ही जो विचारक, जो भक्तगण साधु-साध्वियों से प्रभावित होते हैं, वे दूसरे लोगों में चर्चा करते हैं कि भाई! वे संत बड़े महान् हैं। उनका ज्ञान बड़ा महान् है। समझाने का तरीका बहुत बढ़िया है। हमें उन साधु-साध्वियों की संगत करनी चाहिए। हमें उनका सान्निध्य लेना चाहिए। इस प्रकार से यह बात आगे से आगे पहुंचती जाती है और लोग उनसे लाभान्वित होते रहते हैं।

आर्य सुधर्मास्वामी राजगृही पधारे तो क्या कहीं विज्ञापन की आवश्यकता पड़ी? विज्ञापन देने की जरूरत पड़ी? विज्ञापन स्वतः हो जाता

है। चंदन की खुशबू को हवा अपने आप जगह-जगह तक पहुंचा देती है। वैसे ही दर्शन और चारित्र से संपन्न महात्माओं का व्यक्तित्व जनता-जनार्दन के द्वारा स्वतः जन-जन तक पहुंच जाया करता है। उसी बात से प्रभावित होकर जम्बूकुमार भी आर्य सुधर्मास्वामी के चरणों में पहुंचे थे। वहां जाते हुए उनका दीक्षा लेने का कोई विचार नहीं था। कोई सोच नहीं थी कि दीक्षा लेनी है। यहां आने वालों में शायद ही कोई विचार करके आते हों कि मैं जा रहा हूं, मुझे दीक्षा लेनी है। जिसकी दीक्षा लेने की बात पहले हो गई उसकी बात अलग है। दीक्षा लेने की भावना से पहुंचने वाला तो उस भावना से पहुंचता ही है किंतु अन्य लोग उस भावना से नहीं पहुंचते। वे दर्शन-श्रवण की भावना से आते हैं। उनमें से किसी-किसी के मन में भी प्रवचनों को सुनकर वैराग्य की भावना जागृत भी हो जाती है।

साधुओं का व्याख्यान कैसा होना चाहिए? क्या राजनीति की बातें बताने के लिए होना चाहिए? क्या अनुच्छेद 370 खत्म हो गया बताने के लिए व्याख्यान होना चाहिए? या संवेग और निर्वेद को प्रवर्धमान करने वाला व्याख्यान होना चाहिए? संत-महात्माओं को वैसा ही प्रवचन करना चाहिए, वैसा ही व्याख्यान करना चाहिए, जिससे व्यक्ति संसार के अलीतै-पलीतै को जान सके और उससे छूट सके। संसार रुचिकर लगे, ऐसा व्याख्यान नहीं देना चाहिए। संसार तो वैसे ही रुचिकर है इसलिए उसमें रुचि बढ़ाने वाला व्याख्यान नहीं होना चाहिए वरन् साधु का व्याख्यान सुनने वालों की सांसारिक रुचि बदलने वाला होना चाहिए। उन्हें यह बताने वाला होना चाहिए कि वस्तुतः तुम्हारी रुचि तुम्हारे जीवन के अनुरूप नहीं है। तुम्हारे लक्ष्य के अनुरूप नहीं है। तुम्हारे विकास के अनुरूप नहीं है। मैं यदि यह कहूं कि मनुष्य जीवन विकास की उत्तम धरा है तो एकदम सही है। क्योंकि मनुष्य ही निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

चार-गतियों में अन्य किसी भी गति में जीने वाले जीव को यह सुविधा मिलने वाली नहीं है। नरक गति में जीने वाला नैरयिक बेचारा तत्त्व की बात का कहां विचार करे! वह भारी संकट और कठिनाइयों में रहता है, दुःख-दर्द पा रहा है। वह उसको भोगता है। उसे धर्म और अधर्म की बात सोचने का समय भी नहीं मिलता है। पशु जगत् में जीने वाले को इतनी समझ नहीं हो पाती। देवगति में जीने वाले को समझ में आता होगा किंतु उसके हाथ बंधे होते हैं। वे जानते-समझते हुए भी त्याग, प्रत्याख्यान को स्वीकार नहीं कर

पाते। एकमात्र मनुष्य ही है जो इस विकास की ओर अग्रसर हो सकता है। वह त्याग, प्रत्याख्यान से अपनी आत्मा को भावित कर सकता है।

मैं तो यह कहना चाहूंगा कि हमें एक-न-एक प्रत्याख्यान, एक-न-एक त्याग प्रतिदिन करना ही चाहिए। कोई भी त्याग, कैसा भी त्याग करना चाहिए। किसी भी त्याग की कीमत छोटी नहीं आंकनी चाहिए। छोटे नियम की भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए क्योंकि जो व्यक्ति छोटे नियम की उपेक्षा करेगा, वह कभी-न-कभी बड़े नियम की भी उपेक्षा करने वाला हो जाएगा। छोटे छेद की उपेक्षा करने से वह छेद कभी नौका डुबोने वाला हो जाएगा। इसलिए उसे कभी भी छोटे पच्चक्खाण की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मैं तो यह कहता हूं कि कोई भी पच्चक्खाण छोटा नहीं होता! जब मौका आता है तो वह बहुत बड़ा हो जाता है। हमारी समझ में आता नहीं है, किंतु प्रसंग सामने आएगा तो मालूम पड़ जाएगा कि छोटा-सा नियम भी कितना बड़ा हो जाता है?

एक व्यक्ति ने नियम लिया था कि मैं पूर्णिमा को वेश्या की संगत नहीं करूंगा। उस आदमी का वैसा स्वभाव नहीं था किंतु हवा में बह गया। पैसे कमा लिए और कुछ ऐसे लोगों की संगत हो गई जो कहने लगे, कि भाई! पैसे कमाए हो तो मौज उड़ाओ। उसकी संगत वाले उसको एक बार वेश्या के कोठे पर ले गए। अच्छी रकम लेकर वेश्या ने कहा कि आपको एक ऐसी तितली दूंगी जो अभी तक अभोग्या है। वह पहुंच गया वहां पर। जैसे ही वेश्या ने कमरे की खिड़की खोली उसको चंद्रमा दीखा—पूर्ण चंद्रमा। उसे अचानक विचार आया कि मैंने गुरुदेव से प्रतिज्ञा ली है कि पूर्णिमा को वेश्या का सेवन नहीं करूंगा। वह कहता है कि मैं थोड़ी देर के लिए, लघुशंका के लिए जा रहा हूं। यह कहकर गया तो ऐसा गया कि वापस लौटकर नहीं आया। इंतजार करने वाली इंतजार करते रह गई। सोचा, इतनी बड़ी रकम उसने दी, ऐसे ही क्यों चला गया? बाद में उसे मालूम पड़ा कि उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि पूर्णिमा के दिन परायी स्त्री या वेश्या को हाथ नहीं लगाएगा। उस प्रतिज्ञा के कारण लौट गया वह!

इस बात का उस वेश्या पर भी गहरा असर हुआ। उसने सोचा कि धिक्कार है हमारी जिंदगी को। पैसे के बल पर नहीं करने योग्य कार्य को भी हम कर लेती हैं। धन्य है वह व्यक्ति, इतनी बड़ी रकम देने के बाद भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। पैसे को महत्त्व नहीं दिया! महत्त्व किसका?

(प्रत्युत्तर– प्रतिज्ञा का) महत्त्व है प्रतिज्ञा का और जो व्यक्ति पैसे को महत्त्व देने वाला होता है, वह त्याग को महत्त्व देगा बहुत कठिन काम है। त्याग उसके सामने शिथिल हो जाएगा, अतः त्याग के प्रति व्यक्ति की गहरी रुचि होनी चाहिए। लेकिन एक बात का ध्यान रखें कि जो भी त्याग लें दिल से लें। उस पर श्रद्धा करें। विश्वास करें और पालें।

अभी आप सुन रहे थे मुनि जी से श्रद्धा की बात। उन्होंने स्पष्ट किया कि श्रद्धा की आंख नहीं होनी चाहिए। कई भाई विचार करते हैं कि अंधी श्रद्धा किस काम की? आंख से अंधी श्रद्धा किस काम की? विचार आए, विचार मत करो। हमारे दिल, हार्ट में एक भी छेद हो जाए, जिसको हम वॉल्व बोलते हैं, वह वॉल्व ढीला पड़ जाए तो थोड़ा-सा चलने पर हांफने लग जाएंगे। सांसें फूल जाएंगी। क्या श्वास सही गति कर सकता है? क्या आदमी गति करता रहेगा? गोली मुंह में लेता रहे और चलता रहे तो अलग बात है, किंतु एक भी यदि छेद हो जाएगा तो हमारी चर्या पर बहुत बड़ा इफेक्ट हो जाएगा।

हार्ट चारों तरफ से बंद है। शरीर में सर्कुलेशन बराबर हो रहा है और एक छोटा-सा छेद हो जाए तो सर्कुलेशन की गति रुक जाएगी। वैसे ही श्रद्धा में छेद नहीं होना चाहिए। कोई आंख नहीं होनी चाहिए। पहले विचार कर लो, जो करना है कर लो। जब विचार हो गया, फिर कोई विचार करने की बात नहीं होनी चाहिए। निर्णय करने के बाद बार-बार निर्णय करने की जरूरत नहीं है।

जो निर्णय करना है सोच-समझ कर करो। 'पानी पीना छानकर और गुरु बनाना जानकर'– दस बार पहले सोच लो। समझ लो। जो कुछ करना है अच्छी तरह से, ठोक-बजाकर करो। आज शादी की तैयारी हो रही है? शादी के एक या दो दिन या एक सप्ताह बाद, तलाक। ये बातें क्यों होती हैं? पहले कहते थे कि ठोक-बजाकर लाओ और लाने के बाद उसको निभाओ। जो करना है, पहले करो। शादी हो गई, सगाई हो गई अब क्या सोचने की बात है? अब तो घर की बहू बन गई। बहू बनाकर लाए हो।

वैसे ही व्यक्ति, गुरु के प्रति, धर्म के प्रति श्रद्धा करने के पहले सोचे। मैं तो कहता हूँ सोचने वाले श्रद्धा कर ही नहीं सकते हैं। श्रद्धा दिल का अटैचमेंट है। दिल से अटैचमेंट हो गया, फिर कोई तर्क-वितर्क नहीं होना चाहिए। संबंध शब्दों से नहीं जुड़ा करता है। संबंध दिल से जुड़ता है। दिल के संबंध में

हमारे तर्क-वितर्क, हमारे शब्द, संशय पैदा कर सकते हैं। उसको दृढ़ता नहीं दे सकते।

जम्बू कुमार से विवाह करने के लिए आठों कन्याओं ने कितना दृढ़ निर्णय लिया। उसके पूर्व वे बोल रही थीं कि हमने जम्बू के साथ संबंध स्थापित कर लिया, हमने दिल में उनको बिठा लिया, संबंध हो गया, अब यदि हटाते हैं तो सही नहीं है। इस प्रकार जो श्रद्धा होती है, प्रीत होती है, वह दिल से होती है। श्रद्धा का दूसरा नाम हम प्रीत भी कह सकते हैं। जहां दिमाग काम करने लगेगा, वहां गड़बड़ हो जाएगी। इसलिए वहां पर दिमाग को प्रवेश मत करने दो। हृदय गति कर रहा है और एक छेद हो गया तो वहां हवा घुसने लगी। वह हवा घुसेगी तो गड़बड़ी करेगी। वैसे ही दिल में यदि दिमाग घुस गया वो वहां पर चुप नहीं बैठेगा। वह तर्क लगाए बिना रुकेगा नहीं। शास्त्रकार कहते हैं– 'तक्का तत्थ न विज्जई मई तत्थ न गाहियां।'

अर्थात् जहां तर्क का प्रवेश नहीं है, मति का कोई प्रवेश नहीं है, वहां उनकी कोई जरूरत नहीं है। उनको बाहर ही रखो। उनसे कहो कि तुम्हारी यहां पर जरूरत नहीं है। मुझे तुम्हारे तर्क नहीं चाहिए। ये विचार होने चाहिए।

'श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ' के महामंत्री धर्मेन्द्र जी आंचलिया बताने लगे कि महाराज! किस समय, क्या कुछ घट जाता है, पता नहीं चलता। कोलकाता के शांतिलाल जी बांठिया की बड़ी तमन्ना थी कि वे अपना एक भूखण्ड अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ को दें। दो-चार दिन पहले सारी बातें चल रही होंगी और सारी कार्यवाही हुई। उनके बेटों ने बीकानेर आकर सारी कार्यवाही संपन्न की। इधर कार्यवाही संपन्न हुई, उधर उसी दिन या दूसरे दिन उन्होंने देह त्याग दी। देशनोक वाले सुंदरलाल जी भूरा, जिनको नेताजी कहते हैं, कहने लगे कि सुषमा स्वराज भी दिवंगत हो गईं। जाते-जाते उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री जी आपका शुक्रिया। यह दिन मैं देखना चाह रही थी। यह उनका लास्ट स्पीच था। जीवन का कोई भरोसा नहीं। इसलिए 'काल करे सो आज कर और आज करे सो अब।'

हमें भी विचार करना चाहिए कि जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है। किस समय यह हवा बह जाए और मालूम नहीं पड़े कि क्या हो गया? इसलिए जब तक सांस की गति चल रही है, तब तक जो करना है कर लो। शुभ कार्य में

कभी भी विलंब नहीं करना चाहिए। ऐसा सोचना ही नहीं चाहिए कि कल कर देंगे।

जो कार्य भटकाने वाला हो, अशुभ हो, उसको टालने का प्रयत्न करना चाहिए। यह बीज मंत्र अपने आप में ग्रहण करें। इसे स्वीकार करें और इसको पुष्पित-पल्लवित करने के लिए हमारी तैयारी हो। हम ऐसा लक्ष्य बनाएंगे और उस लक्ष्य को पूरा करेंगे तो धन्य बनेंगे।

07 अगस्त, 2019

6

शेर बन शूर दहाड़े

शांति जिन एक मुज विनति...

कहां प्राप्त होगी शांति? आप सुन रहे थे, शांति प्राप्त करने के लिए कोई मंदिर जा रहा है, कोई मस्जिद जा रहा है तो कोई गिरजाघर जा रहा है। कोई किसी और धर्म स्थान में जा रहा है। शांति की तलाश में लोग अलग-अलग जगह जा रहे हैं, पर शांति मिलेगी कहां पर?

किसी धर्म स्थान पर पहुंचकर, शांति के वातावरण में बैठकर थोड़ी देर के लिए शांति का अनुभव जरूर हो जाएगा, किंतु वह शांति बाह्य शांति होगी जो दीर्घजीवी नहीं होगी। वह शांति लंबे समय तक चलने वाली नहीं होगी। वह सदा-सर्वदा के लिए नहीं होगी।

उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है कि संयोग से जो मुक्त हो जाता है, वह शांति को प्राप्त करता है। वह समाधि को प्राप्त करता है। संयोग का अर्थ होता है, मन का अटकाव। मन का लगाव। मन का जुड़ाव। किसी का मन किसी से जुड़ा हुआ है, कहीं अटका हुआ है तो उसे वहां की चिंता रहती है। उसके प्रति वह एकदम से अपने आपको तटस्थ नहीं बना पाता। संयोग का एक दूसरा अर्थ भी है, जिसको हम बहुत सामान्य रूप से समझ रहे हैं। वह है जिसके साथ मेरा जुड़ाव है, संयोग है, वह मेरे साथ ही रहे।

संयोग दो प्रकार का है—एक भाव संयोग और दूसरा द्रव्य संयोग। जिसके साथ भी हमारा जुड़ाव हुआ, वह द्रव्य संयोग है। द्रव्य संयोग जरूरी नहीं कि भाव संयोग को बढ़ावे किंतु भाव संयोग, द्रव्य संयोग को पैदा करने के लिए तैयार रहता है। माता-पिता, पुत्र, सभी रिश्ते-नाते द्रव्य संयोग हैं। रिश्ते-नाते हमारे भीतर जम जाते हैं। हमारे अंतर में स्थान बना लेते हैं। अंतर में स्थान बनने को 'भाव संयोग' कहा गया है। इन दोनों संयोगों से जो मुक्त हो जाए, वह शांति पाता है।

द्रव्य-संयोग हमें प्रभावित करने वाला न बने और भाव संयोग नए द्रव्य संयोग को जुटाने वाला न बने। तभी व्यक्ति सुखी होगा। तभी समाधि में जीएगा। शांति में जीएगा। किंतु जहां तक मैं समझ रहा हूं यह बात आपके गले नहीं उतरेगी। जब हम रोज नए रिश्ते बनाने की तैयारी में रहते हैं, तब यह बात हमारे गले कैसे उतरेगी कि हम संयोगों से मुक्त हो जाएं। हां, साधु के लिए जरूर कहा गया है कि वह संयोग से मुक्त हो जाए। यदि तुम दिल से साधु बनना चाहते हो तो तुम्हें अपना रास्ता बदलना पड़ेगा।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति सामने की ओर जा रहा है और उसे मालूम पड़ गया कि यह रास्ता गलत है, यह मेरी मंजिल नहीं है। तब क्या करना चाहिए उसको? वह देखता है कि मैं जिस रास्ते की ओर जा रहा हूं, मेरी मंजिल तो उधर है ही नहीं। मेरी मंजिल तो उसके पीछे की तरफ है। अब उसे पीछे मुड़ना चाहिए या आगे बढ़ते जाना चाहिए? यही बात है कि भौतिक पदार्थों की तरफ जब तक हमारे भीतर, हमारे मन में आकर्षण बना रहता है, तब तक हम उस दिशा में गतिशील होते हैं। किंतु जैसे ही ज्ञान होता है, अंतर् में स्फुरणा पैदा होती है कि जिधर वह जा रहा है, वह सही रास्ता नहीं है, तो वह पीछे मुड़ता है। एक दिन उसे मुड़ना पड़ेगा। वापस नहीं मुड़कर जितना आगे बढ़ेगा, रास्ता उतना ही लंबा होता जाएगा।

हम थोड़ा बारीकी से विचार करें कि जितने भी चक्रवर्ती हुए, उनमें से बहुत से चक्रवर्तियों ने संसार को छोड़ा। सुभाष जी कांकरिया इस सभा में मौजूद हैं। आप बताओ कि चक्रवर्ती की कितनी संपत्ति होती है? पूरा जोधपुर उनके अधीन होता है? पूरा भारत उनके अधीन होता है? या और भी कुछ? उनके अधीन क्या-क्या होता है? जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र के जितना सभी छह खंडों पर उसका आधिपत्य होता है। जैसे अलग-अलग क्षेत्र के अलग-अलग राजा होते हैं, वैसे ही चक्रवर्ती का अधिकार क्षेत्र छह खंड का होता है। वे उतने साम्राज्य के मालिक होते हैं। खाली भारत की बात नहीं है, खाली पाकिस्तान की बात भी नहीं है। आज कितने देश गिनती में आ रहे हैं? गुलाब जी को मालूम होगा कि कितने देश हैं? 121 देशों में तो योग की बात हो रही है। कुल 192 देश बोल रहे हैं। 192 में से 121 देशों में आज योग की बात चल रही है। ये 192 देश, जितने भी गिनती में आ रहे हैं, जितने भी देश नजर आ रहे हैं या जितने भी नाम आप सुन रहे हो,

जितने आपकी जानकारी में हैं, वे सारे चक्रवर्ती के अधीन होते हैं। ये तो हमें दिखते हुए नाम ही पता हैं। इसके अलावा भी क्षेत्र होंगे, राष्ट्र होंगे, जो हमारी जानकारी में नहीं हैं। वे सारे के सारे चक्रवर्ती के अधीन होते हैं। भरत क्षेत्र में एक भी राज्य, एक भी रियासत ऐसी नहीं है, जहां चक्रवर्ती का आधिपत्य नहीं होता है। सब उनके अधीन होते हैं। चक्रवर्ती छह खंड के राज्य का उपभोग करते हैं।

क्या कारण है कि चक्रवर्ती साधु बनता है? क्यों साधु बनता है? इन सबको छोड़कर क्यों निकल जाता है? जो निकल जाता है वह निकल जाता है और जो फंसा रहता है, वह अटक जाता है। हम फंसे रहना चाहते हैं या निकलना चाहते हैं? (प्रत्युत्तर– निकलना) आप बोल रहे हो, निकलना चाहते हैं। सोच-समझकर बोलना। खाली प्रवाह में नहीं बोलना है। सपने तो सुनहरे देखते हैं किंतु सपनों की संपत्ति काम की नहीं है। यह सपनों की संपत्ति हाथ में आने वाली नहीं है।

सपने देखने वाले बहुत हैं, किंतु उसे साकार करने वाले कितने हैं? छत्तीसगढ़ के बहुत से लोग यहां पर आए हुए हैं। इनमें से कितने लोगों ने सपने देखे हैं? आप लिखते रहो, डायरी हटाओ मत। दो लड़के हाथ ऊपर कर रहे हैं। बहुत लोगों ने सपने देखे होंगे। लड़के तो अभी सपने देख रहे होंगे। अच्छा! किन-किन लोगों ने सपने देखे हैं? हाथ खड़े कर दें तो मालूम पड़ जाए। अब हाथ खड़े करने में भी डर लगता है। इसमें घबराने की क्या बात है? लोग सिनेमा के गीत में तो गाते हैं 'जब प्यार किया तो डरना क्या, जब प्यार किया तो डरना क्या...' वहां तो खुले-खुले बोलते हैं और यहां हाथ खड़ा करने में डर रहे हैं।

अगर सपना देखा है तो हिम्मत से हाथ खड़ा करो कि हमने देखा है सपना। क्या आप यह मानते हैं कि हाथ खड़ा करने से हिंसा में जा रहे हैं या चोरी की है। गलत काम किया है या घबराहट के कारण हाथ ऊपर नहीं कर रहे हो? सपना देखा है तो देखा है। साकार करना है तो करना है। जो होगा देखा जाएगा। मैंने तो यह कहा कि जिसने सपना देखा है, वह हाथ ऊपर करे। बाफना जी[1] पसीना आ गया क्या? जिंदगी में कभी सपने पूरे होंगे या नहीं होंगे? अभी तो जिंदगी बहुत है। अभी जिंदगी लंबी है, अभी जल्दी क्या है?

1. अमरचंद जी बाफना, अर्जुन्दा

कोई कान में कह गया क्या कि इतने वर्ष की उम्र है? कह गया तब तो ठीक है कि इतने वर्ष तो मैं जीऊंगा ही।

किसी व्यक्ति ने ढोल या नगाड़े पर चोट की। राजाओं के जमाने में नगाड़े पर चोट करने का मतलब होता था कि राजा से कोई न्याय चाहता है। उस समय कागज वगैरह भरने की आवश्यकता नहीं थी। नगाड़े पर चोट की आवाज राजा के कानों तक पहुंचने से वह समझ जाता था कि कोई न्याय चाहता है। आज के कागज कहां तक पहुंच पाते हैं? राजनेताओं के पास आपके कागज पहुंच पाते हैं या नहीं? पहुंचने के बाद भी क्या वे फाइल पढ़ेंगे। कहेंगे कि 600 पेज की फाइल मैं कब पढ़ूंगा, आप संक्षिप्त में बनाकर दे दो। आईएएस अधिकारियों द्वारा उस फाइल की ब्रीफ बना दी जाती है। उसमें खास-खास बिंदु एक-दो पेज में लिखकर दे देंगे। वह एक-दो पेज भी पढ़ लें तो बहुत बड़ी बात है। इतनी बड़ी फाइल 600 पेज की, उसको कितने दिनों में पढ़ेंगे?

एक गीत में कहा गया है–

भगवान् तुम्हें मैं खत लिखता, पर पता मुझे मालूम नहीं,

यह बताओ कि आज भगवान् का एड्रेस मालूम होता तो आप लोगों में से कोई पत्र देने वाला होता या नहीं? मेरे खयाल से यदि भगवान् सचमुच सुनवाई करने वाले होते तो उन तक भी हमारे खत पहुंचते रहते कि 'मेरा यह दर्द है। हे भगवान्! मेरा बेटा ऐसा है, मेरी बहू ऐसी है, मेरी पत्नी ऐसी है। मुझे ऐसा घर क्यों दे दिया?' हमारी हजारों-हजार शिकायतें हैं और वहां पर कितनी पहुंचती? भगवान् के वहां पूरा कार्यालय बनाना पड़ता। एक कार्यालय से काम चलता क्या? वहां पर कितने लोगों को लगाना पड़ता?

भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को 'मन की बात' कार्यक्रम के लिए कितने आदमियों का जुगाड़ करना पड़ा? मन की बात आधे या एक घंटे की होती होगी किंतु उसकी तैयारी करने के लिए कई आदमियों को काम में लगना पड़ता है। तब जाकर आपके सामने मन की बात आ पाती है। भगवान् का एड्रेस नहीं है तो वहां पर शांति है, नहीं तो कितनी फाइलें वहां पहुंच जातीं? इसलिए वहां पर तनाव नहीं है। यदि वहां डाक-पत्र पहुंचेगा तो वह शांति देने वाला होगा या तनाव पैदा करने वाला होगा? अशांति पैदा हो

उस स्थान पर जायें ही क्यों? धर्म स्थान पर यदि शिकायत होती रहेगी तो, शांति मिलेगी कहां? चंद्र क्षेत्र में भी आदमी ने अपने निशान छोड़े हैं। आज वैज्ञानिक चिंता करते हैं कि वहां कई टन कचरा इकट्ठा हो गया है।

बंधुओ! विचार करें। सुख की राह की हम बात करते हैं, सुख की चाह की बात करते हैं। किंतु हमारे कदम उधर बढ़ते नहीं हैं। कदम तो गलत दिशा में ही बढ़ रहे हैं। गलत दिशा में चले जा रहे हैं। सोचते हैं थोड़ा और चल लूं। क्या पता मंजिल मिल जाये। किंतु ध्यान रहे! विपरीत दिशा में चलने वालों को कभी भी मंजिल नहीं मिला करती। जाना है पूर्व दिशा में और चल रहा है पश्चिम दिशा में, तो ऐसे कब तक मंजिल प्राप्त कर लेगा? यह चलना सही नहीं है।

लेकिन इसमें कोई घबराने की बात नहीं है। हमें यदि अपनी मंजिल को तय करना है तो जल्दी से मुड़कर अपने लक्ष्य की दिशा में चलेंगे। ऐसा करेंगे तो मंजिल को प्राप्त करने वाले बनेंगे। मंजिल के निकट पहुंचने वाले बनेंगे। अन्यथा हम विपरीत दिशा में चलते रहेंगे, चलते रहेंगे, चलते रहेंगे।

चक्रवर्ती सम्राट के पास इतना सारा वैभव था, फिर भी वे जान लेते हैं कि शांति इसमें नहीं है। शांति और समाधि की प्राप्ति तो आत्मा की दिशा में चलने पर ही होगी। फिर वे बिना विलंब किए, बिना कुछ सोचे उस ओर चल पड़े। वे सोचकर साल-दो साल नहीं निकालते। ज्यों ही विचार आया, उस विचार को मूर्त रूप देना वीर का काम होता है। कायर व्यक्ति कहता है, 'सोच रहा हूं, विचार कर रहा हूं, भावना तो बन रही है'—क्या होगा इससे? सोच तो रहा हूं! सोचते-सोचते बरस बीत गए। बताओ अब? जिस दिन सोचने लगे, जिस दिन ऐसा सपना आया कि साधु बनेंगे या साधु बनना है, जिस दिन आपने सपना देखा, उस दिन से लेकर आज तक कितने गैलन पानी गंगा नदी का समुद्र में चला गया? कितना पानी चला गया और जिस दिन सपना देखा उस दिन से लेकर आज तक कितना मीठा पानी समुद्र में मिलकर खारा हो गया।

हम जिंदगी में मिठास चाहते हैं या खटास चाहते हैं? इतने समय में हमारी जिंदगी में मिठास पैदा हुई या खटास में हम जी रहे हैं? इतना सारा पानी समुद्र में मिलकर खारा हो गया। हमारे जिंदगी के इतने सारे क्षण किस ओर व्यतीत हो रहे हैं? हमने कितने कर्मों का उपार्जन कर लिया। जब से

हमने सपना देखा है, जिस दिन से हमारे भीतर यह जागरण हुआ, भावना बनी, सपना देखा कि मुझे साधु बनना चाहिए, उसी समय से अब तक हमने कितने कर्मों का उपार्जन कर लिया होगा? कितने कर्मों का बंध हो गया होगा!

क्या हम ऐसे ही कर्मों को बांधते हुए चले जाएंगे? चलते रहेंगे? क्या हमारे भीतर वह हिम्मत नहीं, जो सेठ धन्ना जी में थी? क्या कहा उन्होंने?

'सुन सजनी, सच कह कथनी,
तेरा मुखड़ा आज उदास क्यूं,
क्यूं बहती अश्रु धार रे'

क्या आपने अपनी पत्नी की आंखों में आंसू नहीं देखे? कह रहे हो कि म.सा.! पच्चक्खाण करा दो कि कभी आंखों में आंसू नहीं देखेंगे अपनी पत्नी के। पच्चक्खाण क्या करोगे? आप मर जाओगे तो फिर आप देखने वाले तो हो नहीं पर जीते-जी तो कभी नहीं रुलाया। जीते-जी तो कभी ऐसा देखा नहीं।

अगर पत्नी को ऐसे रोते देखा तो ये देखकर क्या पूछा? 'सुन सजनी, सच कह कथनी, तेरा मुखड़ा आज उदास क्यूं, क्यूं बहती अश्रु धार रे' धन्ना जी ने पूछा कि आसुंओं की धार क्यों चल रही है? यहां मुझे पूरी कहानी नहीं कहनी है। आपने सुना है कि वह कहती है कि मेरा भाई दीक्षा ले रहा है और ये सब हो रहा है। ऐसे-ऐसे हो रहा है। अपनी पत्नी को सुना और धन्ना जी ने कहा कि तुम्हारा भाई कायर है। (प्रत्युत्तर– कायर है) आहा! कायर लोग भी यदि ऐसी आवाज में बोल रहे हैं तो वीर कैसे बोलेंगे? कायरता भी उसमें झलकनी चाहिए। हम दिखना सूर चाहते हैं। कायर नहीं दिखना चाहते। क्या कहा धन्ना जी ने कि तुम्हारा भाई कायर है।

कल मैंने बताया था कि 'सारी खुदाई एक तरफ, जोरू का भाई एक तरफ'। वैसे बहनें कुछ ऐसा बोलती नहीं हैं, किंतु पीहर और भाई की बात से उनको एकदम तन्नाटा आ जाता है। धन्ना जी की पत्नी ने भी उनसे कह दिया कि नाथ!

कहणो घणो सोहिलो जी, करणो घणो दोहिलो जी

कहना बहुत सरल है, कहना बहुत आसान है। ये जीभ ऐसे पलट जाती है। हां को आप ना में और ना को हां में बदलते हैं। आप तुरंत कह देते हो कि मैंने ऐसा कब कहा? हम तत्काल ऐसे बदल जाते हैं कि गिरगिट का रंग भी

इतना जल्दी बदले या नहीं बदले। धन्ना जी ने कहा तो कहा और जब उनके सामने बात आ गई तो उन्होंने उसे नकारा नहीं अपितु अपना निर्णय सुना दिया। उन्होंने कहा, बहनें अलग हो जाओ। वे बोलीं कि नाथ! ये आप क्या कर रहे हैं? वे बोले कि अब नाथ-वाथ कुछ नहीं है, मुंह से जो शब्द निकल गए वह शब्द कभी वापस लौटकर नहीं आ सकते। यहां थूककर चाटने वाले कितने लोग हैं? थूक थोड़ा ज्यादा गिर गया तो वापस चाट लेते हैं क्या? ऐसे कितने लोग हैं? बोलो ना? (प्रत्युत्तर–एक भी नहीं) शूरवीरों के शब्द या तो निकलते नहीं है और निकल गए तो फिर, फिर वापस भीतर नहीं जाते। जैसे तरकश में से निकला तीर वापस नहीं जाता, वैसे ही शब्द वापस नहीं जा सकते।

बाहुबली का हाथ ऊपर उठा था। वे वार करने की तैयारी में थे कि देववाणी हुई– अरे! ये क्या कर रहे हो? बड़े भाई पर हाथ उठा रहे हो। वे मन ही मन बोले कि अब उठा हुआ हाथ, नीचे तो खाली नहीं आ सकता। आप लोग कहोगे कि ये तो सुनी-सुनाई बातें हैं। ये बाहुबली की कहानी कितनी बार सुनी है। हर चातुर्मास में प्रायः यह सुनने को मिलती है। इसमें नया क्या है। आपने सुना किंतु सुनकर किया क्या? बाहुबली जी कहते हैं कि हाथ ऊपर उठ गया, वह अब खाली लौटकर नहीं आ सकता। किसको पूछा उन्होंने? घर वाली को! बेटों को! किसको पूछा बाहुबली ने? घर का मालिक कौन? लड़के या पत्नी? घर का मालिक कौन है? आवाज अब नहीं आ रही है। घर के मालिक हो तो बोलो। घर के मालिक होते तो बोलो। आप जानते हो कि बोलें किस मुंह से, क्योंकि घर में राज तो लुगाई का है। घर में राज किसका है? (प्रत्युत्तर–स्वयं) अब बोल रहे हो। सच्ची-सच्ची बात कहने में क्या शर्म की बात? घर के मालिक नहीं हैं तो नहीं बोलें। बाहुबली अपने मालिक थे। घर के मालिक थे। वे तो राजा थे। खाली ये नहीं कि नाम के राजा थे। वे अपने स्वयं के भी राजा थे और पूरे राज्य में भी उनका राज था। ये बताओ कि दीक्षा लेने के निर्णय में उन्होंने किसको पूछा? कितनी देर लगी उनको? बस हाथ ऊपर से मुड़कर नीचे सिर पर आया। बालों का लोच किया और दीक्षा ले ली। बस इतनी-सी देर रही। ये होता है शूरवीरों का काम।

'प्रण वीरा रो शृंगार, कायर कांई लेसी।

आवाज में मजा नहीं है। माथा नीचे करने से नहीं चलेगा। हीरावत जी हैं क्या पीछे? वे बोले या नहीं बोले। अब जो आवाज आई है वह पहले नहीं थी। उनके पीछे वाले बोले क्या? अभी तो सिर्फ भाइयों को बोलने को कहा

है, बहनों को नहीं। बहनों की आवाज तो बस थोड़ा-सा बोलने की देर है फिर देखो, भूकम्प जैसा आ जायेगा।

'प्रण वीरा रो शृंगार, कायर कांई लेसी'

दो बात सुने बिना बात समझ नहीं आती है। यह भारतीय की आदत है। जब तक दो डंडे पड़े नहीं, तब तक चलते नहीं हैं। यदि पहले ही बोल देते तो मुझे दो बात क्यों सुनानी पड़ती? पहले तो बोलते नहीं हैं। बार-बार सुनाने पर कहते हैं कि आप सुनाते हो। दिक्कत यही है कि आप तैयार तो होते हैं किंतु फिर वापस दिल बैठ जाता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. की भावना बन गई और उन्होंने दीक्षा ले ली। दीक्षा लेना आसान काम है, सरल काम है। वर्तमान काल की बात करूं तो दीक्षा लेना बहुत ही अच्छी बात है। जो नहीं कमा सकता है, उसके लिए भी दीक्षा अमृत का घूंट हो जाती है।

'रोटी खाना शक्कर से और दुनिया ठगना मक्कर से'

आज साधु बनना अच्छा रोजगार हो गया है! आज साधुओं के कितने बैंक बैलेंस बड़े-बड़े सेठों के यहां पर पड़े होंगे। बिना किसी को यह बताए कि मेरा पैसा उस सेठ के पास पड़ा है, वह मर जाएगा तो फिर उस घर में आकर कहीं वह सांप नहीं बन जाए। ऐसा हो जाता है कई बार। ऐसी समस्याएं आ जाती हैं। पैसे तो नहीं निकलवा सकते और पैसे के पीछे ममता हो गई तो वह ममता कहां ले जाएगी? वह ममता उसे देवलोक नहीं ले जाएगी। वह ममता उसे क्या बनाएगी? वह किस रूप में ले जाएगी? कहते हैं कि वह वापस सांप बनाकर वहां लाएगी। ये आज बहुत-सी जगहों पर है। किंतु जो आत्मार्थी भाव से दीक्षा लेता है 'अत्तहियट्ठयाए', आत्महित के लिए। आत्मार्थी, अर्थात् अपनी आत्मा के प्रयोजन से। कर्मों को निर्जरा की भावना से लेने वाले ऐसा दावं नहीं खेला करते।

'गुरु लोभी, चेला लालची, दोनों खेले दावं
दोनों डूबे बापड़ा बैठ पत्थर की नाव'

आचार्य नानालाल जी म.सा. ने दीक्षा ली। दीक्षा ली, तो ली। सोचा नहीं कि पलटकर देखना चाहिए। घर में क्या हुआ? परिवार में क्या हुआ? किस सदस्य को क्या हुआ? कोई मतलब नहीं। कोई लेना-देना नहीं। कभी चिट्ठी भी शायद ही घर में लिखवाई होगी। नहीं लिखवाई। संयोग

से मुक्त होना है– 'संजोगा विप्पमुक्कस्स' अर्थात् जो संयोग से मुक्त हो गया वह कभी उसमें फंसना नहीं चाहेगा। सर्प, कांचली छोड़ने के बाद ऐसा भागता है कि वापस मुड़कर नहीं देखता। फिर कभी कांचली को पाने की कोशिश नहीं करता है। उसके बारे में सोचता तक नहीं है। वह जानता है कि यदि कांचली की ओर गया तो परेशानी आ जाएगी। वैसे ही ये संयोग की कांचली हमें दुःखी बनाएगी। भले ही ये हमें मधुर लग रही हो, अच्छी लग रही हो किंतु शहद लगी तलवार पर कोई भी जीभ रखे, उसको स्वाद तो मिल जाता है किंतु तलवार की धार से उसकी जीभ कटेगी। उसका परिणाम कौन भोगेगा?

हम सोचते हैं कि शहद लगी तलवार पर से शहद का स्वाद लेंगे, उससे जीभ नहीं कटेगी। यदि पहले कभी हमारी जीभ कटी भी है तो ठीक है, चलता है और उसको थोड़ा-सा चूसकर वापस उस ओर जाएंगे। कहेंगे कि ठीक है, थोड़ी-सी कटी है।

साथियो! ध्यान रखो कि ये संयोग कभी भी सुख देने वाले नहीं होंगे। मैं यह कहना चाहूंगा कि यदि साधु बनना है तो हमें वैसा साधु बनना चाहिए कि फिर वापस मुड़कर पीछे की तरफ नहीं देखना। वापस उस कांचली को, उस केंचुली को धारण करने की भावना नहीं बने। थूक चाटने का मन में विचार पैदा नहीं हो। ऐसी दीक्षा, ऐसे संयम की आराधना ही हमें आत्मार्थी बनाने वाली है। ऐसी दीक्षा आत्मा के प्रयोजन के लिए, आत्मा के कल्याण के लिए होती है। बाकी तो सब खाली तमाशा चलता रहेगा और इन खाली तमाशों में रहे तो न इधर के रहेंगे और न ही उधर के रहेंगे। न गृहस्थी में रहेंगे और न साधुता में रहेंगे। बीच में त्रिशंकु बनकर रह जाएंगे। जिसे न तो स्वर्ग में स्थान मिलता है और न ही मृत्यु लोक में। त्रिशंकु की तरह लटक जाएंगे। हमें वैसा कुछ भी नहीं करना है। जो सपना देखा है उसे समय रहते हुए साकार कर लेना चाहिए। 'हां, सोच रहा हूं। विचार कर रहा हूं, घरवालों को मना रहा हूं।' तुम्हारा मन मान गया तो दुनिया की बात जाने दो और मन नहीं माना है तो कदम आगे नहीं बढ़ाना है। बिना मन, कदम आगे मत बढ़ाना। धक्का लगाकर गाड़ी मत चलाना। यदि हमारे भीतर भावना बने तो हमें एक क्षण का भी विलंब नहीं करना चाहिए। क्या पता अगले क्षण क्या होगा? किस समय क्या हो जाएगा? और सारी बातें धरी की धरी रह जाएंगी।

नीतिकारों ने कहा है कि रहा हुआ काम रावण का भी पूरा नहीं हुआ। वह बीच में ही चला गया। वैसे ही यदि कोई काम शुरू कर दिया तो उसे समय रहते पूरा कर दो। यदि सोचने में रह गए तो ये आगे से आगे चलते रहेंगे। न तो कभी काम पूरा होगा और न वे प्रोजेक्ट पूरे होंगे जो हमने शुरू किए हैं। तृष्णा कभी पूरी हुई न होगी, किंतु जिस दिन दृढ़ भावना से ब्रेक लगा लेंगे उस दिन एक क्षण भी विलंब करने का मन नहीं बनेगा।

प्रतिमा जैसे स्थिर होती है, जम्बू कुमार वैसे ही स्थिर बैठे हुए हैं। आठों पत्नियां आ गईं किंतु जम्बू कुमार ने रुख नहीं मिलाया। आठों पत्नियां सहम गईं कि रुख ही नहीं मिला रहे हैं तो बात कैसे करें? हमने तो लंबी-लंबी बातें की थीं। लंबी प्लानिंग की थीं कि ऐसा कर लेंगे, वैसा कर लेंगे। चार आंखें तो होने दो, फिर देखो ये वैराग्य किधर जाएगा। वैराग्य का भूत उतर जाएगा। किंतु जम्बू कुमार को इस तरह देखकर उन्हें एकदम से धक्का लगा। एक-दूसरे से आंखों ही आंखों में विचार करने लगीं कि क्या करें। आगे बताया गया है कि–

रात्रि का ही समय बचा है, बाजी निकले हाथ।
अवसर को यदि यों ही खो दिया, क्या आएगा हाथ जी॥ जय जय...।

उन्होंने सोचा कि यह रात भी निकल जाएगी और इन्होंने कह रखा है कि बस विवाह की रात्रि तक रुकने वाले हैं। दूसरे दिन तो...? (प्रत्युत्तर– दीक्षा ले लेंगे।) एकदम। साथियो! ये तकलीफ है, वो तकलीफ है ये सब संसार में यूं ही चलता रहेगा। शरीर की अड़चनें, शरीर छूटेगा तब तक चलती रहेंगी। ये शरीर संयम में छूटे तो ठीक है या आस्रव में? शरीर किसमें छूटना चाहिए? (प्रत्युत्तर– संयम में) धीरे क्यों बोल रहे हो? संयम में शरीर छूटना चाहिए।

उन आठों ने विचार किया कि नाथ बोलने वाले नहीं हैं। ये रात ऐसे ही निकल जाएगी और हाथ में कुछ नहीं आएगा। उन्होंने एक-दूसरे को इशारा करके पलंग को घेर लिया। ऐसे कहें कि पलंग के सामने आकर खड़ी हो गईं। अर्ध-चंद्राकार रूप में खड़ी हो गईं पलंग को घेरकर। सोचा कि कहीं-न-कहीं से बात तो चालू करनी ही होगी।

एक पत्नी बोली, हे नाथ! आपके सुख की छाया हमें वैसी प्राप्त हुई है, जैसे किसी भिखारी को कल्प वृक्ष की छाया मिल जाती है। कल्प वृक्ष का सहारा मिल जाता है। हम आपकी छांव में पहुंच गई हैं। जम्बू कुमार अब भी

चुपचाप हैं। वे कुछ नहीं बोल रहे हैं। पत्नियां सोच रही हैं कि अब कैसे करें? एक तरफा बात कैसे चलेगी। सामने वाला बोले तो बात चलती है। सामने वाला नहीं बोले तो कैसे चलेगी?

जब जम्बू कुमार का कोई जवाब नहीं आया तो एक बहन ने आगे बढ़कर कहा कि नाथ, आपकी यही इच्छा थी। आपको साधु ही बनना था, आपके विरक्ति के ही भाव हैं, आपको दीक्षा ही लेनी है तो यह विवाह करने का निर्णय क्यों किया? क्या यह उचित था? क्या विवाह करना जरूरी था? विवाह नहीं भी करते तो भी चल ही जाता। बिना विवाह के भी साधु बन सकते थे। आपने ऐसा क्यों किया? हम अबलाओं पर ध्यान दीजिए और हम को कृतार्थ कीजिए। नाथ हम बता दें आपको कि हमने कुछ नहीं सीखा है। हमने न दुनियादारी सीखी है, न कोई राजनीति सीखी है और न ही कोई दावं-पेच सीखे हैं। क्या होना चाहिए, क्या नहीं होना चाहिए, हम इस सबसे अनभिज्ञ हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि कुछ भी हमारे साथ होता है तो एक प्रकार का विश्वासघात होगा। हम भोली-भाली अबलाओं के साथ विश्वासघात होना क्या उचित होगा? एक तरफ हमारा सौभाग्य उदय हुआ है। हमें जो सौभाग्य मिला है अभी उसका हमने कुछ अनुभव ही नहीं किया और वह अस्ताचल की ओर जा रहा है। ऐसे में हमें छोड़कर जाएंगे तो हमारी क्या दशा होगी? आप जैसे सज्जन पुरुष, विवेकशील, हेय-ज्ञेय-उपादेय को जानने वाले क्या न्याय करने से मुकर जाएंगे? आप स्वयं जानते हैं कि शादी के बाद पति का दायित्व क्या होता है? आप स्वयं अपने दिल से न्याय कीजिए। अपने आप आपको ज्ञात हो जाएगा कि आपका न्याय, आपका दायित्व और कर्तव्य क्या कहता है? हमसे ऐसा क्या भीषण अपराध हुआ जिसके कारण आप हमें ये दंड दे रहे हैं?

अंजना का कोई अपराध नहीं था फिर भी पवन जी ने उनको दंड दिया और उन्होंने 12 या 22 साल का दंड भोगा। क्या वैसा ही भीषण दंड हमें दे रहे हैं? हमने तो स्वप्न में भी आपके विपरीत कोई बात नहीं सोची। इसके बावजूद आपके ध्यान में ऐसी बात आ गई हो तो आप उसका जो भी दंड देंगे हम उसको स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। किंतु इस प्रकार से आप कुछ बोलें नहीं, कुछ कहें नहीं, कुछ फरमाएं नहीं तो ये एक प्रकार से मानसिक हिंसा का रूप बनेगा। हमारे भीतर कुंठा व्याप्त होगी। हम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाएंगी। हम स्वयं ही जान नहीं पाएंगी कि क्या करें, क्या नहीं करें। ऐसे में

हमारी क्या हालत होगी, क्या आप विचार कर सकते हैं? मानसिक हिंसा करना क्या पाप के अंतर्गत नहीं है? क्या किसी का मर्डर ही पाप है? किसी को मानसिक रूप से प्रताड़ित करना, क्या हिंसा का रूप नहीं है? हम आपसे निवेदन कर रही हैं कि आप इन बातों पर विचार कीजिए। हे नाथ! जब आपने हमको अपनाया है तो ऐसे मझधार में क्यों छोड़ेंगे?

कोई माझी नौका में आदमियों को बिठाकर थोड़ी दूर नौका चलाकर बोले कि मैं नौका छोड़ रहा हूं तो नौका में बैठने वालों का हाल क्या होगा? आप हमारे साथ वैसा मत करिए। हमें मझधार में छोड़ना ठीक नहीं है। आप यदि इस तरह हमें नकार देंगे तो हमारा क्या होगा? आप इस पर विचार कीजिए।

मान लीजिए हमारे में पात्रता नहीं है। हमारे में आपकी पत्नी बनने की पात्रता नहीं है। हम ऐसा कुछ अनुराग आपको दे नहीं सकीं किंतु आप तो हमारे पर दया कर ही सकते हैं। क्या इतनी सारी बहनों को देखकर आपके मन में तरस नहीं आ रहा है? हम आपके द्वार पर खड़ी हैं। ऐसे साज-सजाए हम खड़ी हैं। हमने क्या-क्या सोचा, क्या-क्या हमारे अरमान रहे हैं। हम ऐसा कौन-सा साज सजाएं जिससे आपको राजी कर सकें। नाथ! एक बार आप हमारी तरफ देखें। एक बार हमारी ओर आंख तो उठावें।

इतना कहने पर भी जम्बू कुमार मूर्ति बने हुए हैं। वे केवल सुन रहे हैं। बस सुन रहे हैं। कुछ बोल नहीं रहे हैं। वह पत्नी फिर बोली कि नाथ, आप इतिहास की बात यदि करना चाहें तो मैं इतिहास की बात आपके सामने रख सकती हूं। आप हमारे हृदय को चीरकर देखना चाहें तो देख लें। जैसे हनुमान के भीतर राम बसे हुए थे, वैसे ही हमारे भीतर आप बसे हुए हैं। हमारे भीतर दूसरी कोई मूरत नहीं है। आप देख सकते हैं हमारे भीतर आपके अलावा और कोई नहीं है।

अब दूसरी बहन ने बोलना शुरू किया कि इतिहास की बात यदि देखें तो बहुत सारे तीर्थंकर भी हुए, जिन्होंने शादी की। शादी ही नहीं की शादी करके कुछ समय तक सांसारिक जीवन में रहे। बाद में उन्होंने संयम स्वीकार किया। उन्होंने पहले लौकिक धर्म का पालन किया फिर दीक्षा के लिए तैयार हुए। हमारा भी यही निवेदन है कि हम आपसे कभी अलग नहीं हैं। हम भी आपके साथ हैं। जो आपकी गति होगी, वही हमारी गति होगी किंतु पहले

आप लौकिक धर्म को निभाएं। आज हम आपको पक्का वचन देती हैं कि लौकिक धर्म की पालना के बाद यदि आप दीक्षा लेना चाहें तो हम भी आपके साथ हो जाएंगी। नाथ! हमारा भी कुछ अधिकार बनता होगा और आपका भी हम पर कुछ अधिकार बनता है।

इतने में एक और पत्नी बोली कि आप हमारे प्राणनाथ हैं और प्राण के आधार पर ही शरीर टिका रहता है। यदि प्राण ही चला जाए तो शरीर कहां टिकेगा? नाथ, आप यह बताइए कि क्या इस प्रकार का कष्ट हम सह पाएंगी? संयम लेकर क्या सचमुच में आप हमारे प्राणों का हरण करना चाहते हैं?

एक के बाद एक, सभी वधुएं अपनी बात कहने लगीं। जिसके जैसे तर्क पैदा हुए, जिसके जैसे विचार पैदा हुए, वे अपने विचार व्यक्त करती रहीं। एक बहन ने कहा कि संयम लेकर क्या सचमुच में आप हमारे प्राणों का हरण कर लेंगे! क्या, आप हमारे प्राण हर लेंगे? हमें ऐसा विश्वास तो नहीं हो रहा है। क्योंकि यदि बाड़ ही खेत खाने लगे तो फिर खेत को कौन बचाएगा? आप हमारे रक्षक हो, संरक्षक हो। हमें विश्वास है कि निश्चित रूप से आप हमारी रक्षा करेंगे।

इतनी सारी बातें होने के बाद भी जम्बू कुमार अभी तक उनकी बातों को सुन रहे हैं। वे बातों को सुनते रहे। बोलते-बोलते सभी पत्नियां एक-दूसरे को देखकर हैरान हो रही हैं, परेशान हो रही हैं। अरे! नाथ जवाब नहीं दे तो आगे बात कैसे करें? जैसे चिकने घड़े पर पानी की छांट का कोई असर नहीं होता, वैसे ही जम्बू कुमार पर कोई असर नहीं हुआ। कहानी बड़ी है, किन्तु अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए उनकी पत्नियों ने अपना प्रयत्न किया। पुरजोर प्रयत्न किये।

जम्बू कुमार ने जो संकल्प धार लिया, सो धार लिया। हमने अपने मन में क्या भाव धारे हैं? (प्रत्युत्तर– दीक्षा लेना) क्या पच्चक्खाण धारण किया है? आप कहते हो कि पच्चक्खाण धारण कर लिया किंतु क्या धारण किया वह तो बताओ। हमारे भीतर वह भावना जगनी चाहिए कि इस मिले हुए दुर्लभ मनुष्य जन्म में वे सभी कार्य करने हैं जो पिछले जन्मों में नहीं कर पाए होंगे। साथ ही इस जन्म में भी अभी तक जो नहीं किया होगा, उस कार्य को अब करना है।

लेऊँ-लेऊँ, संयम धार, माता मोरी ओ आज्ञा तो देवो नी म्हाने मोद सूं।

अब कहोगे कि महाराज माताजी ही नहीं हैं, किससे आज्ञा लें? आपकी माताजी नहीं हैं तो आपके बच्चों की ही माता सही। आपकी माताजी नहीं है तो बच्चों की मां तो है। घर में कोई-न-कोई, किसी-न-किसी की मां तो है। बच्चों की मां से आज्ञा ले लो। संकल्प मजबूत होना चाहिए। मजबूत संकल्प को फलने में देरी नहीं लगती।

जो करना सो अच्छा करना,
फिर दुनिया में किससे डरना...!

आप अपना संकल्प मजबूत बना लो फिर कौन क्या कहेगा? कोई कहने वाला नहीं है, कोई रोकने वाला नहीं होगा। इसलिए जो शुभ भावनाएं हमारे भीतर पैदा हों, जो अच्छे सपने हमने देखे हैं उनको पूरा करने के लिए रुककर समय नहीं गंवाना है। समय पर काम होना ही जीवन को सार्थक करता है। जिंदगी क्षण-क्षण बीतती जा रही है। किसको पता है कब दीये का तेल खत्म हो जाए और बाती बुझ जाए।

यह जिंदगी, बाती है। जब तक जल रही है, तब तक दीपक की रोशनी बनी हुई है। अपने मन को संयम की ओर मोड़ लो। यदि तेल खत्म हो गया और दीपक बुझ गया फिर संयम का सुख नहीं मिल पाएगा। इस प्रकार समय पर सही सोचेंगे और समय रहते हुए सही दिशा में कदम बढ़ा लेंगे तो जीवन को धन्य बना पाएंगे। शेर की एक दहाड़ से वनचर भागने लगते हैं। वैसे ही आत्म-शौर्य से यदि दहाड़ लगाएंगे तो कर्म रूपी वनचर भाग खड़े होंगे। संयोग छूटेंगे तो ही सिंह गर्जना हो पाएगी।

08 अगस्त, 2019

7

शस्त्र नहीं निश्शस्त्र

श्रीमद् आचारांग सूत्र में एक सूत्र आया है–

'अत्थि सत्थं परेण परं, णत्थि असत्थं परेण परं।'

हमारी भाषा में इस सूत्र का पहला हिस्सा हमें समझ नहीं आया होगा। शब्द अर्धमागधी भाषा के हैं। 'अत्थि सत्थं परेण परं' का अर्थ है–एक से बढ़कर एक बहुत सारे शस्त्र हैं। चाकू, छुरी, तलवार और अन्य दूसरे भी एक से बढ़कर एक शस्त्र होते हैं। दूसरा हिस्सा 'णत्थि असत्थं परेण परं' अर्थात् अशस्त्र एक-दूसरे से बढ़कर कोई नहीं है।

यहां पर असंयम को शस्त्र कहा गया है। असंयम शस्त्र है। हमारे हाथ में कुछ भी शस्त्र नहीं हो किंतु यदि हम खुले हैं, सामायिक में नहीं हैं, संवर में नहीं हैं, पौषध में नहीं हैं, किसी भी त्याग-पच्चक्खाण में नहीं हैं तो हमारा मन शस्त्र है। हमारा वचन शस्त्र है। हमारी काया शस्त्र है। असंयम शस्त्र रूप है। जब तक असंयम बना रहता है, तब तक दुनिया के सारे प्राणी उससे भयभीत होते हैं। वह भी असंयम-अव्रत के कारण कर्म बन्ध करता रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि तुम कोई चीज भोग रहे हो या नहीं भोग रहे हो। किसी वाहन पर आरूढ़ हो रहे हो या नहीं हो रहे हो, कोई चीज खा रहे हो या नहीं खा रहे हो किंतु यदि त्याग नहीं है, संयम नहीं है, व्रत नहीं है तो असंयम की क्रिया तुम्हें लगेगी। पूरे लोक की क्रिया लगती रहेगी क्योंकि असंयम, अव्रत है। एक उदाहरण–हजारों लोग जहां बैठे हुए हैं, वहां पर एक आदमी आकर किसी एक का मर्डर करने के लिए कहता है तो कितने लोग भयभीत होंगे? कितने लोगों को भय होगा? सभी भयभीत होंगे कि पता नहीं किस का नंबर आएगा। वैसे आदमी मरेगा तो अपनी मौत से, किंतु मन में भय तो रहता ही है।

श्रीमद् आचारांग सूत्र में बताया गया है कि **सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं** जो असंयमी है, उसको भय होगा। जो प्रमादी है, उसको भय होगा। अप्रमत्त अवस्था में भय नहीं होता है। वह भयभीत नहीं होता है। नंगी तलवार म्यान में डाल देने के बाद व्यक्ति भयभीत नहीं होगा। लेकिन कोई तलवार म्यान से निकालकर हाथ में लेकर चल रहा है तो आदमी को लगता है कि क्या करेगा पता नहीं? दोनों स्थितियों में बहुत बड़ा फर्क पड़ता है। व्रत, नियम ग्रहण करने से मन, वचन, काया की असंयम रूपी तलवार म्यान में आ जाती है। इससे कोई भयभीत नहीं होगा। दुःखी नहीं होगा। नहीं तो प्राणियों के मन में भय होता रहता है।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के 18वें अध्ययन में संयति राजा का प्रकरण आता है। शिकार करते हुए उनके हाथ से एक हरिण की मृत्यु हो गई। वहीं पर एक मुनिराज ध्यान में थे। राजा ने समझा कि वह मुनिराज का हरिण होगा, मैंने उसका शिकार कर लिया। अब मुनि मेरे पर गुस्सा होंगे, क्रोधित होंगे। राजा यह सोचकर घबरा रहा है कि मुनि का क्रोध सब कुछ भस्म कर देने वाला होता है। वह भयभीत हो रहा है, प्रकंपित हो रहा है। मुनि का ध्यान पूर्ण होता है तब देखते हैं यहाँ राजा खड़े हैं और भयभीत हैं। तो वे उनसे कहते हैं कि 'अभओ पत्थिवा! तुज्झं'। इसका अर्थ है– हे राजन्! तुम्हें अभय है। तुमको मेरे से किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए। तुम स्वयं में अभय बनना चाहते हो तो दूसरों को भय देने वाले मत बनो। यदि तुम स्वयं अभय चाहते हो, तुम नहीं चाहते हो कि तुम्हें कोई डरावे-धमकावे, कोई बुरा व्यवहार करे तो वही तुम दुनिया को परोसो।

किंतु हमारे यहां नीयत थोड़ी खराब होती है, अलग होती है। सब घरों का तो मुझे पता नहीं है, परंतु कुछ घरों में देखा जाता है कि सेठ, मालिक, घर के सदस्य के लिए रसोई अलग होती है और घर के नौकरों के लिए खाना अलग बनता है। उनको रोटी अलग मिलेगी, उनको खाना अलग मिलेगा। ये भेद चलता है। लोग नौकरों से कुछ दूरी चाहते हैं। क्यों चाहते हैं दूरी? आखिर आदमी वह भी है और आदमी यह भी है, फिर भेद क्यों किया?

एक सेठ था। बात उस जमाने की है जब बैलगाड़ियों से चलना होता था। तब आज की तरह सुविधाएं नहीं थी कि जब चाहें कार में बैठकर कहीं भी चले गए। टू व्हीलर, फोर व्हीलर नहीं थे। ऐसा नहीं था कि बस बेग उठाया और चल दिये। गाड़ी चलानी नहीं आती है तो ड्राइवर को बुला लिया और

चल दिये। अभी तो ज्यादा देर नहीं लगती है। फटाक से तैयार हुए और निकल गए। उस समय सोचना पड़ता था कि बैलगाड़ी से जाना है। सोचना पड़ता था कि कब निकलें? सुबह निकलना ठीक रहेगा नहीं तो धूप चढ़ जाएगी। किसी गाड़ीवान को बुलाना पड़ेगा। गाड़ीवान, गाड़ी चलाने वाला घर में है तो ठीक, नहीं तो पड़ोस से बुला लेते।

उन सेठजी को दो दिन के कार्यक्रम के लिए कहीं बाहर जाना था। सेठजी ने खाना बनाने का थोड़ा सामान साथ में लिया कि रास्ते में खाना बना लेंगे। गाड़ीवान को बुलाया, गाड़ीवान साथ में हो गया। सेठजी ने यात्रा शुरू की। दोपहर का समय होने पर सेठजी ने गाड़ी रुकवाई, कहा कि यहां पर थोड़ा भोजन करेंगे। उन्होंने आटा गूंधकर बाटियां बना ली। आग जलाकर खीरे बनाकर उसमें बाटियां डाल दी और स्वयं नहाने, धोने आदि में लग गये। नहाने, धोने के बाद आए और बाटियों को निकाला। उसके बाद एक चौका लगा दिया। कई लोग चौका लगाते हैं। कोई पानी का तो कोई गोबर का लगाता है। सेठजी ने चौका लगाया और बाटियों की छंटनी करने लगे। छंटनी करते समय देखा कि कुछ बाटियां कच्ची थीं और कुछ पकी हुई थीं। उन्होंने अच्छी पकी हुई बाटियां अपने भोजन के लिए ले ली और घी, शक्कर वगैरह डालकर चूरमा तैयार किया। जो बाटियां थोड़ी कच्ची थीं, पूरी नहीं सिंकी थीं, उन्होंने उनको गाड़ीवान की तरफ खिसका दिया कि ले तू भी खा ले। क्या किया उन्होंने? कच्ची बाटियां मुझे नहीं खानी और गाड़ीवान को दे दी। ऐसा भी हो सकता था कि उस समय वापस थोड़ी आग में रख देते तो वह भी पक जाती और उसके बाद दे दी जाती। पूरी सिंकने के बाद देते किंतु छंटनी के समय कच्ची उसको दे दी और पकी हुई स्वयं रख ली। यह भेद है। एक छोटा-सा भेद।

नौकरों के साथ ऐसा व्यवहार करके आप चाहो कि नौकर हमारे साथ अभिन्न हो जाए, हमारे साथ जी-जान से जुड़ जाए, तो सोचने की आवश्यकता है। हो सकता है कि आप जितना सोचते हैं, आप जितना समझते हैं, वे उतना सोचते-समझते नहीं होंगे। यदि इतना वे समझते तो नौकर क्यों होते? वे नौकरी क्यों करते? वे गाड़ीवान या ड्राइवर क्यों होते? वे भी सेठ हो जाते। जितना हम सोच पाते हैं, उनमें उतनी सोच-समझ नहीं होती होगी। फिर भी भले-बुरे बर्ताव को तो समझ ही सकते हैं। इतनी समझ तो उनमें भी होती है।

गाड़ीवान के मन में भी विचार आया कि ये सेठ हैं। सेठ किसको कहते हैं? पैसे वाले को सेठ कहते हैं या गरीब को सेठ कहते हैं? (प्रत्युत्तर– मन से अमीर) नहीं। सेठ उसको कहा गया है, जो सेठाई धारकर चले, जो श्रेष्ठ आचरण करता है। जो सबके हित के लिए आचरण करता है, वह सेठ है। सभी प्राणियों के हित में सोचने वाला सेठ होता है। खाली अपने हित में सोचने वाला सेठ नहीं होता है। मैं जैसे जीना चाहता हूं, सभी को वैसे जीने का अवसर दूं, इस प्रकार की भावना जिसकी होती है, वह सेठ है। किसी की असुविधा को दूर करने के लिए तत्पर रहना, सेठ के लक्षण हैं। जो आदमी किसी दूसरे के हित में खड़ा होता है तो जिसके हित में वह खड़ा है, वह आदमी उसको जिंदगी भर नहीं भूलता है। जो कठिनाई के क्षण में हिम्मत देता है कि तू घबरा मत, मैं पीछे खड़ा हूं, तो क्या उसको कोई भूल पाता है? उसको जल्दी से भूल नहीं पाएगा या भूल ही नहीं पाएगा। किसी ने बढ़िया भोजन कराया तो शायद उसको कोई भूल भी जाए किंतु कठिनाई के क्षण में यदि कोई काम आया है तो आदमी उसको जल्दी से भूल नहीं पाता है।

वह गाड़ीवान सोचने लगा कि सेठजी हैं किंतु नीयत कहां जा रही है? मैं भी एक इनसान हूं। मुझे कच्ची बाटियां खाने के लिए दी जा रही है। बाटियां पूरी तरह सिंकी नहीं है। थोड़ी देर यदि और सिंक जाती, पूरी तरह पक जाती तो क्या दिक्कत थी? गाड़ीवान थोड़ा चतुर था। वह भी विचार रखता था। उसने बाटी को देखा और एक बाटी सेठ के चौके में गुड़का दी और कहा कि ये पूरी सिंकी नहीं है, इसको थोड़ा और सेंक दें।

बाटी चौके में डालते ही सेठ चिल्लाया कि तुमने मेरा चौका भ्रष्ट कर दिया। अब मैं खाना नहीं खाऊंगा। यह कहते हुए उसने घी डाली हुई सारी बाटियां गाड़ीवान की ओर बढ़ा दी। गाड़ीवान की चतुराई काम आ गई। घी डाली हुई सारी बाटियां उसके हाथ आ गई? दूसरे दिन फिर ऐसा ही कार्यक्रम हुआ। दूसरे दिन बाटियां कच्ची तो नहीं थी किंतु सेठ की बाटियां घी डाली हुई थीं और उसकी रूखी। बगैर घी लगाई हुई थी। उसने विचार किया कि सेठजी को अब भी अक्ल आई नहीं है। सेठ जी जैसे ही चौका लगाकर खाने की तैयारी करने लगे झट से उठकर उसने सेठ जी के चरण पकड़ते हुए कहा, कि सेठजी! मुझे माफ कर दो। मेरे कारण कल आपको भूखा रहना पड़ गया।

इतना हुआ कि सेठजी फिर चिल्लाए। कहा कि मेरा चौका भ्रष्ट कर दिया। सेठ जी को समझ आई या नहीं आई, किंतु हमको समझ आती है या

नहीं आती है? क्या हम समझ पाए? थोड़ा-थोड़ा समझे हैं? किसी के साथ दुर्भाँत नहीं करें।

मैंने कई घरों में तो यहां तक देखा है कि घर के बच्चों को जो भोजन परोसा जाता है, घर की बहू को वह नहीं परोसा जाता है। हर कोई उसको आयोड़ी (आई हुई) मानेगा। जो उसको आयोड़ी मानेगा, वह कब जायोड़ी/अपनी हो पाएगी? कब वह अपनी बन सकेगी? उसको पराया मानते रहेंगे, तो उसके भीतर में अपनापन कैसे आ पायेगा? उसके भीतर अपनापन आना बहुत कठिन काम है।

किंतु भेद की ये स्थितियां दिमाग में बहुत चलती रहती हैं। यह भेद एक बच्चे के प्रति भी हो जाता है। बिल्ली मुंह से अपने बच्चे को पकड़ती है और चूहे को भी पकड़ती है, पर भाव एक समान रहते हैं या भिन्न? फर्क होता है। एक बहन अपने बेटे और एक देवरानी के बेटे को जिमा रही है। दोनों के प्रति भावना एक ही है या अलग-अलग है? (प्रत्युत्तर– अलग-अलग) आप कह रहे हो कि अलग-अलग होगी। आपने ऐसी बातें देखी होंगी तभी उत्तर दे रहे हो कि भावना अलग-अलग है। ये बात यदि होती हैं घर में तो बताओ कि उस घर में आपस में स्नेह कितने दिनों तक चलेगा? ये जो भाव आ रहे हैं, उससे वे कितने दिन साथ रह पायेंगे? थोड़े दिनों तक वे भले ही साथ रह जाएं किंतु लंबे समय तक साथ निभने वाला नहीं है। थोड़े दिनों के बाद भेद खड़े हो जाएंगे, अवश्य खड़े होंगे। बच्चा तो बच्चा ही है। क्या मेरा और क्या तेरा? बच्चों के दिल जैसे निर्मल, कोमल और पवित्र होते हैं, वैसे यदि बड़ों के दिल पवित्र हो जाएं तो झगड़े का काम ही नहीं है। विवाद का काम ही नहीं है। किंतु झगड़े तभी होते हैं जब हम अपने आप में दुश्मनी जैसी भेद स्थितियां रखते हैं। ऐसा होने पर घर में विवाद खड़ा हो जाता है। इसलिए कहा गया है कि 'अत्थि सत्थं परेण परं' विवाद के कारण असंयम रहेगा तो तेरा-मेरा के भाव बने रहेंगे। स्वार्थ के भाव बने रहेंगे। और यदि संयम के भाव आ जाते हैं, अप्रमत्तता के भाव आ जाते हैं तो ये भाव नहीं होंगे।

आचार्य पूज्य गुरुदेव का जन्म शताब्दी वर्ष अनन्य-महोत्सव के रूप में साधुमार्गी जैन संघ मना रहा है। ऐसे अनन्य महोत्सव में गुरुदेव के जीवन-वृत्तांत प्रसंग के कुछ अंशों को प्रतिदिन यहां रखने का भाव रहता है। गुरुदेव के समय में एक बड़ा प्रश्न उठा करता था कि गुरुदेव! परिषद् बड़ी हो जाती है किंतु इतने लोग सुन नहीं पाते। आवाज पहुंच नहीं पाती है। क्यों न

माइक का उपयोग कर लिया जाए। माइक के उपयोग में क्या बाधा है? क्या अड़चन है? यदि कोई अड़चन है भी सही तो आपको थोड़ा-सा दोष लगेगा किंतु हजारों लोग, सुनने वालों का फायदा हो जाएगा। कभी काम पड़े तो बोलकर प्रायिश्चत्त ले लो किंतु बहुतों का भला तो हो जाएगा।

कितनों का भला होगा? और भला होने की बात क्या समझें? हजार आदमी आए और हजार आदमी चले गए, क्या लाभ हुआ? रोटेशन हो जाएगा कि हमने इतने का माल बेचा किंतु साल भर में मुनाफा क्या हुआ? मुनाफे का महत्त्व है या ज्यादा माल हाथ से निकालने का? लोगों में दिखावा जरूर हो सकता है कि इतना माल बेचा, इतना टर्न ओवर हुआ। इसका टर्न ओवर इतना है, दुनिया में नाम हो जाता है किंतु वह नाम कितने दिन तक चलेगा? हमने देखा है, बहुत से लोग हाथ खड़ा कर देते हैं।

जेट एयरवेज का क्या हो गया? किंगफिशर का क्या हो गया? कितना घाटा हो गया? वो यदि एक हजार में ले जा रहा है तो हम आठ सौ में ले जाएंगे। वो यदि आठ सौ में ले जा रहा है तो हम पांच सौ में ले जाएंगे। इसी तरह एक-दूसरे से भिड़ंत करते-करते भिड़ंत हो गई! जब आदमी अपने लाभ को नहीं देखकर केवल टर्न ओवर देखता है तो वह एक दिन महंगा पड़ेगा। फिर उसका पतन होगा और जो आदमी मुनाफे को देखता है, वह मुनाफे की तरफ ध्यान देता है।

हजार आदमी सुनने वाले हैं, कोई मतलब नहीं है। हजार आदमी सुनते हैं और वे सभी शराब पीने वाले हैं। सारे के सारे गुटका खाने वाले हों! उनमें से कितने लोगों ने गुटका छोड़ा? हजार आदमी सुनने वाले हैं! सभी धूपबत्ती करने वाले हैं– कोई भैरूजी को मानेगा, कोई भवानी को मानेगा, कोई किसी को। कोई किसी को माने या नहीं माने, अपनी-अपनी बात है किंतु आरंभ में कभी भी धर्म नहीं होगा। हिंसा में कभी भी धर्म नहीं होगा। हजार आदमी सुनने वाले हैं, उनमें से हिंसा कितने लोगों ने छोड़ी? उनमें से दीक्षा लेने वाले कितने हैं? यदि कोई त्याग करने वाला नहीं हो, तो कितने भी आदमी हों, किस काम के हैं?

भगवान् महावीर की पहली देशना हुई तो सुनने वाले बहुत थे किंतु नवकारसी का पच्चक्खाण करने वाला कोई भी नहीं था। जहां पच्चक्खाण ज्यादा होता है वह लाभ का कारण है या खाली सुनकर रवाना हो जाना लाभ

है। सुनने वालों की कमी नहीं है पर सुनाने से लाभ भी नहीं है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि कोई पच्चक्खाण लेने के लिए तैयार हो जाए तो माइक से बोला जाए। दीक्षा के लिए तैयार हो जाए तो माइक से बोलें। मर्यादा अपनी है।

एक छोटी-सी बात बताता हूं। मान लो, ललित जी नांदगांव वालों की भावना बनी दीक्षा लेने की। उन्होंने कहा, कि गुरुदेव! मेरी दीक्षा लेने की भावना है किंतु मेरी एक शर्त है। गुरुदेव ने कहा–बोलो, क्या शर्त है? बता तो दो क्या है मन की शर्त? ललित जी ने कहा कि मदनजी दीक्षा लेंगे, तो हम भी लेंगे। उस भाई ने कहा कि आप दीक्षा जिस समय पच्चक्खाओ, उस समय पांच मिनट के लिए साफा आपके सिर पर, खाली सिर पर रखना है। उसके बाद भले ही हटा दो पर दीक्षा पच्चक्खाते समय साफा सिर पर रखें यह मेरी शर्त है।

साधु यदि साफा सिर पर रखता है तो पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायु काय, वनस्पति काय, त्रस काय इन छह काय में से कौन-से काय की हिंसा होती है? (प्रत्युत्तर–वनस्पति काय) साफे से क्या वनस्पति काय का दोष हो गया? जब कपड़ा हम पहन रहे हैं तो कपड़े से ही तो साफा बनता है। उसको पहनने से भी एक भी जीव हिंसा नहीं हो रही है। कोई जीवों की विराधना नहीं हो रही है।

दीक्षा लेने वाले दीक्षार्थी तैयार खड़े हैं–एक-दो नहीं, पूरे ग्यारह दीक्षार्थी। ग्यारह लोग दीक्षा लेने के लिए तैयार खड़े हैं, एक साथ। बस एक शर्त है कि थोड़ी देर के लिए साफा लगा लो, उसके बाद पच्चक्खाण करा दो। क्या बोलेंगे जोधपुर वाले? क्या बोलेंगे कि लगा लें साफा। ग्यारह दीक्षार्थी कहां पड़े हैं? ग्यारह दीक्षार्थी तैयार खड़े हैं, आज तो एक आदमी मिलना मुश्किल हो रहा है। एक आदमी मिलना मुश्किल है और यहां ग्यारह-ग्यारह लोग दीक्षा के लिए तैयार खड़े हैं। बोलो, क्या करना चाहिए? बताओ क्या करना चाहिए? (प्रत्युत्तर–नहीं) नहीं लगाना चाहिए साफा। आप लोग बोल रहे हैं कि साफा लगाकर ग्यारह को दीक्षा नहीं दे सकते, तो फिर हजारों को माइक लगाकर सुनाने की बात कहां से आ गई? साफे में कोई हिंसा नहीं है, कोई दोष नहीं लगता है, कोई सेल नहीं लगता। उसमें आरंभ की, हिंसा की कोई बात नहीं है और जब हिंसा की बात नहीं है, ग्यारह-ग्यारह लोग दीक्षा ले रहे हैं तो क्या कर लेना चाहिए? किंतु साधु साफा नहीं लगाते हैं। दीक्षा देना ही जरूरी नहीं है, मर्यादा को बनाए रखना भी जरूरी है। साधु कहेगा हम

मर्यादा को छोड़कर दीक्षा पच्चक्खाने वाले नहीं हैं। जब दीक्षा देने के लिए भी मर्यादा से समझौता नहीं किया जा सकता तो केवल लोगों को सुनाने के लिए माइक का प्रयोग कैसे उचित हो सकता है!

मैं चेन्नई में था। शायद ज्ञान पंचमी के दिन दीक्षा हो रही थी, वहां। उस दिन वर्षा भी हो रही थी। हर्षित मुनि जी और पूर्वीश्री जी की उस समय दीक्षा हो रही थी। अन्य दीक्षार्थी भी थे। रात में पानी बरस रहा था। कभी तेज, कभी धीरे। रास्ते में भी पानी भरा था। लोग पूछने लगे, कि म.सा.! कैसे होगा, क्या होगा, दीक्षा कहां होगी? मैंने कुछ नहीं बोला। जहां होगी हो जाएगी। कुछ बोला नहीं। अगर कहूं यहां होगी। लोग वाहन से पहुंचेंगे। यदि वहां कह दूं तो लोग उधर भागेंगे और यहां होगी तो लोग गाड़ी दौड़ा-दौड़ाकर लाएंगे तो इसमें हिंसा का पाप होगा। कुछ नहीं बताया यहां होगी या वहां होगी। जिस समय पर जहां होगी सामने आ जाएगा।

मैं निश्चिंतता से बैठा था। तीन दीक्षार्थी इधर, दो दीक्षार्थी उधर सब अलग-अलग हो गए। अब हो गए तो हो गए। क्या करेंगे, समय पर जो होना है होगा। मतलब चिंता करने में नहीं है। उसी बीच बारिश रुक गई और हम व्याख्यान स्थल जहां था, वहां पहुंचे। यहां तीन दीक्षार्थी थे वो तो साथ में थे ही और दो दीक्षार्थी वहां खड़े ही थे। फिर दीक्षा का कार्यक्रम पूरा हुआ। मांगलिक के बाद चरण स्पर्श चल रहा था। इतने में वर्षा वापस शुरू हो गई। इतनी वर्षा, इतनी वर्षा जो शाम को साढ़े तीन-चार बजे तक चलती रही। ऐसे में दीक्षा देने जा सकते हैं क्या? पानी में जाकर दीक्षा दी जा सकती है क्या? उसमें जीवों की हिंसा कितनी होगी? कैसे देंगे दीक्षा? जो अप्काय की हिंसा करके दीक्षा नहीं दे सकते क्या माइक में तेउकाय की हिंसा करके उन को उपदेश देना चाहिए? सच बात यही है कि उसने जो प्रतिज्ञा ग्रहण की है, उस प्रतिज्ञा का सचाई से पालन करे। गड़बड़ी नहीं करे।

मुनि माइक पर व्याख्यान दे तो उसकी वाहवाही होगी किंतु सबसे पहले उसको मर्यादा की ओर देखना चाहिए। उसको देखना चाहिए कि उसकी मर्यादा क्या है? साधु की मर्यादा क्या है? वह साधु की मर्यादा छोड़कर कार्य नहीं करे। भगवान् की आज्ञा जिसमें है, उसी पर हमारे कदम आगे बढ़ने चाहिए। भगवान् की आज्ञा के विपरीत कोई कार्य नहीं होना चाहिए। एक बात और बोलने वाले थोड़ी देर के लिए बोल भी देते हैं। किंतु सुनने वाले जितना इतमीनान से बिना माइक के सुनते हैं, उतना माइक से नहीं सुनते हैं। माइक

चलता रहता है लोग पीछे बातें करते रहते हैं। जब माइक नहीं लगा होता है, बोलने वाला बिना माइक के बोलता है तो सभी एकाग्र भाव से सुनने की कोशिश करते हैं। माइक के बिना लोग पीछे बातें नहीं करते हैं। जिसको सुनना होता है, वह सुन लेता है और जिसको सुनना नहीं होता है उसको यही लगता है कि समझ में नहीं पड़ रहा है। अरे! समझ पड़ेगी कैसे?

एक विद्यार्थी क्लास के समय के 20 मिनट के बाद पहुंचता है। सामान्यतः उसको प्रवेश नहीं देते हैं। मान लो प्रवेश दे दिया। प्रोफेसर किसी विषय पर बता रहा है। अब 20 मिनट पहले जो विषय चल रहा था, उसे तो समझा नहीं। 20 मिनट पहले की बात वहां नहीं रहने से नहीं समझ पाया और आगे जो विषय चल रहा है, उसे इसलिए नहीं समझ पाया कि उससे संबंधित पहले की बात नहीं समझ पाया है। व्याख्यान में आने का समय कौन-सा है? गांव वालों का तो समझ में आता है। घर का काम होता है फिर बच्चों को स्कूल भेजना होता है। किंतु बाहर के दर्शनार्थी साढ़े आठ बजे के टाइम में भी नौ क्यों बजा देते हैं? खाना उनको बनाना नहीं है। नाश्ता बनाना नहीं है। करना क्या है उनको? पानी भी नहीं लाना पड़ रहा है। वहां पर पानी का कैंपर लगाने वाले होते हैं। वे प्रमाद में, इधर-उधर की बातों में लगे होते हैं। कहते हैं कि अभी तो टाइम है। होते-होते कितना टाइम निकल गया?

'बासी बात बतासी, तीनों विद्या नाशी।' यह एक पंडित जी की बात है, जो कई बार विद्यार्थियों के सामने कहा करते थे कि बासी भोजन, बात और वायु की बीमारी विद्या का नाश करने वाली होती है। ज्यादा बात करने वाला विद्या का नाश करने वाला होता है और वायु की बीमारी, वह कइयों को हो गई। वायु हो गई माथे में जड़ता आ गई। उससे ज्ञान ग्रहण नहीं हो रहा है। विद्या ग्रहण नहीं हो रही है। न तो स्वाध्याय हो रहा है और न ही कोई थोकड़ा याद हो रहा है। कुछ भी नहीं हो पाता है। इसी प्रकार से बासी भोजन के लिए कहा गया है। किंतु बासी भोजन के लिए भगवान् ने ऐसा नहीं कहा कि वह ज्ञानावरणीय का उदय कराने वाला होगा।

पंडित जी कहते हैं कि 'बासी बात बतासी, तीनों विद्या नाशी' बासी भोजन, बात और वायु तीनों चीजें विद्या का नाश कराने वाली हैं। इसलिए विद्यार्थी को मुखर नहीं होना चाहिए। ज्यादा बोलना नहीं। कम-से-कम बोलना। जितने में काम चल जाए, उतना ही बोलना। मेरे कहने का आशय

यह है कि हमारे दर्शनार्थी व्यर्थ की बातों में नहीं लगें। वे व्याख्यान में समय पर आएंगे तो व्याख्यान में कही गई बात उनके समझ में आएगी। यदि हम शुरू से बात सुनते हैं तो समझ में आयेगी क्योंकि एक बात से दूसरी बात जुड़ी होती है। पहले की बात नहीं सुनी तो आगे की बात समझ में कैसे आयेगी। पहले क्या विषय चला वह समझ में नहीं आया तो उसका संबंध कैसे जुड़ पाएगा? उसका संबंध जुड़ेगा नहीं तो उसके आगे वाला विषय समझ में आने वाला नहीं है। इसलिए सुनने की रुचि वाला शुरुआत से सुनना चालू करता है। शुरू से अंत तक पूरा सुनता है तब उसके समझ में आता है। वह चाहे आगे बैठे या पीछे बैठे! कहीं भी बैठे वह सुन लेगा। उस तक आवाज पहुंच जाएगी। जो केवल दिखावे के लिए आते हैं, सुनना उनका लक्ष्य ही नहीं है, वे कैसे सुन पायेंगे?

यदि सुनना चाहते हैं, समझना चाहते हैं उसके बावजूद यदि कोई विषय समझ में नहीं आए तो व्याख्यान के बाद या रात्रि ज्ञान चर्चा के समय, उस विषय को पूछ कर स्पष्ट कर सकते हैं। उस समय पूछ सकते हैं। समझ में नहीं आया तो कह सकते हैं कि मेरी समझ में यह बात नहीं आई।

दीक्षा की बात चल रही थी। यह स्पष्ट है कि मुनि अपनी मर्यादा का अतिक्रमण करके, मर्यादा तोड़कर किसी को उपदेश या दीक्षा नहीं दे सकता। उसको अपनी मर्यादा में रहकर उपदेश देना होता है। मर्यादा का अतिक्रमण करके उपदेश देना उसको नहीं कल्पता है। आप बोलोगे, कि महाराज! आपको जब बीमारी होती है तो आप उपचार करा लेते हो। घुटनों में दर्द होने पर ऑपरेशन कराते हैं तो उसमें भी जीवों की हिंसा हो जाती है फिर माइक से उपदेश देने में क्या फर्क पड़ता है? उपदेश क्यों नहीं दिया जा सकता।

दोनों चीजें बहुत अलग-अलग हैं। एक ओर संयम की रक्षा के लिए शरीर की रक्षा होती है। संयम की रक्षा के लिए उपचार किया जा रहा है। दूसरे में संयम की रक्षा नहीं है।

एक व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ चल रहा है और एक व्यक्ति वेश्या के साथ चल रहा है, दोनों में फर्क है। पत्नी के साथ चलना गलत नहीं माना जाता लेकिन वेश्या के साथ चलने वाला गलत माना जाता है। दोनों हैं तो औरतें ही। दोनों औरतें ही हैं, फिर भी फर्क पड़ गया या नहीं? विचारों में कितना फर्क है? एक पत्नी को लेकर जा रहा है और एक वेश्या को लेकर

जा रहा है। विचारों में फर्क है। वैसे ही शरीर का उपचार करने में फर्क यह कि उपचार में संयम रक्षा के भाव हैं और उपदेश नहीं देने से संयम को खतरा नहीं है। उससे संयम को खतरा नहीं हो जाएगा। इलाज नहीं होने से कभी प्राणों का उत्सर्ग होने का भाव आ सकता है।

इसके अलावा एक बात यह भी है कि जब तक सहन करने की क्षमता है, मुनि तब तक इलाज नहीं करावे। सहन करने की क्षमता नहीं रहे तो साधु आर्त ध्यान में नहीं जाए। आर्त ध्यान में कर्म बंधन होता है अतः शांत भाव से इलाज कराता है। इलाज के पश्चात् उसकी आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण करता है। ऐसा साधक उपदेश सुनाने के लिए माइक में बोलकर जीवों की हिंसा करेगा तो वह उसके लिए कदाचित् उचित नहीं है।

आचार्य देव ने माकूल समाधान दिया। यह प्रश्न आचार्य देव के समय बहुत बार आता था। आजकल कम हो गया है, क्योंकि लोगों ने पक्का मान लिया कि ये माइक में बोलने वाले हैं ही नहीं, तो क्या कहना। मैं उदासर में था। वहां पर किसी अजैन भाई को, माहेश्वरी भाई को आगे कर दिया। वह गर्मी का समय था। बहुत भयंकर गर्मी थी। ज्येष्ठ, वैशाख का समय था। उसने बोला, म.सा.! आपकी वाणी ऐसी है कि सुनते जाएं, सुनते जाएं। आप तो सहन कर लेते हैं गर्मी, किंतु हमारे लिए सहन करना मुश्किल हो जाता है। हम कैसे आपकी वाणी को सुनें? इस गर्मी को कम करने के लिए हम हमारे लिए पंखे लगा सकते हैं क्या? केवल हमारी बैठक तक।

उसने कहा कि आप हमारे लिए अनुमति दें ताकि हम उपयोग में ले सकें। मैं समझ गया कि वह क्या कहना चाह रहा है। मैंने सोचा कि इनसे ज्यादा अपने को चर्चा करने की जरूरत नहीं है। मैंने कहा कि जितनी सुविधा उपलब्ध है, उससे ज्यादा सुविधा देने की स्थिति में हम नहीं हैं। मतलब जो (पंडाल की) सुविधा मिली है उससे ज्यादा सुविधा मिलने वाली नहीं है। वह भाई समझ गया। फिर वह स्वयं बोला कि यह बात मैंने आचार्य श्री नानालाल जी महाराज से भी उदासर में पूछी थी। उन्होंने भी इसी प्रकार का जवाब देकर समझाया था। मैं समझ गया कि ये माइक में बोलने वाले नहीं हैं और लाइट-पंखे लगाने की इजाजत मिलने वाली नहीं है। फिर वह बोला, महाराज! मैं तो यही बात आपके मुंह से सुनना चाहता था कि आप भी मक्कम हैं या नहीं है। वह पहले क्या पूछा था और अब क्या बोल रहा है? मैंने कहा, कोई बात नहीं। अब हो गया मालूम कि हम उनके लिए तैयार

होने वाले नहीं हैं। बन्धुओ! साधु आत्मा के हित के लिए, अपनी आत्मा को शुद्ध करने के प्रयोजन से मुनि बना है। वह हिंसा करके पाप कर्म का बंध क्यों करे?

जम्बू कुमार की कथा में हम सुनते हैं, पढ़ते हैं कि उनकी धर्मपत्नियां एक के बाद एक अपने-अपने तर्क, अपनी-अपनी भावना प्रस्तुत करती जा रही थी। इसी दौरान, एक घटना या दुर्घटना जो भी समझें, घटित होती है। प्रभव चोर, जम्बू कुमार के घर में पहुंचता है।

राजगृही में प्रभव के नाम से लोग कांपते थे। कर्नाटक का कौन था जिसके डर से, भय से लोग कांपते थे? वीरप्पन था। श्रीलंका में कौन था? और ओसामा बिन लादेन का नाम आपने सुना होगा। जैसे इनका आतंक था, इनके नाम से आदमी कांपने लग जाता था, इनके नाम से घबराहट हो जाती, लोग दुकानों के शटर गिराने लग जाते, वैसा ही खौफ था प्रभव चोर का। सामने आ जाए तो लोग भाग जाएं।

मजे की बात यह है कि राजगृही की पुलिस के सामने कितने ही ऐसे हादसे हो चुके किंतु राजगृही की पुलिस उस आतंकी को पकड़ने में समर्थ नहीं हो पाई। उसे पकड़ने की कितनी ही कोशिश की गई, उस पर कितने ही रुपये इनाम भी रखे गए कि कोई पकड़े उसको इनाम दिया जाएगा किंतु कोई माई का लाल उसे पकड़ने में समर्थ नहीं हो सका। वह दुस्साहसी था। उसके पास ऐसी विद्याएं थी कि कोई उसको पकड़ने में समर्थ नहीं हो पा रहा था। उसकी कारगुजारियां सुनकर लोग दंग रह जाते। विद्या बल से वह ताला तोड़ा करता था। उसके पास दो विद्याएं थीं।

एक विद्या ऐसी थी जिसमें छूमंतर कहते ही ताला टूट जाता। ताला खुल जाता चाहे कैसा भी ताला हो। किसी भी कंपनी का हो—गोदरेज, टाटा, बिड़ला। किस-किस कंपनी के ताले होते हैं मुझे पता नहीं है। सिर्फ एक गोदरेज कंपनी का ताला सुना है। कैसा भी ताला हो उसके विद्या बल के सामने टिकने वाला नहीं होता।

एक दूसरी विद्या भी थी उसके पास। उसमें उच्चारण करने पर सारे लोग सो जाते थे। जब वह उसका उच्चारण करता तो लोग वहीं पर नींद के खर्राटे भरने लग जाते थे। चाहे चौकीदार हो या सिपाही, सभी सो जाते। जब वह माल को समेटकर, चोरी का सामान भरकर अपनी विद्या को समेटता उसके

बाद लोग बोलते, सावधान! अरे भाई! अब सावधान-सावधान से क्या होगा? जो होना था वह हो गया। अब क्या मतलब सावधान करने से। ऐसा दुस्साहसी वह था। उसकी कारगुजारियां सुनकर लोग दंग रह जाते थे।

राजगृही में वह प्रभव चोर घुसा। प्रभव चोर के साथ पांच सौ और लोग, जम्बू कुमार जी के घर में पहुंच गए। वहां क्या करना था? वह जान रहा था कि जम्बू के घर में आज शादी के साथ बहुत सारा दहेज और माल पड़ा है। उसको पता था कि आज जम्बू की शादी 8 कन्याओं के साथ हुई है। सभी कन्याएं भरे-पूरे परिवारों की है। ऐसी कन्याओं के साथ बहुत सारा दहेज आया है। ये बातें छिपती नहीं हैं। बहुत जल्दी पता चल जाती हैं। यहां-वहां चर्चा हो रही थी कि जम्बू कुमार को 99 करोड़ का दहेज मिला है।

प्रभव चोर पांच सौ चोरों को लेकर, साथ में अस्त्र-शस्त्र ले वहां पहुंचा। वहां पहुंचते ही उसने दोनों विद्याओं का प्रयोग कर लिया और भीतर घुसा। भीतर घुसा तो देखा सारा माल खुला ही पड़ा था—न कमरे में रखा था और न ही अलमारियों में रखा था, बाहर ही पड़ा था। उन्होंने देखा, आज बड़ा सौभाग्य है। आज घर में घुसने में न कठिनाई आई न तिजोरियों और अलमारियों के ताले तोड़ने की ही जरूरत पड़ी। सारा धन, सारा माल बाहर ही पड़ा है। वह बोला, साथियो! आज हमारा सौभाग्य है। सभी अपनी-अपनी गांठें बांध लो और जिसको जैसा हाथ लगे, सब ले लो। पांच सौ चोरों ने गांठें बांधनी शुरू कर दी। धन-माल की गांठें बांध ली। सबकी आंखों में चमक थी कि आज तो रामजी, भैरूजी, माता जी राजी हो गए हमारे ऊपर।

भगवान् किस पर राजी होते हैं? किस पर राजी होते हैं रामजी? माताजी और भैरूजी किस पर राजी होते हैं? अपराध करने वाले पर, डाका डालने वाले पर राजी होते हैं क्या? हे माता! आज यह हो गया तो मैं तुम्हें नारियल चढ़ाऊंगा। यदि माताजी उसके काम में सहयोग दें तो उसमें परसेंटेज बंध जाएगा कि माताजी का इतना हिस्सा। अभी तक तो यह भी सुना था कि लोग पुलिस वालों से हफ्ता बांधते हैं। उनका प्रतिशत बंधा हुआ है। उनका हिस्सा बंधा हुआ है।

यदि देवी-देवता भी सहयोगी बनने लगे तो वे भी परसेंटेज लेने वाले हो जाएंगे। उनका भी शेयर हो गया या नहीं हो गया? पर ध्यान रखें—ऐसे कार्य में कोई माताजी, कोई भैरूजी, कोई भवानी जी सहयोग नहीं देते हैं। किंतु

लोग कहते हैं कि आज माताजी के प्रताप से यह कार्य हो गया। आज तो भैरूजी राजी हो गए ?

पांच सौ चोरों ने धन-माल की गांठें बांध ली और कहा कि चलो, अब हम चलते हैं। ये बात ऊपर में रह रहे जम्बू कुमार बहुत अच्छी तरह से समझ रहे थे। उनकी खुसुरफुसुर सुनकर समझ गए कि क्या हो रहा है? वे समझ रहे थे यह सारा धन और माल धूल के समान है। चला जाय कोई फर्क नहीं है। सारा पुद्गल के रूप में है। किंतु लोगों में अफवाह नहीं हो इसलिए उनके मन में सिर्फ इतना-सा विचार आया कि यह धन आज की रात नहीं जाए तो अच्छा है। इतना-सा विचार आने से ऐसा हुआ कि चोरों के पैर जमीन से चिपक गए।

ऐसा घटनाक्रम बना कि उन चोरों के पैर चिपक गए। वे लोग आपस में कहने लगे कि हम आगे चलना चाहते हैं किंतु पैर जमीन से चिपक गए हैं। उनसे चलना होता ही नहीं है। यह बात सुनकर प्रभव चोर घबरा गया। पांच सौ के पैर चिपक गए। भला यह क्या बात हो गई? क्या होगा? मैं विद्या का जानकार हूं। ताला तोड़ने और नींद में सुलाने की विद्या का तो मैं जानकार हूं किंतु स्तंभित करने वाली विद्या मुझे मालूम नहीं। किसी के पैर कैसे स्तंभित करते हैं, कैसे चिपकाते हैं, यह मैं नहीं कर पाता हूं।

उसके मन में भय छा गया कि यह नई विपत्ति कहाँ से आ गई। दिन उग गया तो सारे लोग रंगे हाथ पकड़े जाएंगे। यह सोचकर उसकी हालत खराब हो रही थी। केवल प्रभव चोर के पैर नहीं चिपके थे, बाकी सबके पैर चिपक गए। प्रभव चोर ने कोई गांठ नहीं बांधी थी, बाकी सब ने गांठें बांधी थी। यह बता रहा है कि जो परिग्रह को धारण करता है, वह चिपक जाता है। जो परिग्रह के ममत्व को धारण करता है वह संसार में चिपका रहता है। जो उस परिग्रह में युक्त नहीं है उसके पैर नहीं चिपकते। जैसे प्रभव के पैर नहीं चिपके, वैसे ही संसार में जो परिग्रह को धारण करके नहीं चलता है– परिग्रह से विरत है, ममत्व का भाव नहीं रखता है वह संसार में नहीं चिपकता है।

प्रभव ने सोचा कि यह क्या हो गया? उसने इधर-उधर निगाह डाली तो देखा दीवार से खुसुरफुसुर की आवाज आ रही है। प्रभव चोर सोच रहा है कि मेरी विद्या का प्रभाव नहीं हो रहा है। गुनगुनाहट की आवाज कैसी आ रही है? हो सकता है कोई मेरे से ज्यादा विद्याधर होगा। मैं उससे विद्या लेने की कोशिश करूं। प्रभव धीरे-धीरे पैरों को रखते हुए, पैरों की आवाज नहीं

हो जाए, मालूम नहीं पड़ जाए, पैरों की आहट सुनाई न दे इस प्रकार से कदम बढ़ाता है। वह एकदम से जम्बू कुमार के शयन कक्ष में पहुंच गया। उसे देखकर सारी पत्नियां एक किनारे हो गईं। वे एक किनारे बैठ गईं या खड़ी रह गईं। वहां का दृश्य देखकर प्रभव चोर अचंभित हो गया कि यह मृत्यु लोक है या देवलोक? वह समझ नहीं पाया।

वह जम्बू कुमार के रूप को देखने लगा। उसकी पत्नियों के रूप को देखने लगा। वह सोचने लगा यह रूप है या माया जाल? एक से बढ़कर एक लाजवाब अप्सराएं। प्रभव चोर, जम्बू कुमार से कहता है, कि कुमार! मैंने आज तक कभी भी जीवन में हार नहीं पाई है। मैंने बहुत सारे अद्भुत कार्य किए हैं। बहुत सारे साहसपूर्ण कार्य किए हैं किंतु आज तक पुलिसमैन या कोई खुफिया वाला मुझे पकड़ने में समर्थ नहीं हो पाया है। मेरा बाल भी बांका नहीं कर पाया। हर बार मैंने विजयश्री पायी है। बड़ी-बड़ी विजय हासिल की किंतु तुम्हारे घर में आकर मैं हार गया। मैं अपनी हार को स्वीकार करता हूं। तुमने हमारे ऊपर किसी शस्त्र का प्रयोग नहीं किया किंतु जिस मंत्र का प्रयोग किया है उससे हम वंचित नहीं रह पाए। मेरे साथी न तो हिल सकते हैं, न चल सकते हैं। मैं अंतःकरण से तुम्हारा जितना भी सम्मान करूं, कम है। मैं आज से प्रतिज्ञा लेता हूं कि अब चोरी नहीं करूंगा। मैं तुमसे एक बात और कहना चाहता हूं कि मेरी दोनों विद्या तुम ले लो। ताला तोड़ने की विद्या और लोगों को सुलाने की विद्या तुम ले लो और तुम्हारी एक यह स्तंभित करने की विद्या, किसी के पैर को चिपकाने की विद्या मुझे दे दो।

क्या दीक्षार्थी को ऐसी विद्याएं ग्रहण करनी चाहिए। कोई दीक्षार्थी सोचे कि इनसे कई लोगों को प्रभावित किया जा सकता है। धर्म का फैलाव किया जा सकता है अतः विद्याएं ले लेता हूं। पर नहीं, साधु चमत्कार बताने वाला नहीं होता। यदि वह वैसा होगा तो बहुरुपिया हो जाएगा। बहुरुपिये के रूप भिन्न-भिन्न होते हैं। साधु का एक रूप होता है। साधु को रूप वाला ही बने रहना चाहिए। उसे बहुरुपिया बनने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए और न वह बने। इसी में सबका हित है। अन्यथा वह भी शस्त्र बन जाएगा।

09 अगस्त, 2019

8

बाराती नहीं दूल्हा बनें

आगमों के हार्द, निष्कर्ष, निचोड़ पर हम विचार करें और अनुभव करें तो वह है– समाधि। समाधि बहुत मूल्यवान चीज है। वह हमारी निजी है। हम उसके मालिक हैं। समाधि कहीं बाहर से नहीं आएगी। वह हमारे भीतर है, किंतु बाह्य परिवेश में रहते हुए हम अपने आप को असमाधि में ले जाने वाले हो जाते हैं।

आगमकारों की दृष्टि बहुत स्पष्ट रही है। उन्होंने कोई आग्रह नहीं रखा कि तुम्हें तपस्या ही करनी है। तुम्हें ऐसा ही करना है। तुम्हें वैसा ही करना है। समाधि सबसे पहली चीज है। खाने से यदि समाधि रहती है तो खाओ। एक बार से काम नहीं चलता हो तो दो बार खाओ। कोई दिक्कत नहीं है। दो बार से भी काम नहीं चलता है तो तीन बार ले सकते हो किंतु मन में आर्त भाव नहीं आना चाहिए। यदि तपस्या में चित्त रमा हुआ है और समाधि मिलती है तो तप करो।

यदि सेवा और साधना में समाधि मिल रही है तो उस कार्य को संपादित करो। कुल मिलाकर शास्त्रकारों ने समाधि को मूल्यवान माना है। हमारी सारी क्रियाओं का लक्ष्य समाधि को प्राप्त करने का होना चाहिए। जब समाधि को मूल्यवान माना गया है हमें उसे पाने का प्रयत्न करना चाहिए। फिर समाधि से हटने का कारण क्या है? हम क्यों असमाधि में चले जाते हैं? आत्मा का स्वभाव समाधि है और हम असमाधि में जाते हैं तो निश्चित ही उसके कारण हैं। हमें उन कारणों की समीक्षा करनी चाहिए। उन कारणों पर विचार भी करें व उन्हें दूर करने का प्रयत्न भी।

इसका बहुत बड़ा कारण जो आंतरिक कारण है, वह है– मन और इंद्रियों का अनिग्रह। पांचों इंद्रियों के विषयों के प्रति अनुराग। जब पांचों

इंद्रिय विषयों के प्रति अनुराग होता है तो हमारा जीवन सापेक्ष बन जाता है। हमारे भीतर अपेक्षा जग जाती है। हमारे भीतर इच्छाओं का जागरण हो जाता है कि मुझे यह चाहिए, मुझे वह चाहिए। कभी-कभी लोग कहते हैं कि 'जहां चाह होती है, वहां राह मिलती है।' किंतु भगवान् ने कहा कि 'चाह को छोड़ो।' चाह के पीछे चलते रहोगे तो सच्ची राह नहीं मिलेगी संसार का सौन्दर्य भले ही मिल जाए। संसार की कठिनाइयां मिल जाएंगी किंतु सच्ची राह, चाह को छोड़ने से मिलेगी।

जब हमारा जीवन सापेक्ष हो जाता है! अपेक्षा सहित होता है तो असमाधि के बीजों का अंकुरण शुरू हो जाता है। वह अपेक्षा एक प्रकार की नहीं होती है। यदि हमने अपने मन का निग्रह नहीं किया है, अपनी इंद्रियों का निग्रह नहीं किया और वे अनिगृहीत हैं तो अनेक प्रकार की अपेक्षाएं हमारे भीतर जगेंगी और उन अपेक्षाओं के कारण हम दुःखी होते रहेंगे। 'अपेक्षा, असमाधि की जड़ है।' यह संक्लेश पैदा करने वाली है। चित्त को अशांत करने वाली है। किंतु इसके बिना भी आदमी को लगता है, हम जीएं कैसे?

साधु जीवन में एक बात जरूर है कि वहां सापेक्ष जीवन भी होता है किंतु सापेक्ष में निरपेक्ष बन जाना महत्त्व की बात है। कल्प और मर्यादा, कम-से-कम दो साधुओं व तीन साध्वियों की रही है तो वहां दूसरे की अपेक्षा भी कर रहे हैं। किंतु संयम की मर्यादा है, कल्प की मर्यादा है, भगवान् की आज्ञा है उसको आज्ञा रूप में स्वीकार करना है। तीन नहीं, तीन सौ के रहते हुए भी अपने आप को अकेला बना लेना बहुत बड़ी बात है। हजारों की भीड़ में स्वयं को शांत बनाए रखना बहुत बड़ी कला है। इस कला को हासिल किया जा सकता है। भीड़ बाहर खड़ी रहे, कोई दिक्कत नहीं। हमारा मन भीड़ से भरा हुआ नहीं हो। हमारा मन जब भीड़ से भरता है तो असमाधि में चला जाता है। ऐसे में कभी-कभी तो हालत किंकर्तव्यविमूढ़ होने की बन जाती है। क्या करूं, क्या नहीं करूं? सोचने लगता है। विचारों का लोड बढ़ जाता है और वह उस लोड को सहन करने में समर्थ नहीं हो पाता। इसलिए उसे यह प्रयत्न करना चाहिए कि असमाधि के जो भी कारण हैं, उन कारणों का निवारण किया जाए।

मैं पहले भी अंजना और पवन जी की बात बोल चुका हूं। पवन जी अंजना जी को शादी करके लाए। कई जगह 12 वर्ष लिखा है तो कहीं पर 22 वर्ष लिखा है। 12 या 22 जितने भी वर्ष रहे हों, पवन जी ने उस तरफ

रुख भी नहीं बनाया। इतने वर्षों तक अंजना जी की भयंकर उपेक्षा की, किंतु अंजना ने एक बार भी मन को विचलित नहीं किया। उनकी प्रसन्नता में, उसकी समाधि पर कोई असर नहीं हुआ। कभी भी उसने परेशानी का रोना नहीं रोया। कभी अपने पीहर सूचना नहीं भेजी कि मेरे साथ ऐसा बर्ताव हो रहा है। वह अपने में मस्ती ले आई। भले ही पति मुझे देखे या नहीं देखे, पति का रुख मेरी तरफ हो या नहीं हो मैं पति के घर में हूं– वह उससे संतुष्ट थी। उससे उसे उपेक्षा जैसा लग ही नहीं रहा था। यह मन की बात है। जो व्यक्ति ऐसी उपेक्षा सह लेता है उसको कोई दुःखी बना ही नहीं सकता।

हमारे साथ कभी ऐसा सुलूक होता हो तो हमें भी विचार करना चाहिए कि आग में जलकर सोना कुन्दन बनता है। स्वर्ण को आग में जितना तपाया जाता है, वह उतना ही निखरता है। सोना जलता है या निखरता है? आग की लपटों में सोना जलता नहीं बल्कि निखरता है। सोने के साथ खाद हो तो वह जल सकती है।

आप सोने के स्थान पर स्वयं को समझें। उपेक्षा को अग्नि के रूप में जानें। मैं समझता हूं कि अंजना जी ने यही विचार किया होगा। ऐसा ही विचार किया होगा। उसको विश्वास था कि जीत हमेशा सत्य की होती है। कभी परीक्षा भी होती है। परीक्षा में जो पराजित होता है वह सत्य को हस्तगत नहीं कर पाएगा। सत्य उससे दूर रह जाएगा।

परसों, 8 तारीख को बड़ौद में श्रीमती सरोज जी जैन ने संथारा स्वीकार किया। उनकी तबीयत ठीक नहीं थी। सतियां जी को सूचना मिली तो दर्शन देने पधारीं। सरोज जी ने सतियां जी से संथारे की भावना जताई। सरोज जी जैन ने कहा, कि महासतीजी! मैं संथारा लेना चाहती हूं। उनकी उम्र 72 वर्ष थी। परिवार वाले मौजूद थे। परिवार वाले स्वयं संथारे के लिए उनको स्थानक में लेकर आए। उन्होंने सोचा कि स्थानक में संथारा लेना ठीक रहेगा। वहां पर चारित्रात्माओं का सान्निध्य मिलेगा। ज्ञान-ध्यान सुनने को मिलेगा।

मुझे समाचार मिला कि उनकी भावना दीक्षा की है। परिवार वाले भी तैयार हैं। मैंने बताया कि उम्र कितनी भी हो, आदमी एक दिन जीता है। एक घंटे जीता है और सौ साल भी जीता है। आप (सतियाँ) तीन ठाणे से हैं, यदि सेवा में आपकी पूरी प्रतिबद्धता है, संभालने की पूरी प्रतिबद्धता है, क्योंकि संथारे में गृहस्थ भी संभाल सकते हैं किंतु दीक्षा लेने के बाद तो

साधुओं की जवाबदारी होती है। वे जवाबदारी का निर्वाह करने के लिए तैयार हैं तो दीक्षा देने में बाधा नहीं है। कल दोपहर डेढ़ से दो बजे के बीज दीक्षा का कार्यक्रम संपन्न हुआ था और पिछली रात्रि चार बजे के आस-पास उनका संथारा सीझ गया।

साधु एक दिन का है या सौ वर्ष का, यह मायने नहीं रखता है। एक घंटे के साधु जीवन की पूरे जीवन पर्यन्त के श्रावक जीवन से तुलना करें तो एक घंटे का साधु जीवन भारी पड़ेगा। जिंदगी भर श्रावक जीवन का पालन किया और एक घंटे साधु जीवन की पालना की तो वह महत्त्वपूर्ण बन जाएगा। महासती सुयोगयशा जी ने 14 घंटे का संयमी जीवन जीया। आठ तारीख को लगभग नौ बजे के आस-पास उनको संथारा करवाया गया था, जो लगभग 43 घंटे का बना।

समाधिमरण तब होता है जब हमारा जीवन समाधि में चलता रहे और संथारा तब सार्थक होता है जब हमारी सारी अपेक्षाएं गौण हो जाएं। किसी प्रकार की कोई अपेक्षा हमारी रहे ही नहीं। निःस्पृहता हमारे भीतर आ जाएगी। निष्कामता हमारे भीतर आ जाएगी तो ही संथारा सार्थक होता है, अन्यथा जबरन पच्चक्खाना, संथारा स्वीकार कराना, संलेखना कराना काम नहीं आता। यदि समाधि को छोड़कर हम असमाधि में जाते हैं तो यह हमारे मन की कमजोरी है। यदि व्यक्ति प्रयत्नशील रहे तो हर हालत में स्वयं को प्रसन्न रख सकता है। मेरे खयाल से बहुत-से लोग ये मानेंगे, कि ये बहुत ऊंची बातें हैं। ऐसे जीना आसान नहीं है। आसान कौन कह रहा है? कायरों के लिए एक कदम बढ़ाना भी आसान नहीं है और शूरवीरों के लिए हिमालय को लांघ जाना भी आसान है। है या नहीं है? (प्रत्युत्तर– आसान है।)

इतिहास शूरवीरों का लिखा जाता है, कायरों का नहीं। इतिहास कांच के गोलों का नहीं लिखा जाता है। हरिश्चंद्र राजा, मर्यादा पुरुषोत्तम राम का इतिहास हमारे सामने है। उनके बीच में हजारों-लाखों राजा लोग हुए होंगे, वे सारे गुमनामी में खो गए। राम के वंशज कितने हुए होंगे, आज उतने राजाओं की हमें जानकारी नहीं है। कौन किसको याद रखता है? सब चीजें लाइन के पीछे खिंचती चली जाती हैं। किसी को कोई लेना देना नहीं है। कुछ ऐसे वीर होते हैं जो वीरता के कारण अपने पद-चिह्न अंकित कर जाते हैं। वे पद-चिह्न हजारों वर्षों तक मिटाने पर मिट नहीं पाते हैं। कोई कितना भी मिटाना चाहे वे नहीं मिट पाते हैं। अमिट हो जाते हैं।

आचार्य पूज्य गुरुदेव का स्मरण हम किसलिए कर रहे हैं? वीरों में वीर और भगवान् महावीर द्वारा प्रशंसित वीर थे। **एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए** जो अपनी बंधी हुई आत्मा को, बंधी हुई चेतना को मुक्त करने का प्रयत्न करता है, उसको मुक्ति दिलाने का प्रयास करता है, पुरुषार्थ करता है, वह वीर प्रशंसित है। भगवान् ने यह नहीं कहा कि अनुच्छेद 370 खत्म करने पर वीर है। किसी राष्ट्र को जीत लेने वाला वीर है। भगवान् ने ये नहीं कहा कि हजारों लोगों को जीतने वाला वीर योद्धा है। जीवन संग्राम का वीर वह है जो चेतना को मुक्त करने वाला होता है। वह सचमुच में वीर है। प्रवाह में चलने वाले बहुत होते हैं। ऐसे लोगों की जिंदगी राग-द्वेष, कषाय, विषय वासना के प्रवाह में बीत जाती है। इसलिए प्रवाह में नहीं चलकर प्रतिश्रोतगामी बनना है। प्रवाह से विपरीत दिशा में चलना है। गंगा बहती हुई समुद्र में जा रही है। उसका पानी समुद्र में जाता रहेगा किंतु गंगा को कोई लौटाकर हिमालय पर ले आवे तो वह वीर! गंगा का पानी समुद्र में जा रहा है, वह तो जा ही रहा है, उसमें क्या कोई धक्का लगाने की जरूरत है? उसमें कुछ करने की जरूरत नहीं है। यदि समुद्र तक ले जाने में कुछ किया तो भी कोई बात नहीं है किंतु यदि हिम्मत है तो वापस गंगा को हिमालय पहुंचा दो।

साधना का मार्ग, समाधि का मार्ग, संयम का मार्ग– उस गंगा को हिमालय तक पहुंचाने का प्रयत्न है। प्रतिक्रमण का क्या मतलब होता है? यदि हमने अतिक्रमण नहीं किया है तो प्रतिक्रमण की जरूरत नहीं है। हमने अतिक्रमण किया है। आत्म भावों से बाहर निकले हैं तो प्रतिक्रमण के भावों से उसमें वापस लौटें। उन भावों को– अतिक्रमण के भावों को वापस लौटा दिया, मतलब गंगा को हिमालय पर पहुंचा दिया। हमने जितना अतिक्रमण किया उसे वापस खिसका कर अपने स्थान पर ले आना प्रतिक्रमण है। दुकान के सामने फुटपाथ होता है। बहुत से लोग दुकान के सामान से पूरा फुटपाथ घेर लेते हैं। शाम को वापस सामान समेटकर फुटपाथ खाली कर देते हैं। मतलब सारा प्रतिक्रमण हो गया। हम जितना विषय, वासना और कषायों में बाहर आए हैं उतना लौट जाना– सच्चा प्रतिक्रमण है। भाव प्रतिक्रमण है।

मुनिश्री हजारीमल जी ने इस भाव प्रतिक्रमण की बड़ी महिमा बताई है। भाव आवश्यक की महिमा–

आवश्यक कर-कर, कह्यो श्री जिनवर, अजर-अमर पद पाओ रे।
भवि भाव– आवश्यक अति सुखदाई रे।
भवि भाव– आवश्यक अति सुखदाई रे।

बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्वयं का स्वयं में आ जाना ही प्रतिक्रमण है। यही समाधि है। यही आत्मा-परिणति है। ये भाव जो ले आता है, वह वीरों में वीर है। शूरवीरों में शूरवीर है। वह स्वयं को जीने वाला वीर है। दूसरों पर विजय प्राप्त करके अपने जीवन से हारने वाले बहुत से लोग हैं किंतु अपने जीवन पर जीत हासिल करने वाले, अपने जीवन पर विजय का झंडा फहराने वाले विरल वीर होते हैं।

आचार्य पूज्य गुरुदेव ने अपने साधना काल में समाधि के बहुत सारे उपक्रम किए। मुझे अच्छी तरह से बात स्मृति में आ रही है। कुण्डेरा ग्राम की बात है। गुरुदेव जिस क्षेत्र में पधारते– पांच दिन, दस दिन, पंद्रह दिन रुकना होता। विहार से एक दिन पहले वे फरमाया करते थे कि आपस में मन-मुटाव, लड़ाई-झगड़ा हो तो मेरी झोली में डाल दो। हम चलते हैं, विचरण करते हैं, विहार करते हैं तो रास्ते में जहां पर भी उचित स्थान लगेगा हम वहां पर ये बोझ परठ देंगे। आपको दुःखी रहने की आवश्यकता नहीं है। आप खुशहाल जीवन जीयें और समाधि का जीवन जीयें।

गुरुदेव ने ऐसा फरमाया तो कान में किसी ने सूचना दे दी, कि महाराज! अमुक व्यक्ति का भाई से तनाव है। दोनों भाइयों में आपस में बोलचाल नहीं है। आचार्य श्री ने दोनों भाइयों से बात की। वे भाई बोले कि हम तो आपस में बोलते हैं, कोई दिक्कत है ही नहीं।

अधिकतर भाइयों में दिक्कत नहीं होती। लड़ाई-झगड़ा मूंछों के बल पर होता है या बिना मूंछ वाले का ज्यादा होता है। मूंछ का बाल कोई खींच तो ले! मूंछ है या नहीं है, किंतु लड़ाई-झगड़ा करने के लिए हमारे पास बहुत सारी मूंछें हैं। यहां तो ठीक है कि बहनों के ऊपर बात आ गई किंतु बहुत-सी जगहों पर ये बातें संभव हैं कि मूंछों की खींचा-तानी रहती है। मजे की बात है कि कोई मतलब की बात ही नहीं होती। पूरे पहाड़ को भी खोद डालो तो एक चूहिया मिलनी मुश्किल है। क्या है कारण लड़ाई-झगड़े का? कारण क्या है? बस मेरी रहनी चाहिए। सोच लेना कोई चीज किसी की कभी नहीं रही है। रावण भी बहुत ताव खाता था। ये समझ लेना चाहिए कि हमारे से भी ज्यादा

दुनिया में जोरावर लोग हैं। अपने आप को ही स्वयं-भू मत समझो कि मैं जो करूंगा, वही चलेगा। ऐसा विचार व्यक्ति यदि मन में सोचकर चलता है तो कभी-न-कभी ठोकर खाएगा। जो ठोकर खाने से पहले संभल जाए, वह देव है। जो ठोकर खाने के बाद संभल जाए, वह इनसान है और जो ठोकर खाने के बाद भी नहीं समझे? (प्रत्युत्तर– मूर्ख) मैं क्या कहूं, समझ लेना। ठोकर खाने के पहले संभल जाओ नहीं तो एक दिन बड़ी निराशा में जाना पड़ेगा। सोच लो नहीं तो एक दिन हालत ऐसी हो जाएगी कि बड़ी शर्मिन्दगी होगी।

आचार्य देव ने दोनों बहनों, देवरानी-जेठानी को बिठाया व उनके पति को भी बिठाया। दोनों को समझाया तो देवरानी बोली, कि म.सा.! छोटी-सी बात पर झगड़ा हो गया होगा। मैं क्षमा याचना करती हूं। मैं माफी मांगती हूं। आचार्य श्री ने कहा कि पचास प्रतिशत तो काम हो गया है, अब कितना बाकी है? (प्रत्युत्तर– पचास प्रतिशत होना बाकी है) यदि किसी काम में पचास नहीं एक प्रतिशत भी बाकी रह जाए तो गाड़ी अटक जाती है। निनानबे प्रतिशत काम हो गया किंतु एक प्रतिशत में दिक्कत आ गई तो वहां पर पूरी गाड़ी, पूरा काम अटक जाता है। एक छोटा-सा तार सारी बिजली गुल कर देता है। बिजली के मीटर में, फ्यूज का एक छोटा-सा तार होता है जो स्विच से जुड़ा होता है। वह छोटा-सा तार भी हम निकाल दें, निकालने की भी जरूरत नहीं, हवा से या किसी और कारण से वह थोड़ा-सा हिल जाए तो सारी बिजली गुल हो जाती है। वह छोटा-सा तार यदि हिल जाये, लूज हो जाए तो फिर क्या आगे बिजली का सर्किट बनेगा? पॉवर आगे चलेगा? नहीं। एक छोटे से तार में इतनी ताकत होती है। आचार्य श्री ने जेठानी से भी बात की। पास में उसका पति बैठा हुआ था। गुरुदेव ने बात की तो उस बहन ने कहा, कि म.सा.! आप कहो तो मैं बेला कर दूंगी, तेला कर दूंगी। आप कहो तो अठाई भी कर दूंगी किंतु देवरानी के मोढ़े नहीं चढ़ूं। घर में पहले दरवाजा होता है उसके बाद बाखल आती है। बाखल के बाद आंगन आता है। आंगन में जाने के लिए भी एक मोढ़ा होता है जो एक दरवाजा ही है। जेठानी बोलीं कि देवरानी के मोढ़े नहीं चढ़ूंगी। बेला, तेला यहां तक कि अठाई भी कर लूंगी।

'बेला करस्यां, तेला करस्यां और करां अठाई हो, मासखमण री मारे भावना।'

बेला कर लूंगी, तेला कर लूंगी, अठाई कर लूंगी और मासखमण भी कर लूंगी किंतु जो खूंटा गड़ा हुआ है वह खूंटा तो बना रहेगा।

यदि उस खूंटे से बंधे रहेंगे तो क्या हासिल होगा, बताओ? हमारे वैर का खूंटा गड़ा हुआ है, वह हमारे किसी काम नहीं आएगा। चाहे साधु बन जाओ या श्रावक, यदि उस खूंटे पर अटके रहो, उस गांठ पर अटक जाओगे तो आगे गति नहीं है। सुगति की कल्पना तो करना ही मत। ऐसे ही खूंटा अटका रहा तो सोचना भी मत कि कभी सुगति हो जाएगी। वैर हमारे भीतर बंधा हुआ है तो कोई भी स्थिति आ जाए, हमारी सुगति नहीं होगी।

लोगों को कहते सुना है कि भले सातवीं या आठवीं नरक में चला जाऊं पर उसको (अपने दुश्मन को) तो जिंदा नहीं छोड़ूंगा। उसको तो किसी भी हालत में नहीं छोड़ूंगा—इतना कहने के बाद भी वह सामायिक करता है! आठवीं नरक में जाने की तैयारी है और उसको छोड़ना नहीं है। ऐसे में वह सामायिक कहां काम आएगी? कहां जाएगी वह? सौ डिग्री पर तवा गर्म है और वहां पर पानी की कुछ बूंदें डालेंगे तो पानी खत्म हो जाएगा। वह पानी उस तवे को ठंडा करने वाला नहीं होगा। वैर की गांठ बंधी हुई है और आप धर्म का रस लेना चाहोगे तो धर्म का रस मिलने वाला नहीं है। ऐसे में समाधि की बात तो सपने में भी मत सोचना। ऐसे में केवल कागजों, पोथियों में समाधि होगी। किताबों को पढ़कर मन को राजी कर लेना।

समाधि ऐसे थोड़े ही मिलती है। समाधि के लिए क्या सोचा? यही सोचा कि गर्मी लगी तो ए.सी. में बैठ जाओ। ए.सी. रूम में बैठने से ठंडक मिल जाएगी। ए.सी. रूम को तैयार करने में कितनी मेहनत करनी पड़ी है? ए.सी. मशीन कैसे बनी, उसको कैसे रूम में लगाया? यह भी सोचो। बना बनाया रूम मिल गया तो ए.सी. चालू की और बैठ गए। लेकिन खाली ए.सी. चालू करके बैठने से मन राजी हो जाएगा? दरवाजे खुले पड़े हैं और स्विच ऑन कर सोचा कि ठंडक मिल जाएगी तो ऐसा नहीं होगा।

यदि ठंडक चाहते हो तो दरवाजा भी बंद करना पड़ेगा। इसी प्रकार जब तक हमारी चाह के, अपेक्षा के और लड़ाई-झगड़े के दरवाजे बंद नहीं होंगे, तब तक हम भले ही स्विच ऑन कर दें, भले ही कितनी ही ठंडक चाहें, समाधि रूपी ठंडक मिलेगी नहीं। ए.सी. रूम में एक पंखा भी लगा होता है और वह चलता है। वह क्या काम आता है? वह भीतर की गर्म हवा को बाहर फेंकता है और बाहर की गर्म हवा को भीतर आने नहीं देता है। वैसे ही हमारे भीतर ऐसे शुभ अध्यवसाय का पंखा होना चाहिए कि हमारे भीतर में गर्म हवा भरी हुई हो तो वह उसको बाहर फेंकेगा। इतनी तैयारी होगी तो हम

समाधि का अनुभव कर सकते हैं। वह ए.सी. रूम की ठंडक, समाधि की ठंडक, समाधि की शीतलता हमें प्राप्त हो सकती है। अन्यथा इतना आसान काम नहीं है कि मुझे ए.सी. की ठंडक मिल जाए। समाधि की शीतलता मिल जाए!

आचार्य देव ने उस बहन की बात सुनकर कहा कि बहन! तुम कितनी भी तपस्या कर लोगी किंतु जब तक ये गांठ नहीं खुलेगी, तब तक यह तपस्या किसी काम की नहीं है। तुम आराधक नहीं बन सकोगी। आचार्य देव ने अपने तरीके से समझाया तो वह बहन राजी हो गई। देवरानी-जेठानी और भाई-भाई का झगड़ा मिट गया। झगड़ा तो मिट जाता है किंतु एक अवरोध, थोड़ी झिझक रह जाती है। यदि बार-बार मिलना-जुलना हो तो वह झिझक भी दूर हो जाती है। रस्सी जल जाती है किंतु उस रस्सी में जो गांठें होती हैं, जो बट होता है, वह नहीं जलता है। वह वैसे ही रहता है। उसी तरह लड़ाई-झगड़े भले ही मिट जाएं लेकिन थोड़ी झिझक, थोड़े बट रह जाते हैं।

इन गांठों को खोलना पड़ेगा। ये गांठें ही जहर की पोटली हैं। यदि यह जहर की पोटली बनी रहेगी तो सुख-चैन कहां से मिलेगा? कहीं भी घूमकर आ जाओ, कहीं भी जाकर आ जाओ, सुख-चैन कहीं भी मिलने वाला नहीं है। समाधि मिलने वाली नहीं है। बहन समझ गई।

आचार्य देव का एक फॉर्मूला था कि आज से पहले, जब लड़ाई-झगड़ा नहीं हुआ, बातचीत नहीं हुई, तब जो प्रेम था, जो आपस में स्नेह-व्यवहार था, वही व्यवहार वापस चालू हो जाना चाहिए। बीच में जो भी अवरोध आए हैं, वे सारे मेरी झोली में डाल दो। उनको कोई भी वापस नहीं उठाएगा। आचार्य श्री ने प्रतिज्ञा करवाई और लोगों ने एक-दूसरे के घर में ले जाकर खाना-पीना करवाया तो झगड़ा अपने आप में हलका पड़ गया। बहुत हलका पड़ गया। जो कुछ बची हुई झिझक है, जो गांठ पड़ी हुई है वह भी एक-दो बार वापस घर में आने-जाने में निकल जाएगी।

धन के पीछे दौड़ने वाले प्रभव ने, पता नहीं कितनी हत्याएं की होंगी। कितनी मार-काट की होगी। कितनों का धन लाकर एकत्रित किया होगा। इतना सब करने के बाद भी उसको शांति नहीं थी— जंगलों में छुपकर रहना, चौकन्ना होकर रहना। थोड़ी-सी आहट होती कि देखो पुलिस तो नहीं आ रही है। कोई आरक्षी तो नहीं आ रहा है। हर समय आदमी चौकन्ना बना

रहता है। उसे शांति नहीं है। समाधि नहीं है। उसका चित्त आकुल-व्याकुल बना रहता।

प्रभव चोर, जम्बू कुमार से कहता है कि आप मेरी दोनों विद्याएं, ताला तोड़ने की और लोगों को सुलाने की मुझसे ले लो और अपनी एक विद्या मुझे दे दो। जम्बू कुमार कहते हैं कि प्रभव! मैंने तुम्हारा नाम तो बहुत बार सुना है किंतु तुमसे मिलना आज ही हो रहा है। प्रभव चोर से मिलते समय जम्बू को भय नहीं हुआ। यह प्रभव चोर है! यही है क्या जिसने बहुतों का धन लूटा है। कितनों के साथ मार-काट की है ऐसा कोई डर नहीं था जम्बू कुमार को। जब तक विषय वासना में चित्त लगा रहता है, तब तक मन भयभीत होता है। जब व्यक्ति विषय वासना, कषाय के अभिभूत नहीं हो, ये सब चित्त से दूर हो जाते हैं। फिर भय की कोई बात ही नहीं रहती और जिसने सभी आत्माओं को अपनी आत्मा के समान माना है, वह क्यों डरेगा? प्रभव से वे भय नहीं खा रहे थे। प्रभव से वे बात कर रहे हैं, कि भाई! तुम्हारा नाम तो बहुत सुना है किंतु मिलना आज ही हो रहा है। मैं कोई विद्या जानता नहीं हूं और न ही मुझे कोई विद्या सीखने की चाह है क्योंकि मेरी राह कुछ और है।

जम्बू ने कहा कि मैं तो सूर्योदय का इंतजार कर रहा हूं। सूर्योदय हुआ नहीं कि प्रातः सभी सांसारिक चीजों का त्याग करके मैं संयम जीवन की राह पकड़ने वाला हूं। जम्बू कुमार उस प्रभव चोर को देखकर नहीं चौंके। किंतु प्रभव, जम्बू कुमार की बात सुनकर चौंक गया कि क्या बोले? संयम की राह? प्रभव ने मन में सोचा कि यह क्या बात है। मैं जिस धन के पीछे पड़ा हूं, मैं जिस धन को पाने के लिए मेहनत कर रहा हूं ये जम्बू कुमार उसी धन को छोड़ने की बात कह रहा है। इतना धन पाना आसान नहीं है, फिर भी स्वयं ही इतने धन का त्याग करने के लिए तत्पर है। ये कैसी उत्तम बात है! ये कैसे श्रेष्ठ विचार हैं!

वह विचार करने लगा। वह सोचने लगा कि नीच आदमी धन के लिए, नीच काम करने के लिए, मार-काट करने के लिए क्या नहीं कर लेते हैं। वे लजाते नहीं हैं और ऐसे-ऐसे कार्य कर लेते हैं, जो निंदनीय होते हैं। जो दूसरों को बड़ी पीड़ा देने वाले होते हैं फिर भी आदमी बिना लज्जा किए ऐसे-ऐसे कार्य कर लेता है। वह सोचता है कि धन्य है जम्बू कुमार! धन्य है, इसके त्याग को। धन्य है, इसके वैराग को।

धन की बात तो फिर जाने भी दो। ऐसी रमणियों का त्याग! ऐसी पत्नियों का त्याग! एक से बढ़कर एक रूप, सौन्दर्यवान कन्याएं हैं और ये इनको त्यागने की बात कर रहा है? यहां किसी के साठ निकल जाए, किसी के सत्तर निकल जाए और किसी के अस्सी निकल जाए! गुरु महाराज कई बार फरमाते थे कि कुछ साठ वर्ष, सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष की उम्र के होते हैं उन्हें त्याग के लिए कहते हैं तो वे कहते हैं, कि म.सा.! अभी रुक जाओ। अभी समय नहीं है। और कोई-कोई तीस-पैंतीस वर्ष की उम्र में भी त्याग लेने के लिए तैयार रहते हैं। श्री अर्पित जी मरलेचा ने लगभग पैंतीस वर्ष की छोटी उम्र में ही ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार कर लिया। करने वाले के लिए कठिनाइयां कुछ भी नहीं हैं। मन माने तो सब राजी है। सब काम हो जाते हैं। मन ही डांवांडोल है। मन का अनिग्रह है तो लगता है कठिन है। लेकिन इंद्रियों का निग्रह नहीं किया तो शांति और समाधि मिलने वाली नहीं है।

प्रभव सोच रहा है कि साठ, सत्तर, अस्सी की उम्र के पुरुष भी डोलते रहते हैं। कैसे-कैसे काम करते रहते हैं। विषयों में डूबे रहते हैं किंतु उनका मन नहीं भरता। व्यक्ति का मन ऐसा होता है कि काम मिले या न मिले किंतु मन हर समय काम चाहता है। काम विष के समान है। काम मिल जाए तो भी वह आदमी को दुर्गति में ले जाने वाला होता है। और न मिले तो भी दिमाग में 24 घंटे काम की बात चलती रहती है। वह उसको नरक और पता नहीं कहां-कहां घुमाने वाली, ले जाने वाली होती है। इसलिए कहा जाता है कि काम विष से ज्यादा खतरनाक है। विष तो एक ही जिंदगी को नुकसान पहुंचाता है किंतु काम कितनी-कितनी जिन्दगियों को, कितने-कितने भवों को नष्ट करने वाला बन जाता है। ये आठों रमणियां, देवियों के समान लग रही हैं, फिर भी इस कुमार पर इन रमणियों का कोई असर नहीं पड़ रहा है। कोई भी विकार नहीं, कोई भी वैसा भाव उसमें नहीं है। यह शांत भाव से बैठा है।

प्रभव यद्यपि निर्दय था किंतु जम्बू कुमार को देखकर उसका निर्दय हृदय पिघल गया। गल गया। उसके भीतर के भाव बदल गए। उसके भीतर की अंतरवेदना जाग गयी।

परदेशी संगत से बदला, बदला रोहिणेय चोर।
अंगुलीमाल और वाल्मीकि भी, ये धुरन्धर चोर जी॥ जय-जय...।

नीतिकारों ने कहा है संसर्ग से दोष और गुण दोनों बढ़ते हैं। आदमी जैसी संगति में रहेगा वैसे उसके गुण और दोष होंगे। गुण-दोष में भी वृद्धि हो जाती है। संगत सही होनी चाहिए। संगत से रंगत बदलती है। पुराने लोग कहा करते थे कि 'कालिया कने गोरिया बैठे, रूप आवे या नहीं आवे, लक्खण तो आ ही जावे' आप लोगों ने टीवी पर रामायण देखी है। बच्चों ने भी देखी है। जैसे-जैसे घटनाक्रम आता गया, वैसा भाव बनता गया। बच्चों ने भी देखा। हनुमान 'जय श्री राम' बोलते हैं और जो एक्शन करते हैं तो बच्चे भी वही बोलते और करते हैं। इसके अलावा और कुछ देखेंगे तो वही सब करने की कोशिश करेंगे। जैसा देखा, वैसा भाव आ गया। कइयों ने देखा कि ऐसे धनुष चलाते हैं तो उन्होंने भी छोटा धनुष बना लिया और उसे चलाने की कोशिश करते हैं। फिर धनुष का बाण कहीं इधर-उधर चला गया तो उससे चोट भी लग जाती है। एक ऐसी घटना श्रुतिगत हुई कि बच्चों ने छोटी कमान बना उसमें छोटा-सा तीर लगा उसे छोड़ा। वह एक अन्य बच्चे की आंख के पास जा लगा। गनीमत थी कि आंख फूटी नहीं। आदमी जैसी संगत करेगा वैसा रंग उस पर लगेगा। इसलिए बच्चों को बंदूक या तलवार जैसी चीजें खिलौने के रूप में भी नहीं देनी चाहिए। बच्चे ने टीवी पर देखा कि बंदूक चलाते हैं और 'ढिशूम' करते हैं तो वह भी वैसे ही करता है– 'ढिशूम'। इससे उसमें क्या संस्कार आएंगे? उसमें हिंसा के संस्कार आएंगे या अहिंसा के संस्कार? करुणा के संस्कार आएंगे या निर्दयता के?

कई घरों में ऐसे खिलौने होते हैं जो हिंसक साधन के रूप में होते हैं। भले ही वे नकली होते हैं किंतु ये चीजें सही नहीं हैं। इससे उसको वैसे ही संस्कार आएंगे। हम यदि बच्चों को सही संस्कार देना चाहते हैं तो घर के वातावरण को सही बनाना होगा। हमें स्वयं भी सही होना होगा। अपने विचारों को ठीक बनाना पड़ेगा। हम नहीं सुधर रहे हैं तो बच्चे क्या सुधरेंगे? हम स्वयं सुधरने की स्थिति में नहीं है, तो बच्चों में सुधार आना संभव नहीं है। वे नहीं बदलेंगे।

प्रभव चोर का आचरण बदल गया। वह कहता है कि मैं एक चोर हूं। मैं अंगूठी देखता हूं तो उसको भी लेने की कोशिश करता हूं। मैं समझता था कि मैं जो कार्य कर रहा हूं वह शूरवीर ही कर सकते हैं। किंतु मैं गलत हूं, तुम्हारा काम बड़े शूरवीरों का है। संसार के समस्त भोगों का त्याग करना कोई साधारण काम नहीं है! प्रभव ने कहा, कुमार! मैं तुम्हारी बात को सुनकर

हैरान हूं। लोग लंबी उम्र में भी दीक्षा लेने से मना करते हैं और तुम इस जवानी में सब छोड़ने की बात कर रहे हो! लोग चालीस-पचास की उम्र में भी दूसरी शादी की बात कहते हैं, जबकि तुम चढ़ती जवानी में दीक्षा की बात कर रहे हो!

एक बार एक आदमी अपनी बेगम से बोला कि अगर तुम मरोगी तो मैं फिर से शादी कर लूंगा और मेरी साठ बेगम की गिनती पूरी हो जाएगी। मैं साठवीं बेगम बना लूंगा। बेगम ने कहा कि तुम तो साठवीं ही बनाओगे, मैंने तो पहले सत्तर बना लिए। यदि तुम मर जाओगे तो मैं इकहत्तर नहीं बहत्तरवां बना लूंगी। अब ऐसी स्थिति में क्या बात होगी, कैसी बात होगी? प्रभव क्या कह रहा है या अन्य कोई क्या कह रहा है महत्त्व उनके कथन का नहीं है। महत्त्व है—समाधि का। प्रभव भी जम्बू कुमार के सम्पर्क से अध्यात्म की ठण्डक पा लेता है। स्वयं में समाधि का अनुभव कर रहा है।

बंधुओ! हम विचार करें। हमने हजारों व्याख्यान सुने होंगे। पता नहीं कितने सुने? किंतु आगमों का सारभूत जो तत्त्व है, निचोड़ है उस समाधि को हस्तगत किया है या नहीं किया—यह विचार करना है। यदि समाधि हस्तगत नहीं हुई तो हम कितने भी व्याख्यान सुन लें, कितना भी कुछ कर लें। शुभ-पुण्य का उपार्जन कर लें समाधि हमें प्राप्त नहीं होगी। हम बाराती बनकर तो शादी में कितनी ही बार गए होंगे, एक बार क्या अनेक बार गए होंगे किंतु शादी तो एक बार ही की है। इसी प्रकार आप यहां पर बाराती बनकर आ रहे हो। किंतु समाधि से यदि शादी नहीं हुई है तो उसका कोई असर नहीं होगा।

अभी हम केवल बाराती बनकर जीमने के लिए आ रहे हैं। यानी केवल यहां सुनने के लिए आ रहे हैं। लेकिन केवल मात्र सुनें नहीं। बाराती बनकर ही नहीं आएं, दूल्हा बन कर समाधि से शादी करें। समाधि के मालिक बनें। समाधि और शांति को हस्तगत करें। ऐसा करेंगे तो हमारा जीवन धन्य बनेगा।

10 अगस्त, 2019

9

अवसर जानो– सफल करो

कुछ लोग इंतजार में खड़े रहते हैं और कुछ लोग इंतजार कराने वाले होते हैं। कुछ इंतजार में खड़े रहते हैं कि कब कोई मौका मिले, कब कोई मौका मिले और कुछ व्यक्ति अवसर को ढूंढ़ लेते हैं। वे अवसर का इंतजार नहीं करते। वे अवसर को अपने समीप उपस्थित कर लेते हैं।

जो लोग अवसर के इंतजार में नहीं रहते, वे अपने आपको सफल बना लेते हैं। ऐसे लोग ही सफल हो पाते हैं। इंतजार करने वाले ने जितना समय इंतजार में बिताया, उतने समय में वह बहुत कुछ करने में समर्थ हो सकता था। इसलिए व्यक्ति को कभी भी किसी का इंतजार नहीं करना चाहिए।

देखो, कोई विषय कहा जा रहा है तो वह तथ्य के आधार पर होता है। इसका मतलब यह नहीं है कि किसी का इंतजार किया ही नहीं जाए। ट्रेन में चढ़ना है। कोई चढ़ा या नहीं चढ़ा, परिवार वाले चढ़े या नहीं चढ़े इंतजार मत करो। खाना खाना है तो दूसरे ने खाया या नहीं खाया उसका इंतजार नहीं करना– ऐसी बात नहीं है।

मुझे अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की एक बात याद आ रही है। उनकी प्राइवेट सेक्रेटरी, निजी सचिव के साथ किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए मीटिंग आयोजित थी। जैसे ही समय हुआ, अब्राहम लिंकन ने अपना नाश्ता किया और उठने लगे। इतने में निजी सचिव आ गए और कहा कि सर! मैं आ गया हूं। अब्राहम लिंकन ने कहा कि समय पूरा हो गया है। उसने जवाब दिया कि मेरी घड़ी थोड़ी पीछे चल रही थी इसलिए मैं लेट हो गया।

इस संबंध में बताया गया है कि अब्राहम लिंकन बोलते हैं कि या तो तुम अपनी घड़ी बदल दो, नहीं तो मुझे अपना प्राइवेट सेक्रेटरी यानी निजी सचिव बदलना पड़ेगा। ये बताइए कि समय किसका इंतजार करता है कि मैं

थोड़ा रुक जाऊं। समय किसी का इंतजार नहीं करता है तो हम इंतजार में घड़ियां क्यों खोएं। हमारे सामने यदि अवसर उपस्थित है तो उससे चूकें नहीं। यदि अवसर उपस्थित नहीं है तो हमें अवसर उपस्थित करना चाहिए। हमें अवसर को ढूंढ़ना चाहिए क्योंकि सफल मुझे होना है। सफलता मुझे प्राप्त करनी है। जब मुझे सफल होना है तो उस प्रकार के कार्यों की तलाश भी मैं ही करूंगा।

एक छोटी-सी बात भी कह दूं। आचार्य पूज्य गुरुदेव इंदौर में विराज रहे थे। जहां तक मेरी स्मृति है, वे हॉस्पिटल में थे। उस समय महाराष्ट्र खानदेश से कुछ सदस्य उपस्थित हुए थे। सेंधवा, सिरपूर वहां पर मुनिश्री कन्हैयालाल जी म.सा. अस्वस्थ थे। उनको सेवा में संतों की आवश्यकता थी, इसलिए सदस्य उपस्थित हुए थे गुरुदेव के पास। कन्हैयालाल जी म.सा. का सांयोगिक संबंध हमारे संघ के साथ नहीं था। वे एकल विहारी थे। पूज्य श्री घासीलाल जी म.सा. के शिष्य के रूप में रहे थे। शारीरिक अनुकूलता की स्थिति नहीं थी। श्रावकों ने निवेदन किया कि उनकी सेवा में संतों की आवश्यकता है।

आचार्य देव ने तत्काल श्री संपत मुनिजी म.सा. को समाचार लिखवाए। श्रद्धेय श्री संपत मुनि जी म.सा., मुनिश्री कन्हैयालाल जी म.सा. की सेवा में पधार गए और अग्लान भाव से उनकी सेवा की। ऐसे प्रसंग कदाचित् आते हैं। सुंदर अवसर जब भी हमारे सामने उपस्थित हो, व्यक्ति को चाहिए कि वह उसका लाभ उठावे। जो व्यक्ति अवसर का लाभ उठा लेता है, उसके मन में बड़ी संतुष्टि होती है। अन्यथा समय निकल जाता है और बाद में कसक, पीड़ा रह जाती है। किंतु तब हाथ में कुछ नहीं रह पाता केवल पश्चात्ताप के। व्यक्ति मन में पीड़ित होता है कि अरे! उस समय उस अवसर का लाभ उठा लेता तो कितना अच्छा रहता! मैं अवसर से वंचित रह गया।

अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

अब पश्चात्ताप करने से कोई मतलब नहीं है। अब तो नए सिरे से नया कुछ करने की सोचो। बीते समय या जो पल बीत गए, उस पर समय गंवाने में कोई सार्थकता नहीं है। जो घटना घट गई है, उससे हमें सीख लेनी चाहिए। हमें कुछ शिक्षा लेनी चाहिए। सोचना चाहिए कि इससे अच्छा और क्या किया जा सकता था?

ऐसे प्रसंग हमारे सामने आ जाएं, हमारे आगे आ जाएं तो उस समय हमें क्या करना चाहिए? कई घटनाएं हमें शिक्षा देते हुए चली जाती हैं। शिक्षा ग्रहण करके उसका उपयोग यदि व्यक्ति द्वारा किया जाता है तो वस्तुतः वह अपने जन्म को, अपनी जिंदगी को सफल बनाने वाला हो सकता है। अन्यथा जिंदगी हर आदमी जी रहा है, पर वह एक प्रवाहपाती जिंदगी है। बस, जी रहे हैं। लेकिन ऐसे जीते रहने से जीने का जो आनन्द आना चाहिए, वह नहीं आ पाएगा। इसलिए हम अवसर को ढूंढ़ें। सफलता प्राप्त करनी है, अपना कॅरिअर बनाना है। अपनी योग्यता बढ़ानी है तो व्यक्ति को सदा अग्रसर रहना होगा।

एक चित्रकार एक बार चित्र बनाने में सफल होने के बाद दस साल तक चित्रांकन नहीं करे तो दस साल के बाद वह वैसा चित्र अंकित नहीं कर पाएगा। दूसरी तरफ जिसने दस साल तक प्रैक्टिस की है, निरंतर अभ्यास किया है, वह चित्रकार दस साल बाद जो चित्रांकन करेगा तो उसमें विशेष खूबियां होंगी। दस साल पहले जो चित्र बनाया था उससे वह चित्र विशेष होगा? निश्चित है कि जो दस साल तक निरंतर अभ्यास करता है उसके चित्र में कई खूबियां होंगी। उसका चित्र बहुत सारा सौन्दर्य लिए हुए होगा क्योंकि उसने अपनी योग्यता को बढ़ाया है। उसने अपनी क्षमता को बढ़ाया है।

हम सभी अपने सामर्थ्य को बढ़ाने में समर्थ हैं। हम सभी अपने सामर्थ्य को और बढ़ा सकते हैं, बशर्ते कि हम समय का इंतजार नहीं करें। किसी की मनुहार की अपेक्षा नहीं करें। कई लोग इस इंतजार में रह जाते हैं कि मुझे कोई कुछ कहे तो मैं करूं। उसको जिंदगी में कोई कहने वाला नहीं मिला तो उसका सामर्थ्य पंगु बना रह जाएगा। वह जीवन में विशेष नहीं कर पायेगा। एक गाड़ी बहुत कीमती होगी, बहुत तेज गति वाली होगी। बहुत कीमत लिए होगी किंतु वह चली नहीं, पड़ी रही। वह पड़ी रहे तो खटारा बन जायेगी।

एक घोड़ा खूब तेज दौड़ने वाला है। वह शुरू से ही गति करने वाला है किंतु अश्व चालक, घोड़े का पालन करने वाला, रक्षा करने वाला, उसकी सेवा करने वाला यदि साल-दो साल उस घोड़े पर ध्यान नहीं दे और फिर उस घोड़े को चलाना चाहे तो उस घोड़े की चाल कैसी रहेगी? पुराने लोगों ने बताया कि 'पान सड़े, घोड़ा अड़े, विद्या बिसर जाए, खीरा पर बाटी जले कहो चेला किस न्याय'? यह, किस कारण से हुआ कि घोड़ा अड़ गया! वह चल नहीं रहा है। पान सड़ गया और विद्या भूल गए। याद नहीं रही। तो शिष्य

ने कहा, कि गुरुदेव! फेरा नहीं। यदि घोड़े को फिराते रहते तो उसकी चाल नहीं अड़ती। घोड़ा जरूरत पड़ने पर ही काम करता है। किंतु यदि फिराया नहीं जाता है, चलाया नहीं जाता है तो उसकी चाल अड़ जाती है। पान को पनवाड़ी पलटता रहता है। यदि पान को पलटे नहीं, ज्यों-का-त्यों पड़ा रहे तो सारे पान सड़ जाएंगे। विद्या को भी बार-बार पढ़ें नहीं तो विद्या को भूल जाएंगे और रोटी को यदि तवे पर पलटो नहीं तो रोटी जल जाएगी। ये बड़ी शिक्षा देने वाले वाक्य हैं।

हमें अपनी शक्ति को अवरुद्ध करना है। गति को अवरुद्ध करना है। सामर्थ्य में अवरोध पैदा करना हो तो हमें किसी की मनुहार का इंतजार करना चाहिए। अन्यथा जो अवसर हमारे सामने हो, उस अवसर का भरपूर लाभ उठाना चाहिए और अपने व्यक्तित्व को निखारने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यक्तित्व को निखारने का मतलब है अपनी योग्यता को और आगे बढ़ाना। अयोग्य कोई नहीं होता है। अयोग्यता की बात दिमाग से निकाल ही देनी चाहिए। सारे लोग योग्य होते हैं। सारे पदार्थ योग्य होते हैं। एक श्लोक में बताया गया है कि ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जो औषधि के रूप में नहीं है। सारी वनस्पतियां औषध हैं। ये बात अलग है कि हम नहीं जानते कि कौन-सी औषधि किस काम में आने वाली है। किस बीमारी में काम आने वाली है। सारी की सारी वनस्पतियां औषधि के रूप में सेवनीय हैं। सेवन करने योग्य हैं।

इसी तरह सारे अक्षर मंत्र हैं। सारे अक्षर मंत्र हैं, किंतु मंत्र की शक्ति को जानना हमारे लिए जरूरी है। यदि हम नहीं जान पाते हैं तो हम उन शब्दों का, अक्षरों का सही उपयोग नहीं कर पाते हैं। हमें चाहिए कि हम हर अक्षर के अर्थ को जानें। उससे परिचित हो जाएं। उससे यदि हम परिचित हो जाते हैं, फिर उन अक्षरों की साधना करते हैं– उन अक्षरों का, उन शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वे शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हो जाएंगे। शब्द वे ही हैं किंतु उसके साथ हमारा संबंध जुड़ गया इसलिए शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हो गए। जमीन वही है किंतु हल जोतकर नरम बना ली गई, उर्वर बना ली गई। फिर उसमें बीज डाले गए तो अंकुरित होंगे। लहलहाएंगे। फसल देने वाले होंगे। मेरे खयाल से आप लोग अनुभूति वाले हैं और इस बात को जानते हैं कि जिस भूमि को जोतकर नरम नहीं बनाया गया, सरल नहीं बनाया, वैसे ही उसमें बीज डाल दिए गए तो कुछ बीज अंकुरित हो सकते हैं। कुछ बीज नष्ट हो सकते हैं।

किंतु जैसी फसल लहलहानी चाहिए, जैसी फसल आनी चाहिए वह नहीं आ सकती।

यही बात हमें यहां पर विचार करनी चाहिए कि सारी वनस्पतियां औषधियां हैं। किंतु हम नहीं जान पाते हैं इसलिए प्रयोग नहीं कर पाते। सारे अक्षर मंत्र हैं। किंतु उन अक्षरों की शक्ति, उन शब्दों की शक्ति को हम नहीं जानते हैं इसलिए प्रयोग कर नहीं पाते।

आप देखिए एक शब्द हमारे भीतर क्रोध पैदा करने वाला होता है। आक्रोश पैदा करने वाला हो जाता है। एक शब्द हमारी दोस्ती को तोड़ने वाला हो जाता है। एक शब्द पारिवारिक रिलेशन को समाप्त करने वाला हो जाता है और एक शब्द परिवार में प्रेम पैदा करने वाला हो जाता है। एक शब्द, शत्रु को भी मित्र बनाने वाला हो सकता है और एक शब्द मित्र को शत्रु बना देता है। बोलने-बोलने के लहजे में थोड़ा-सा यदि अंतर आ गया तो शत्रु को भी मित्र बना देगा।

लोग कोर्ट-कचहरी जाते हैं। न्यायालयों के चक्कर लगाते हैं और बयान होने तक वे चीजें ठंडी हो गई होती हैं। मौके पर जो लहजा था, जो बॉडी लैंग्वेज थी, वह बॉडी लैंग्वेज वहां पर नहीं आ सकती। और व्यक्ति स्वयं जैसा प्रकट कर सकता था, वैसा एक वकील प्रकट करने में समर्थ नहीं हो सकता। वहां न्याय मिल सकता है किंतु मेरे खयाल से वह अधूरा ही होगा।

नरेंद्र मोदी जिस जगह पैदा हुए, उन्हीं परिस्थितियों में, उसी मानसिकता में रहते तो शायद उनके भीतर कभी ये संकल्प पैदा नहीं होता। उनके भीतर ये भाव पैदा नहीं होते कि मुझे प्रधानमंत्री का चुनाव लड़ना चाहिए। मैं प्रधानमंत्री बनूंगा। हर कोई प्रधानमंत्री नहीं बन सकता है। प्रधानमंत्री कौन बन सकता है? (प्रत्युत्तर– हर कोई) हर कोई नहीं बन सकता। क्या सत्तरह साल का बच्चा चाहे कि मैं प्रधानमंत्री बन जाऊं तो वह बन सकता है? सत्तरह साल का बच्चा साधु तो बन सकता है किंतु प्रधानमंत्री बनना चाहे तो नहीं बन सकता। प्रधानमंत्री होने के लिए उम्र कितनी होनी चाहिए? पैंतीस वर्ष। पैंतीस वर्ष की उम्र है, भारत का नागरिक है, पागल नहीं है माइंड से, तो कोई भी व्यक्ति भारत का प्रधानमंत्री बन सकता है। इसी प्रकार राष्ट्रपति बनने की योग्यता भी होती है। ऐसा मेरी जानकारी में है। इसकी सत्यता संविधान से परखी जा सकती है।

अभी राष्ट्रपति कौन है? रामनाथ कोविंद। जब तक उनका नाम निर्देशित नहीं किया गया था, क्या किसी ने भी यह सोचा कि वे राष्ट्रपति बन सकते हैं? हमारे भीतर योग्यताएं रहती हैं, इसलिए हमको कभी भी अपने को कमतर नहीं आंकना चाहिए। बल्कि हमें अवसर तलाशने चाहिए। ऐसा करने से हमारी योग्यता में और भी विकास होगा। हमारी योग्यता और बढ़ेगी।

नरेंद्र मोदी दूसरी बार प्रधानमंत्री बने हैं। पहली बार में अनुच्छेद 370 को समाप्त नहीं कर सके। दूसरी बार में कर दिया। अनुच्छेद 370 निरस्त कर दिया। एक महीने में सारा खेल हो गया? कोई सोच सकता है कि यह ताबड़तोड़ किया गया है। किंतु जहां तक मैं सोचता हूं ये सारी प्लानिंग सालों से चल रही होगी। अमित शाह ने कहा कि जिस समय हम फुटबॉल खेलते थे, उस समय हम बच्चे थे किंतु तब भी हमारा मकसद था कि अनुच्छेद 370 निरस्त होनी है। उसे निरस्त करना है। हमारा एजेंडा बहुत पहले से ही था। हमारा भी एजेंडा पहले से होना ही चाहिए कि मुझे क्या करना है? मैं अपनी योग्यता को कहां तक विकसित करूं? कितनी ऊंचाइयों तक ले जाऊं?

एक छोटा-सा खंभा या डिवाइडर है। एक लता को डोरी बांधकर उस खंभे से आश्रित कर दिया गया। वो बेल, वो लता कहां तक ऊंची चढ़ेगी? और उसको यदि पूरे छपरे के ऊपर तक बांध दिया तो वह लता कहां तक चली जाएगी? (प्रत्युत्तर—ऊपर तक) मेरी आवाज कम आ रही है या आपकी आवाज कम आ रही है? किसी लता को यदि कुएं की तरफ नीचे उतार दिया तो वह लता किधर उतरेगी? (प्रतिध्वनि—नीचे) और उसको यदि जमीन पर फैला दिया तो वह जमीन पर पसरती चली जाएगी। जैसा हमारा संकल्प बनता है, जैसा हमारा विचार बनता है उस विचार के आधार पर हमारी ग्रोथ होती है। उस संकल्प के आधार पर हमारा विकास होता है। अन्यथा हमारे विचार जमीन पर पसरने जैसे होंगे। यदि वे कुएं में उतरने जैसे होंगे तो हमें कुएं में उतारने वाले बन जाएंगे। किंतु ऊंचाई दिलाने वाले नहीं बन सकते।

आप देखिए कि आचार्य पूज्य गुरुदेव एक छोटे-से गांव में जन्मे। जन्म के समय किसने यह विचार किया था कि वे आचार्य बनेंगे? उन्होंने भी शायद ही कभी विचार किया होगा कि मुझे आचार्य बनना है। मैं यह नहीं कहता कि आप अपने विचारों में यह सोचें कि मुझे प्रधानमंत्री बनना है। या मुझे अध्यक्ष बनना है ये सोचने की आवश्यकता नहीं है। मुझे केवल कार्य

करना है, कर्तव्य का पालन करना है। जो व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ होता है, उसकी ग्रोथ, उसके विकास को रोकने की क्षमता किसी में भी नहीं होती। वह आगे बढ़ता जाएगा, बढ़ता जाएगा, बढ़ता जाएगा।

गुजरात में नरेंद्र मोदी तीसरी बार मुख्यमंत्री बने। बीजेपी, आरएसएस में अंतर्-कलह, अंतर्विरोध था। वे नहीं चाहते थे कि ये तीसरी बार मुख्यमंत्री बनें क्योंकि दो बार में बहुत शक्तिशाली, पॉवरफुल हो गए थे। वे चाहते थे इस पर कंट्रोल करना जरूरी है। मैंने जैसा पढ़ा है बीजेपी और आरएसएस के बारे में, वैसा बता रहा हूं। मैं न तो बीजेपी में गया हूं, न ही आरएसएस में गया हूं। इन दोनों संघों में कुछ लोगों की चाह थी कि ये आगे नहीं बढ़ें। किसी भी तरह इनको रोका जाए। किंतु उनकी अपनी धुन थी। उनका अपना कर्तृत्व था। उनका अपना सारा खेल था जो खेला और तीसरी बार मुख्यमंत्री बन गये!

हमें ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि कैसी भी विकट परिस्थिति आ जाए, हम सहन करने में समर्थ हो जाएं। वर्तमान युग में सहनशीलता घटती जा रही है। कोई किसी के वचन को सुनने के लिए तैयार नहीं है। थोड़ा-सा कहने के साथ ही आक्रोश और रोष प्रकट हो जाता है। ऐसे समय में हमें ऐसा विचार करना चाहिए कि मैं दुनिया के प्रवाह में चलने वाला नहीं बनूंगा। मुझे अपनी सहनशक्ति को बढ़ाना है। जो अपनी सहनशक्ति को जितना बढ़ाएगा, वह उतनी ही ऊंचाइयों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

यहां स्कूल का ग्राउंड खुला पड़ा है। यहां से कोई प्लेन या हेलीकाप्टर उड़ाना चाहे तो नहीं उड़ा पाएगा। उसका ऐसा प्रैशर पड़ेगा कि यह जमीन धंस जाएगी। प्लेन को उड़ाने के लिए, हेलीकाप्टर को उड़ाने के लिए जमीन की मजबूती जरूरी है। ट्रेन चले चाहे बस चले, सड़क की जमीन मजबूत नहीं हुई तो सड़क धंस जाएगी, दब जाएगी। आज जहां फोरलेन या सिक्सलेन बन रहा है, उसको बहुत मजबूती देने का प्रयत्न किया जाता है। एक कॉलोनी की सड़क और एक फोरलेन की सड़क में अंतर होता है। ये अंतर इसलिए है क्योंकि फोरलेन पर बहुत सारी गाड़ियों को चलना है। यदि उस जमीन को मजबूत नहीं किया गया तो जमीन धंस जाएगी और गाड़ियां आराम से नहीं चल पाएंगी। वैसे ही ट्रेन को चलाने के लिए भी वहाँ की जमीन को मजबूत करना आवश्यक है।

जैसे हम इनको देखते हैं, वैसे ही हमें विचार करना चाहिए कि मेरी जमीन यदि मजबूत नहीं होगी तो मैं ऊंचाइयां कैसे प्राप्त कर पाऊंगा? नींव जितनी गहरी होती है, ऊपर का महल भी उतना ही ऊँचा उठाया जा सकता है। नींव यदि मजबूत होगी तो व्यक्ति इमारत को ऊंचा ले जाने में समर्थ होता है। बिना नींव के कोई महल खड़ा करेगा तो वह कितना ऊंचा ले जा पाएगा? वह ज्यादा ऊंचाई तक नहीं ले जा पाएगा। इस पंडाल के खंभे यदि जमीन के अंदर तक नहीं गाड़े गए होते तो क्या पंडाल टिक पाता? बिना जमीन में गाड़े ऐसे ही खड़ा कर देते तो उसका परिणाम क्या होता?

(कुछ लोग आपस में बात करने लगते हैं)

अरे! बात मेरे से करो, उधर नहीं। यदि आपस में बात करोगे तो कैसे काम चलेगा? हम यदि सभा में एक-दूसरे से बात करते रहे तो दूसरे का ध्यान भटकेगा। हम भी लाभ से वंचित हुए और दूसरे को भी वंचित करने का प्रयत्न किया। आज आपको सुबह विवेक के बारे में बताया गया। यतना का महत्त्व बताया गया कि हमारी वजह से किसी को भी व्यवधान नहीं होना चाहिए। हमारे किसी भी कार्य से– हमारे वचन से, हमारी अन्य किसी क्रिया से– किसी को भी व्यवधान नहीं होना चाहिए। हमने सुन लिया। किंतु इसको संकल्पित कितना किया? हमने दृढ़ता कितनी रखी?

मुझे नहीं लगता कि किसी ने दृढ़ता रखी हो। कुछ लोगों ने उसको जीवन में ढाला होगा। बाकी तो आयाराम-गयाराम हो गये। कहेंगे कि ये बातें तो होती रहती हैं। ऐसी यदि हमारी मनोवृत्ति होगी तो समझ लीजिए कि हम कभी भी ग्रोथ नहीं कर पाएंगे। हम कभी भी अपने जीवन को हिमालय पर ले जाने वाले नहीं बन पाएंगे। हम कीड़े के रूप में जमीन पर ही रेंगते रहेंगे। जमीन पर खड़े कभी नहीं हो पाएंगे।

बच्चे के जन्म लेने के बाद यदि कोई उसकी अंगुली पकड़कर, उसको सहारा देकर नहीं उठाएगा या वह स्वयं ही किसी को पकड़ कर नहीं उठेगा तो घुटने के बल जमीन पर ही चलता रहेगा। कभी भी पैरों पर खड़ा होने की शक्ति उसमें नहीं आएगी। हम क्या करना चाहते हैं? क्या अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति हमारे भीतर मौजूद है? क्या अपने पैरों पर खड़ा रहने की शक्ति हमारे में है? वैसे देखा जाए तो मुझे नहीं लगता कि बहुत सारे लोग अपने पैरों पर खड़े हैं। बहुत सारे लोग पराङ्मुख होते हैं। उन्हें दूसरों का सहारा चाहिए। किसी को कंधा तो किसी को डंडा चाहिए। वे किसी के सहारे

से बढ़ सकते हैं। जैसे बेल, लता को रस्सी का सहारा मिला, खंभे का सहारा मिला तो उसके आधार पर चढ़ गई किंतु उसमें स्वयं में चढ़ने की शक्ति नहीं है। एक पेड़, वृक्ष को किसी की आवश्यकता नहीं होती है। हमें लता बने रहना चाहिए या पेड़ बनना चाहिए? हमें पेड़ की तरह ऊंचाइयां प्राप्त करनी है या लता की तरह किसी के सहारे पर ही चलते रहना है?

ध्यान रखिए कि पेड़ जितना ऊंचा जाता है, उसकी जड़ें भी उतनी ही गहराई में रहती हैं। हमारी जड़ें यदि गहरी जाएंगी तो हमारी ऊंचाई को रोकने वाला कोई नहीं हो सकता। हम कितनी ऊंचाइयां पा सकते हैं इसकी शायद कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।

आचार्य पूज्य गुरुदेव का एक ही सूत्र था, 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेसु कदाचन्'–कर्म करना है। उन्होंने अपना एक कर्तव्य बना लिया कि गुरु महाराज को हर तरह से साता पहुंचाना। गुरु महाराज की हर बात माननी है। हम इसका मतलब पिट्ठू बनना लगा सकते हैं, चापलूसी से लगा सकते हैं। हम अर्थ लगा सकते हैं, किंतु दोनों नजरिये होते हैं। सही अर्थ नहीं लिया तो गड़बड़ हो जाएगी। आचार्य श्री के अंतर्-भाव गुरु सेवा के थे। गुरु को साता पहुँचाने के थे। वे इसी भावना से अपना कार्य करते रहे।

आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. फरमाया करते थे कि हर साधु, हर साध्वी, प्रवचन बोलने वाले हर इनसान को हमें सुनना चाहिए। किस समय किसके भीतर से क्या बात निकल आए। किसी के भीतर से कोई चिंतन निकल सकता है जो हमारे जीवन को मोड़ने वाला, बदलने वाला और जीवन को ऊंचाइयों तक ले जाने वाला बन सकता है। ऐसा नहीं है कि साधु-साध्वियों के वचन ही हमको ऊंचा उठाने वाले होते हैं। श्रावक के वचन भी, श्रावक का उपदेश भी व्यक्ति को ऊंचाइयों तक ले जाने वाला बनता है और बने हैं। हम विचार करें कि हम न तो लेट करने वाले होंगे और न वेट करने वाले होंगे।

शिविर का कार्यक्रम यदि 10 बजकर 43 मिनट का है तो हम 10 बजकर 45 मिनट करने वाले नहीं होंगे। जिस समय सबसे पहला युवा शिविर गंगाशहर, भीनासर में आयोजित था, उस समय यह कंपल्सरी बात थी कि दो-चार मिनट भी लेट होने वाले को प्रवेश नहीं दिया जाएगा। हमने उदयपुर में मीमांसा परिषद् रखी थी साधु-साध्वियों की। डेढ़ बजे का टाइम था।

1:31 पर या 1:32 पर भी हॉल में नहीं आ सकते थे। 1:28 पर आने वाले का स्वागत है। 1:30 तक आने वाले को मौका मिलेगा। उससे लेट करने वाले बाहर। नो एन्ट्री। हम ठीक टाइम पर नहीं, बल्कि 2 मिनट पहले पहुंचेंगे ताकि अपने स्थान को सही रूप में ग्रहण कर सकें।

यदि हमारा ऐसा लक्ष्य होता है कि पीछे से आओ और आगे बढ़ो, तो ऐसे व्यक्ति ऊंचाइयों को प्राप्त नहीं कर पाएंगे। वे आगे आ सकते हैं किंतु आगे बढ़ नहीं सकते। अपने कर्म को समझने वाला, अपने कर्तव्य को समझने वाला और अपने कर्तव्य पर डटा रहने वाला ही आगे बढ़ने वाला हो सकता है। वही व्यक्ति अपनी ग्रोथ कर सकता है और आगे बढ़ सकता है। आगे बढ़ना स्वयं के बल पर होता है। किसी दूसरे के बल पर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है।

कल रात्रि में प्रश्नोत्तरी के समय एक प्रसंग उपस्थित हुआ। उपाध्याय-श्री ने पूछ लिया कि जोधपुर के कितने लोग हैं यहां पर? सिर्फ पांच लोगों के हाथ ऊपर हुए। सिर्फ पांच लोग ही थे। वैसे पांच लोग भी कम नहीं होते हैं। पंचायती पांच की होती है। पांच लोग भी बहुत होते हैं। फिर उपाध्याय श्री कहने लगे कि पांच लोगों को कोई कार्य करना हो तो क्या आप लोग बिना नाम के काम कर लोगे। उन्होंने पुनः कहा कि बोलो, नाम के लिए कभी आप तकरार या विवाद तो खड़ा नहीं करोगे। बखेड़ा तो खड़ा नहीं करोगे? कौन-कौन ऐसा करेंगे। पांचों लोगों ने हाथ खड़ा कर दिया। फिर वे बोले कि सोच लो। आप में से चार लोगों के नाम आ जाएं और एक का नाम नहीं आए तो मन में ये विचार नहीं आना चाहिए कि मेरा नाम क्यों नहीं आया। आपको काम करना है या नाम चाहिए? (प्रत्युत्तर– काम) आप लोगों की आवाज इतनी कम कैसे आ रही है? इससे लगता है कि आप लोग युवा हैं ही नहीं। हो सकता है कि उपवास हो। मानसिक कुंठा भी हो सकती है। ज्यादा प्रैशर हो गया होगा या फिर ज्यादा खाना खा लिया होगा। आवाज नहीं आने के पीछे इन तीनों चीजों में से कुछ भी हो सकता है।

हमें काम चाहिए या नाम? बोलो। (प्रत्युत्तर– काम) ध्यान रखिए किसी भी परिस्थिति में अपने नाम की बात नहीं करेंगे। ये चमड़ी किसी को भी प्रिय नहीं है। आपकी चमड़ी कितनी गोरी है या सलोनी है! कितनी सांवली है। स्पर्श करने पर चमड़ी कैसी भी हो? किंतु स्पर्श करने से ये पता

नहीं चल जाएगा कि आपने क्या बड़ा काम किया है। ऐसा नहीं हो कि चमड़ी थोड़ी खराब देखकर बैठ गए उसको चमकाने के लिए। जो चमड़ी की तरफ ध्यान देगा, वह चमड़ी को चमकाता रह जाएगा। फिर कार्य में वह सफल नहीं हो पाएगा। इसलिए हमें अपने कर्तव्य पर बराबर दृष्टि बनाए रखनी चाहिए।

मैं जिस कुल से हूं, जिस घर में जन्मा हूं, जिस समाज में जन्मा हूं, जिस क्षेत्र में जन्मा हूं, उसके प्रति मेरा क्या कर्तव्य है? उसके प्रति मेरा दायित्व क्या है? मुझे क्या करना है? मुझे कोई आकर कहे तो ही मैं करूंगा तो ऐसे में कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि संघ मेरा है। करना मुझे है, क्योंकि परिवार मेरा है। करना मुझे है, क्योंकि समाज मेरा है। करना मुझे है। और क्या करूंगा? बखेड़ाबाजी या काम? बखेड़ाबाजी करने वाले भी बहुत हैं किंतु बखेड़ाबाजी हमको ऊंचाई दिलाने वाली नहीं होगी। यह निश्चित है कि बखेड़ा करने वाला बिखरता रहता है, बिखरता रहेगा। किसी की आदत होती है बिखेरना और फिर समेटना, बिखेरना और फिर उसको समेटना। ताकि उसकी जरूरत महसूस की जाए और कहा जाये कि उस आदमी को बुलाओ। वह बिखरे हुए को समेट देगा। ऐसा आदमी वहीं तक रह जाएगा। वह चीजों को बिखेरता और समेटता रहेगा। इसी काम में ही रह जाएगा।

एक सेल्समैन एक दुकानदार को अच्छे और सुंदर तरीके से पटा लेता है। फिर वह हमेशा के लिए उसका ग्राहक बन जाता है। किंतु दुकान में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं कि कपड़ों को उठाओ, निकालो, बिखेरो और फिर समेटो। वह वस्त्रों के बंडल को बिखेरता है फिर उनको समेटता है। उसका काम है बिखेरते रहो और समेटो। वह कपड़े को निकालता है, बिखेरता है और फिर वापस रैक में जमाता है। उसका काम इतना ही होता है। वह अपने काम तक ही सीमित रहता है। वह कभी भी सफल सेल्समैन नहीं बन सकता। वह मार्केटिंग करने में कभी भी सफल नहीं हो सकता है क्योंकि उनका काम ही है निकालना, समेटना और वापस रखना।

क्या हमें यही करते रहना चाहिए या अपने जीवन में कुछ ग्रोथ करनी है? जैसे जन्मे वैसे ही मरने के लिए यदि हमारी तैयारी है तब हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।

आप लोग आज युवा शिविर में उपस्थित हुए हो तो जरूर कुछ मन में विचार होगा। हो सकता है कई लोग यही सोचते हैं कि इसी बहाने से कुछ लोगों से मिलना हो जाएगा। चलो और कुछ नहीं तो आचार्य श्री और इतने संतों के दर्शन भी हो जाएंगे। ऐसा भी दिमाग में लेकर आए होंगे कुछ लोग! उनको चाहिए कि हम इस दिमाग से काम नहीं करें। इसी दिमाग से काम करते रहेंगे तो जो विकास की यात्रा तय करनी है, वह यात्रा हम तय नहीं कर पाएंगे। हम वैसी योग्यता प्राप्त नहीं कर पाएंगे।

रात्रि को उन पांच लोगों ने पच्चक्खाण कर लिये कि हमको काम करना है, हम काम करेंगे। हमें नाम की कभी ख्वाहिश नहीं होगी। यदि नाम नहीं आएगा तो कोई विरोध या बखेड़ा खड़ा नहीं करेंगे। इस प्रकार से उपाध्याय-श्री ने स्पष्ट कर दिया कि प्रकारांतर से भी दूसरे, तीसरे को भिड़ाकर कि मैं तो नहीं बोलूंगा किंतु जो बोल सकता है उसको भिड़ाकर कहना कि तुम्हारा तो कर्तव्य होता है। ये भड़काने वाला काम नहीं होना चाहिए। उन पांचों लोगों ने जो कार्य किया, आपकी दृष्टि में अच्छा था या बुरा था? (प्रत्युत्तर– अच्छा) उनको ऐसा करना चाहिए था या नहीं करना चाहिए था? (प्रत्युत्तर– करना चाहिए था) आप में से कौन-कौन तैयार हैं? खड़े हो जाएं। कुछ बैठे भी हैं। जबरदस्ती नहीं है, शिकायत नहीं है। हां, कितने लोग खड़े हैं? सोच-समझकर पच्चक्खाण करना।

रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।

और कोई गुंजाइश? लगभग 20 फुट तक की आवाज कान में आ रही है बाकी 25 फुट के बाद वाले बोलेंगे पहले। पहले पीछे वाले, चालू करो।

रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।

कुछ भाई बोल रहे हैं कि बहनों को भी पच्चक्खाण दिला दो। अरे! भाई पहले अपना घर तो संभालो। हम तो फिसल गए, किसी और को भी फिसला देंगे। हम गिरे औरों को भी गिरा देंगे। हम भी फिसल गए और दूसरों को भी लेकर गिरे। इसलिए पहले हमको संभलना है। बोलो, पच्चक्खाण करा दूं! प्रतिज्ञा करा दूं! सब बोलो अच्छी तरह से। महेश जी! श्रमणोपासक में नाम कटवा दिया जाए। बोलो, नहीं तो बैठ जाओ। अभी भी समय है बैठ जाओ। खड़े रहना है तो देख लो। ये रिपोर्ट में महेश जी आपका नाम कट गया तो! बोलो, क्या करना है? विचार नहीं है तो

बैठ जाओ। अभी बैठने की छूट है। बाद में किंतु-परंतु मन में नहीं उठना चाहिए। हम काम की तरफ दृष्टि रखेंगे और कर्तव्य की तरफ भी दृष्टि रखेंगे। संघ, समाज का कोई भी सेवा का काम होगा तो करेंगे। उस पर बखेड़ा और बखेड़ाबाजी नहीं करना है। कहीं पर मेरा नाम नहीं आया तो समाज में बखेड़ा नहीं करूंगा। मन में दुःख भी नहीं आएगा। (सभा में बहनें– हर्ष-हर्ष, जय-जय)

बहनो! अब तुम 'हर्ष-हर्ष जय-जय' कर रही हो तो मेरी नजर तुम्हारी तरफ हो गई है। कौन-कौन है जो नाम के पीछे नहीं रहेंगी? बहनों को नाम चाहिए या काम चाहिए? हमें काम प्रिय है या नाम प्रिय है? पल्ला पकड़ कर आए हैं या पल्ला पकड़ा कर आए हैं। हम अपने कर्तव्य की पालना करेंगे। कहीं पर नाम नहीं आएगा तो किसी से द्वेष नहीं रखेंगे। दुःखी नहीं होंगे। ऐसी भावना होनी चाहिए।

वस्तुतः, हमें नाम की तरफ जाना ही नहीं चाहिए। यदि जमीन पर हमारा पैर पड़ा और वहां फेविकोल गिरा हुआ है तो बोलो चलने में आसानी होगी या दिक्कत होगी? दिक्कत आएगी या नहीं आएगी? (प्रत्युत्तर– आएगी) दिक्कत आएगी चलने में। उस फेविकोल पर यदि दो मिनट के लिए खड़े रह गए तो पैर चिपक जाएगा। यदि नीचे फेविक्विक पसरी हुई हो और वहां पैर पड़ गया और आप चलने का प्रयत्न करेंगे तो आपकी चमड़ी उधड़ सकती है। ऐसे में चलने का प्रयत्न करना ठीक नहीं है।

वैसे ही यह नाम की चेप है। नाम की चेप फेविक्विक की तरह एक बार चिपक गई तो हमारा विकास अवरुद्ध हो जायेगा। हमारी गति विकसित नहीं हो पाएगी। हम आगे नहीं बढ़ पाएंगे। इसलिए आज सब ने जो पच्चक्खाण, जो प्रतिज्ञा ली है... एक बात और बोलनी है, दस बज गया है, आगे अधिक नहीं बोलना है क्योंकि आपकी क्लास है। ज्यादा लंबा लेना नहीं है। मुझे पूछा गया आपकी क्लास का समय। अपनी तो रोज ही क्लास है। कुछ लोगों की क्या, सबके लिए क्लास है। मेरी तो रोज व्याख्यान में क्लास होती ही है। यहां पर हजारों की संख्या में क्लास में बैठे हुए हैं।

हमारे एक संत थे। उनके लिए किसी ने कहा ये महाराज परीक्षा नहीं देते हैं। उन संत ने जवाब दिया तुम परीक्षा कमरे में बैठकर देते हो और मैं हजारों लोगों के बीच में परीक्षा देता हूं। हजारों लोगों के बीच में जाकर

बोलना, हजारों की संख्या के बीच में बैठना परीक्षा से कम नहीं है। यह भी एक परीक्षा ही है। परीक्षा है या नहीं है? बोलने वाले की परीक्षा है। बोलने वाले के शब्दों को पकड़ने वाले बहुत सारे होते हैं। उसके शब्दों को पकड़ सकते हैं या नहीं पकड़ सकते? ये परीक्षा कोई कम परीक्षा नहीं है। मैंने कहा यह भी एक क्लास ही है।

बात आ गई इसलिए बोल रहा हूं कि त्याग की परिभाषा क्या है? (प्रत्युत्तर– छोड़ देना) किसी चीज को छोड़ देना ही त्याग नहीं है। मैं त्याग की परिभाषा यह करता हूं कि जो चित्त में कभी रहे नहीं, परत के नीचे भी नहीं रहे, एकदम चित्त से निकल जाए। रथनेमि, राजीमती पर आसक्त, मुग्ध क्यों हो गए? उन्होंने वैसे तो त्याग दिया था किंतु राजीमती के संस्कार उनकी परत में रह गए और राजीमती जैसे ही सामने आई वे संस्कार ताजे हो गए। किसी भी पत्रिका में, श्रमणोपासक में, चाहे राजस्थान पत्रिका हो या दूसरा कोई, उसमें नाम नहीं आया तो यह बात मन में नहीं आनी चाहिए। दुःख नहीं होना चाहिए। नाम नहीं हो तो 'मारो नाम कठे' नहीं कहेंगे। ऐसे विचार मन में से हट जाने चाहिए। थोड़ी-भी बात मन में नहीं रहनी चाहिए। कपड़े यदि थोड़े-से भी गीले हैं, पसीने से भरे हैं तो थोड़ी-सी भी कामण हवा चलेगी तो कपड़े में सीलन आ जाएगी और अनेक जीवों की विराधना हो सकती है।

त्याग की परिभाषा यह है कि किसी चीज को दिमाग से पूरी तरह से निकाल दें। वह चीज मेरे माइंड में कभी नहीं रहे। कभी असर करने वाली बने नहीं। ऐसा यदि हम पच्चक्खाण, त्याग करते हैं तो वो त्याग वस्तुतः हमारे लिए विकास की सीढ़ियां बन जाता है। सोपान बन जाता है जिससे व्यक्ति ऊंचा उठता है। युवाओं के भीतर यदि वह ताकत, वह हिम्मत है, तो वे क्या नहीं कर सकते? अर्थात् वो यदि धार लें, मन में विचार कर लें तो क्या यहां से श्रीलंका नहीं जा सकते? जा सकते हैं या नहीं जा सकते? अभी तो ट्रेन में चले जाएंगे। प्लेन में चले जाएंगे। हनुमान जी 'लंका' गए या नहीं गए? ऐसा भी सामर्थ्य हमारे भीतर रहा हुआ है।

अपनी शक्ति का गोपन नहीं करें। अपनी शक्ति को निरन्तर विकसित करें। हमें निरंतर परिवार का, समाज का कार्य करना है। कार्य नहीं मिले तो कार्य का चयन करना है। अपने परिवार के लिए, अपने धर्म के लिए, अपने संघ के लिए और अपने राष्ट्र के लिए– कार्य का चयन करना है। ऐसा करना

किसी पर अहसान नहीं होगा। यह सोचना है कि मुझे कार्य करने का अवसर मिला है तो मैं अपनी शक्ति को, योग्यता को बढ़ाने में समर्थ बनूंगा। इस भावना से हमें आगे बढ़ना है। अपने आपको विकसित करना है। ऐसा करते रहेंगे तो उससे वह कार्यकारी शक्ति जगेगी कि लोग देखते रह जाएंगे। लोग बोलेंगे कि कल क्या था और आज क्या हो गया। ऐसा हमें करना है।

ऐसा करेंगे और इस तरह से अपने जीवन को लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ाएंगे तो जीवन को धन्य बनाएंगे।

11 अगस्त, 2019

10

ज्योति और ज्वाला

दृष्टि जब मोह से आवृत होती है, तब हमारा पुरुषार्थ जागृत नहीं हो पाता। दृष्टि पर मोह बना रहता है तो हम सत्य-तथ्य को समझ नहीं पाते। उसे जान नहीं पाते। यथार्थ और सारभूत का हमें बोध नहीं होता।

एक दिन मैंने कहा था कि आगमों के सार और निचोड़ में, मोह को जीतने का उपदेश दिया गया है। मोह को जीतोगे तो जयी बन जाओगे। मोह से हार गए तो हार ही गए। फिर संसार ही हमारे लिए बस होगा। 'जो व्यक्ति काया का मोह करता है, वह कायर बन जाता है और जो मोह को जीत लेता है, वह जग को कायल करने वाला होता है।' जग उसका कायल हो जाता है।

मेरी स्मृति में वह सारा दृश्य बहुत अच्छी तरह से है, जब आचार्य पूज्य गुरुदेव का मारवाड़ की इस धरा पर ही विचरण हो रहा था। गुरुदेव होली चातुर्मास के लिए बालेसर पधारे हुए थे। उनका पाट दरवाजे के बीच में लगा हुआ था और पाट के ऊपर एक चौकी थी। एक दिन पधारते हुए जैसे ही विराजना हुआ कि दरवाजे के चौखट की चोट उनको लगी। ललाट के ऊपर वाले भाग में चोट लगी। उसके बाद गुरुदेव विराज गए। घटना हो गई वह हो गई। सामान्य बात में हो जाती है। श्री गुलाबचंद जी सांखला, चोट लगने के समय विचार करते हैं कि यदि उस साधु का हाथ चोट लगने वाले स्थान पर नहीं गया तो मैं समझ लूंगा कि यह सच्चा साधु है। तो मैं उनको गुरु मान लूंगा। मतलब काया के मोह को जिन्होंने जीत लिया और काया के मोह को उन्होंने जीता तो श्री गुलाबचंद जी भी कायल हो गए। जगत् उनका कायल हो जाता है।

शरीर को देखते रहेंगे तो कायरता से बढ़कर और हमें कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। मोह को जीतने के लिए जरूरी है कि ममत्व भाव को

जीता जाए। मेरापन को डाउन करे। मेरेपन के जितने विचार आते हैं, वे हमारे मोह को बढ़ाने वाले होते हैं। वे मोहवर्धक होते हैं। उससे मिलने वाला कुछ भी नहीं है। वे बढ़ते जाएंगे, बढ़ते जाएंगे और आगे जाकर मिलेगा कि रास्ता बंद है! आगे उसका रास्ता नहीं है। फिर रिवर्स होना पड़ेगा।

यह मंजिल नहीं है। मोह भटकाव है और दुनियवी लोग भटकने के लिए तो तैयार हैं– भटकाने वाला चाहिए। हमारी बुद्धि पर जब दूसरे का अंकुश होगा और दूसरे के चलाने से हमारी बुद्धि चलेगी तो हम अपनी मंजिल को कैसे प्राप्त कर पाएंगे?

आचार्य पूज्य गुरुदेव की ये केवल सामान्य बात नहीं है कि चोट लगी और कुछ भी नहीं हुआ। हो गया सो हो गया। हमें थोड़ा-सा कुछ होता है तो झट से हमारा हाथ उधर चला जाता है। जिन्होंने अपनी काया को साधा, जिन्होंने अपने मन को साध लिया, उसका हाथ जल्दी से वहां नहीं जाएगा। लग गई तो लग गई। उसका हाथ जल्दी जाएगा नहीं। हाथ को सूचना देने की जरूरत नहीं होगी कि तू वहां पहुंच क्योंकि चोट लग गई है। हमारा सूचना तंत्र इतना सक्रिय होता है कि तत्काल सूचना जाती है और हाथ अपना काम करने को तैयार हो जाता है।

सूचना तंत्र पर कंट्रोल पा लेना साधना है। सूचना-भारी नहीं बनना। न हाथ को सूचना गई न हाथ सक्रिय हुआ, ये साधना है। इसी का नाम साधना है। साधना सधेगी तो साध्य मिलेगा। साधना नहीं सधेगी तो मंजिल प्राप्त होने वाली नहीं है। साध्य मिलने वाला नहीं है।

दो दिवसीय युवा शिविर चल रहा है। शिविर का और भी कुछ नाम होगा। मेधा युवा शिविर या जो कुछ भी हो। हमारे भीतर उसके लिए उत्साह कितना जगा? सुनने के शूरवीर बनकर नहीं रहें। सुनने का कार्य बहुत किया है, बहुत करते रहे हैं। आगे भी सुन सकते हैं, किंतु सुनने के साथ हमारे भीतर उसका परिणमन क्या हो रहा है? जो परिणमन होगा, महत्त्व उसका होगा। मैंने बहुत अच्छा व्याख्यान सुना, बहुत कुछ जाना किंतु यदि उसका परिणमन नहीं हुआ तो निष्पत्ति क्या होगी? उसका परिणाम किस रूप में हमें प्राप्त हो पाएगा?

क्रिया वह सार्थक है, जो परिणाम दे। निष्प्रयोजन क्रिया करने से कोई फायदा नहीं। हमारी दृष्टि परिणाम पर होनी चाहिए। अपने प्राप्तव्य पर होनी

चाहिए। मैं जिसे प्राप्त करना चाह रहा हूं, जिस शिखर को छूना चाह रहा हूं, वह शिखर हमारी दृष्टि से ओझल नहीं होना चाहिए। हमारे कदम जब तक उसको प्राप्त नहीं कर लें, तब तक थकना-रुकना नहीं।

'शिवराज विजय' एक काव्य है। उसमें एक पंक्ति है कि 'कार्यम् वा साधयामि' दूसरा वाक्य है, 'देहं वा पातयामि' कार्य सिद्ध करूंगा या देह त्याग दूंगा। किंतु मैं इतना ही कहना चाहूंगा कि 'कार्यम् साधयामि' क्योंकि मेरे सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं है। एकमात्र कार्य है, वह सिद्ध करना है। न कोई बहाना है और न कोई कारण है।

धर्मनाथ भगवान् की स्तुति करते हुए कवि आनंदघन जी कहते हैं कि 'बीजो मन मंदिर आणू ना ही' कोई विकल्प नहीं है। बस, कार्य सिद्ध करना है। दूसरा कोई विकल्प है ही नहीं। कुछ भी नहीं है। एकमात्र 'कार्यम् साधयामि'। जो कार्य है उसे सिद्ध करूंगा। करना है, करना है और करना है। कोई नकारात्मक शब्द, कोई नकारात्मक विचार, हमारे भीतर नहीं होना चाहिए। चाहे कैसी भी कठिनाई आ जाए, घर में कोई बीमारी हो गई, ऐसा हो गया, वैसा हो गया, वो हो गया, ये हो गया, जैसे बहानों की आवश्यकता नहीं है। मन मजबूत है, मन बीमार नहीं है तो हमारा तन, हमारा शरीर, हमारी काया साथ देगी। मन को ही यदि हमने बुझा लिया तो फिर प्रकाश कहां मिलेगा? इसलिए मन का दीया कभी बुझना नहीं चाहिए।

आदमी जितना कार्य करता है, उसकी क्षमता उतनी ही बढ़ती है। यदि वह कार्य करने को उद्यत नहीं होता है तो उसके भीतर का सामर्थ्य भी मंद पड़ जाएगा।

श्रीमद् नंदी-सूत्र में एक बड़ी दिलचस्प बात कही गई है। उसमें एक उदाहरण दिया गया है कि जैसे अग्नि में ईंधन डालने पर अग्नि बढ़ती है, वैसे ही क्षयोपशम को यदि हम कुछ खुराक देते रहेंगे तो क्षयोपशम बढ़ेगा। क्षयोपशम बढ़ेगा तो हमारी शक्ति बढ़ेगी। ज्ञान की शक्ति बढ़ेगी, दर्शन की शक्ति बढ़ेगी, वीर्य की शक्ति बढ़ेगी। मतलब कुछ करने में हम समर्थ बनेंगे। कार्य की क्षमता बढ़ेगी। अग्नि में कुछ डालने से अग्नि बढ़ेगी। कुछ का मतलब ईंधन डालने से बढ़ेगी, पानी डालने से तो बुझ जाएगी। ईंधन से अग्नि प्रवर्धमान होती है। एक चिनगारी भयंकर अग्नि का रूप ले सकती है, ये हमने जाना है। एक चिनगारी, एक माचिस की तीली से अग्नि कितनी

निकली? माचिस की तीली से निकली चिनगारी को गैस में लगाने से पूरा खाना बन जाता है। पुराने समय की बात करें तो अग्नि जलाकर उसमें लकड़ी, कंडे डालते रहते और कई लोगों का खाना बना लेते।

चिनगारी को जैसे-जैसे ईंधन मिलता गया, वह विराट रूप लेते चली गई। 'विराट रूप लेना ठीक है किंतु विकराल रूप लेना ठीक नहीं है।' विकराल रूप गलत दिशा में ले जाने वाला होता है। हमें विकराल रूप को नहीं लाना है, हमें विराटता को बढ़ाना है। शक्ति को बढ़ाना है। शक्ति को भी उतना ही बढ़ाना है जितने पर हम कंट्रोल रख सकें। कंट्रोल से बाहर हुई शक्ति विकराल बन जाती है। जिस शक्ति पर हम अपना कंट्रोल नहीं रख पाते हैं, जिस शक्ति को अपने नियंत्रण में नहीं रख पाते हैं, वह शक्ति विकराल रूप ले लेती है। फिर वह ज्योति नहीं ज्वाला का रूप बन जाती है।

'हमारी शक्ति ज्योति का रूप रहे, ज्वाला का रूप न ले।' विकराल रूप न ले, ऐसा हमारा लक्ष्य होना चाहिए। हमारी शक्ति पर हमारा नियंत्रण बना रहना चाहिए। मन एक शक्ति है। वचन एक शक्ति है। काया एक शक्ति है। मन, वचन, काया—तीनों शक्ति के रूप में हैं। इन तीनों पर हमारा नियंत्रण होना चाहिए।

मैं क्या विचार कर रहा हूं, मेरे विचारों में कोई अन्यथा भाव नहीं आने चाहिए। जो मेरे विचारों को विकराल रूप दे दे, ऐसे विचारों को मैं अपने भीतर पनपने नहीं दूंगा। मेरा बोलना किसी जीव के लिए घातक नहीं बने, किसी जीवन को घात पहुंचाने वाला नहीं बने। किसी जीव को, किसी व्यक्ति को दर्द पैदा करने वाला नहीं बने। मेरा वचन किसी को दुःखी न होने दे, दुःखी न बनाये। ये हमारी सोच, ये हमारा विचार भी हमें सही दिशा में ले जाने वाला होगा। यदि हमने अपनी वाणी को खुला छोड़ दिया कि तुम्हारी जिधर मरजी हो उधर जाओ तो इस वाणी से क्या होगा? महाभारत बंचेगा या रामायण रची जाएगी।

महाभारत किस कारण रचा गया? एक छोटी-सी चिनगारी ने विकराल रूप ले लिया। यदि द्रौपदी की भाषा कंट्रोल में होती तो महाभारत नहीं होता। हमारा शास्त्र कहता है कि हँसी के वशीभूत भी ऐसी किसी भाषा का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। लोग समझते हैं कि मैंने मजाक किया, पर तुम्हारा मजाक सामने वाले के लिए शस्त्र बन गया। भाला और तीक्ष्ण तीर बन गया।

उसके दिल को भेदने वाला बन गया। इसलिए मजाक करते समय सामने वाले का मूड देखना चाहिए कि सामने वाला किस मूड में है? तुम मजाक के मूड में हो किंतु सामने वाला सीरियस है तो तुम्हारा मजाक क्या काम आएगा? तुम्हारा मजाक किस पर भारी पड़ेगा?

बात केवल द्रौपदी और दुर्योधन की थी किंतु जब विकराल रूप ले लिया तो उस बात की चपेट में बहुत लोग आ गए। कितनी बहिनों का सुहाग छिन गया। कई माताओं की गोद सूनी हो गई। यह हुआ अनियंत्रित शक्ति के कारण से। जिस शक्ति पर अपना नियंत्रण नहीं रहा उसने विकराल रूप उपस्थित किया। भाषा बिना बोले काम नहीं चलेगा। नहीं बोले तो बहुत अच्छी बात है किंतु परिवार, समाज, राष्ट्र में रह रहे हैं तो कहीं-न-कहीं भाषा के पुद्गल बिखेरने पड़ते हैं। भाषा हम बोलेंगे किंतु नियंत्रित भाषा बोलेंगे। बोलना है तो कब बोलना, कैसे बोलना है? जैसे हमको आभार व्यक्त करने के लिए समय दिया और हमने कुछ और बोलना शुरू कर दिया। हम लोगों को प्रेरणा देने के लिए खड़े हो गए। आपको खड़ा किसके लिए किया गया था? आपका कार्य आभार व्यक्त करना था, प्रेरणा देना नहीं। हमको आज स्वागत करने के लिए खड़ा किया गया और लगे विदाई की बातें करने! सावधानी रखनी पड़ेगी? नियंत्रण नहीं होगा तो हँसी के पात्र बनेंगे।

एक शादी का कार्यक्रम चल रहा था। शादी के बाद लिफाफा या गिफ्ट देने का कार्यक्रम होता है, उसको क्या बोलते हैं? (प्रत्युत्तर– रिसेप्शन।) वैसे हिंदी में क्या कहते हैं? (प्रत्युत्तर– आशीर्वाद समारोह) कितना सुंदर नाम है? उसको छोड़कर हम क्या बोलते हैं, रिसेप्शन। आशीर्वाद समारोह में एक बड़े नेता को भी बुलाया गया था। कार्यक्रम चल रहा था किंतु उबाऊ हो गया। इसी तरह दीक्षार्थी का अभिनंदन कार्यक्रम था, बैठा दिया लाकर उसको। कोई नेता आ गए तो अभिनंदन किसका चालू हो गया? जब दीक्षार्थी का अभिनंदन करना था तो जितने लोग मंच पर हैं उतने लोग जमीन पर नहीं हैं। क्या हुआ? लोग गए या नहीं? हम स्वयं गए! पहले मैं तो अब लोगों को क्यों बताऊँ।

यह हाल होता है। इसलिए कार्यक्रम पहले से सेटल होना चाहिए कि कितने समय बोलना है? यदि दो मिनट का टाइम है तो दो मिनट के ऊपर 5 सेकंड भी नहीं बोल सकता। बोलने वाले को रोक देंगे कि तुम बैठ जाओ। क्योंकि नियम तो नियम है। कोई बोलता है कि बस मैं दो मिनट बोलूंगा। बस

दो मिनट चाहिए और जब बोलने दिया जाता है तो दो मिनट कहते-कहते कहां तक चला जाता है? ये समझने की बात है। समझने का मतलब यह है कि हमारी शक्ति पर हमारा नियंत्रण नहीं है। हमारी शक्ति पर हमारा नियंत्रण होना चाहिए अन्यथा हमारी शक्ति कब विकराल बन जाए कुछ पता नहीं है।

द्रौपदी ने कहा, 'अंधे के अंधे होते हैं।' उसका वह वचन ऐसा तीर बना कि दुर्योधन मरने के पहले तक उसको भूल नहीं पाया। मरने के बाद भी उसके संस्कारों में रह गया होगा तो पता नहीं। कितनी भयानक घटना घटी। इसी तरह मंथरा द्वारा कैकेयी के दिमाग में भरी गई एक सोच ने भयानक घटना का रूप ले लिया।

मैंने पहले भी एक बार कहा था कि यदि अपने दिमाग की चाबी दूसरे के पास होगी तो हमारी हालत खराब होगी। कैकेयी का भी ऐसा ही हाल हुआ। भले ही उसने राम का नाम उज्ज्वल कर दिया किंतु एक बार कैकेयी ने कितना भयानक रूप ले लिया। भाषा एक कला है। शब्द अनमोल है। इसलिए कुछ भी बोलने से पहले शब्दों को तौलना चाहिए कि वे शब्द बोलने सही हैं या नहीं अर्थात् तौल कर ही बोलना चाहिए।

काया का उपयोग करते समय भी हमें देखना चाहिए कि मेरी काया के कारण किसी का बुरा तो नहीं हो रहा है। मेरे चलने से जीवों की विराधना तो नहीं हो रही है। सही दिशा छोड़ वह देखता किधर है, चलता किधर है। इसलिए काया का उपयोग करने की सावधानी हमें रखनी चाहिए। जो हर कार्य में सावधानी रखने वाला होता है, उसका नियंत्रण अपने आप में होता है। वह अपने जीवन की ड्राइविंग स्वयं करने वाला होता है। जिसके कार्य नियंत्रण में नहीं रहते हैं, वहां पर लापरवाही घुस जाती है और वह लापरवाही, वह प्रमाद उसको असंतुलित, स्खलित करता रहता है। वह हमें अवनति की ओर ले जाता रहता है। पतन की ओर ले जाता रहता है। इसलिए हम जो भी कार्य करें, बड़ी सावधानी से और यतनापूर्वक करें। हमारी क्रिया-शक्ति हमें बढ़ानी है और उस पर अपना नियंत्रण भी बनाए रखना है।

जम्बू कुमार की शक्ति नियंत्रित थी तो प्रभव जैसा भयंकर आतंकी भी पालतू की तरह बन गया।

वह कहता है कि 'कुमार, तुम्हारे विचार अलौकिक हैं। मैंने दुनिया में बहुतों को डराया है, धमकाया है। बहुतों पर विजय प्राप्त की। किंतु तुम्हारे

विचार सुनकर मैं तुम्हारा दास बन गया। मैं स्वयं से पराजित हो गया हूं। उसने कहा कि कुमार! हकीकत यदि जानना चाहते हो तो मुझे लगता है कि यह थोड़ा उतावलापन है। अभी-अभी विवाह हुआ है, शादी हुई है और तुम अभी-अभी संसार को छोड़ना चाहते हो। यह कोई मेल नहीं है। इसलिए तुम गृहस्थ जीवन में रहो। मैं तुम्हारा दास बनकर रहूंगा। मैं तुम्हारे सारे कार्य देखूंगा। तुम भले ही कितना ही धर्म-ध्यान करते रहना, तुम धर्म-ध्यान ज्ञान जितना करना चाहो, करो। बाकी कार्य मैं संभाल लूंगा। मैं तुम्हारा दास बनकर तुम्हारे साथ रहूंगा।'

ये सब बातें खूंखार प्रभव चोर, पांच सौ आदमी जिसके साथ हैं, वह जम्बू कुमार से कह रहा है। वह कह रहा है कि मैं तुम्हारा दास बनकर तुम्हारे साथ रहूंगा। यह शक्ति नियंत्रण की जीत है। जम्बू कुमार के नियंत्रण की जीत है। यदि जम्बू कुमार का नियंत्रण अपने आप पर नहीं होता तो प्रभव जैसा चोर उनके चरणों में झुकने वाला नहीं था। यह स्वयं के नियंत्रण की क्षमता है। हम यदि अपने नियंत्रण में रहते हैं, नियंत्रित रहते हैं तो आप देखो कि आपका विकास कितना होता है।

नदी का पानी यदि दो तटों के बीच में चलता है, नहर का पानी नहर की मर्यादा के भीतर चलता है तो वह पानी कितनी भूमि का सिंचन करने वाला बन जाता है? और यदि ये तट तोड़ दिए जाएं, मर्यादाएं तोड़ दी जाएं तो वह पानी कितनी यात्रा कर पाएगा? वह पानी बिखर जाएगा।

मर्यादित जीवन, अनुशासित जीवन ऊंचाइयां दिलाने वाला होता है। मर्यादाविहीन और अनियंत्रित जीवन बिखर जाता है। उसमें आदमी थोड़ी-सी भी यात्रा नहीं कर पाएगा। ढेर हो जाएगा। उसका इतिहास गुमनामी में खो जाएगा। किसी का कोई अता-पता नहीं रहेगा। इसलिए मर्यादा बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है।

जम्बू कुमार में लिमिट में बोलने, संयमित भाषा में बोलने का गुण था। उसका अपनी भाषा, अपने मन पर नियंत्रण था। जब आठों कन्याएं बोलीं तो वे भावावेश में नहीं आए। भावों के वेग में नहीं आए। उन कन्याओं की भावना में बह नहीं गए। उन्होंने अपने पर नियंत्रण रखा। आदमी जब ऐसे भाव देखता है तो बह जाता है कि अरे! वह दुःखी हो रहा है, यह दुःखी हो रहा है। छोड़ो, दीक्षा बाद में ले लेंगे। कुछ दिन बाद में ले लेंगे दीक्षा! वह

सोचता है कि माता कह रही है कि यदि तुमने दीक्षा ली तो मैं आत्महत्या कर लूंगी। पापा कुछ बोल रहे हैं। कहीं ऐसा-वैसा हो नहीं जाए। यदि कुछ होना होगा तो तुम्हारे रहने से टलने वाला नहीं है। मौत तुम्हारे रहने से टलने वाली नहीं है। यदि कुछ नहीं होने वाला है तो वह तुम्हारे चले जाने से भी नहीं होगा। मौत नहीं आनी है तो तुम्हारे चले जाने से भी आने वाली नहीं है। यह विचार करना चाहिए। किंतु हम घबरा जाते हैं क्योंकि मेरेपन की बुद्धि पूर्णतया खलास नहीं हो गई। दिमाग से यह बात हटी नहीं है कि न कोई पापा है, न ही कोई माता। न कोई भाई है। कोई कुछ नहीं है। मैं अकेला हूं, यह बात जिस दिन दिमाग में आ जाएगी, उस दिन हमारे कदम सेठ धन्ना जी की तरह चल पड़ेंगे। फिर कदम रुकने वाले नहीं हैं।

धन्ना जी की कहानी आप सभी को मालूम है। मुझे सुनाने की आवश्यकता नहीं है। वे कैसे चले गए? कपड़े कैसे पहने हैं, अच्छे हैं या नहीं, कुछ देखने की जरूरत नहीं थी। कपड़े से क्या करना है? दिखावे की कोई आवश्यकता नहीं है। न कोई बैंड, न कोई बाजा, न कोई गाजा, न कोई जुलूस और न ही कोई अभिनंदन। हम सारे बहाने बना लेते हैं और धन्ना जी ने दीक्षा ली तो शासन की प्रभावना हुई या नहीं हुई? जुलूस निकालने से क्या ज्यादा प्रभावना होगी?

मुझे पता नहीं है कि जुलूस का कार्यक्रम होगा या नहीं। यदि होते हैं तो खा-पीकर कोई भी चीज सड़क पर नहीं डालेंगे। बोलो, करा दूं पच्चक्खाण? खाना-पीना मना नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि खाना-पीना रखो ही मत। वह आपकी अपनी व्यवस्था है। किंतु खा-पीकर प्लास्टिक के गिलास इधर-उधर उछाल दो, फेंक दो ऐसा करना नहीं है। जहां सरकार की व्यवस्था है तो वह बात अलग है किंतु हर जगह, हर स्थान पर ये फेंका-फेंकी नहीं करनी है। आज अपराध घोषित हो गया है क्या? जोधपुर में अपराध घोषित हो गया है क्या? जोधपुर में भले ही नहीं हुआ हो किंतु कई जगह हो गया है। जब इस तरह कचरा फेंकने पर डंडे पड़ने लगेंगे और दंड वसूला जाएगा तो लोग खुद-ब-खुद कचरा फेंकना बंद कर देंगे।

मैंने अखबार में देखा कि जो एक्सीडेंट होते हैं, उसमें सुधार लाने के लिए नये कानून बनाए गए। उसके साथ यह भी लिखा कि बिना पुलिस के 2 घंटे में 307 बार कानून तोड़े गए। 307 बार कानून का उल्लंघन किया

गया। कितनी बार? एक दिन में नहीं दो घंटे में 307 बार कानून का उल्लंघन हुआ। ठीक ही कहा था राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने कि हमारे भारतीय लोग जब विदेश जाते हैं तो बड़े अनुशासित हो जाते हैं और जैसे ही वतन में लौटते हैं, भारत में आते हैं, एकदम से खुले हो जाते हैं कि ये तो अपना ही वतन है। अपना ही देश है। गुलाब जी भले ही रोज बोलते रहें कि अनुशासन का ध्यान रखिए, अनुशासन का ध्यान रखिए। क्या ध्यान रखोगे? कल भी एक बात कही गई थी कि शिविरार्थी को पहले मौका मिलना चाहिए, चरण स्पर्श का। लेकिन फिर अन्य बूढ़े लोग आ जाते हैं धक्का-मुक्की करके। क्या यह उचित है? यहां पर व्याख्यान रोज सुन रहे हैं कि अपने पर नियंत्रण रखें, किंतु जैसे ही चरण स्पर्श का समय आता है, सारा नियंत्रण टूट जाता है। हवा का नियंत्रण हो सकता है किंतु तूफान का नियंत्रण नहीं हो पाता है।

तूफान को कोई भी रोक नहीं सकता है। मैंने कहा, कोई रोको मत, टोको मत। कोई बीच में हमें टोके ऐसा नहीं होना चाहिए। स्वयं से स्वयं का नियंत्रण करो। दूसरे नियंत्रण करें तो मैं समझता हूं कि ये हमारी पोजीशन के खिलाफ है। हमें पहले स्वयं को नियंत्रित कर लेने में लाभ है।

उधर जम्बू कुमार कह रहे हैं, कि भाई तुम कह रहे हो, यह बात सही है किंतु ये सांसारिक जीवन की प्यास ऐसी है कि उसमें रहो तो प्यास बढ़ती रहेगी। इसमें जितना ईंधन मिलता है, जितनी खुराक मिलती है, भोग बढ़ता जाता है। मोह बढ़ता जाता है। मोह को जितनी खुराक मिलेगी उतना मेरा मोह यहां पर बढ़ता जाएगा। जम्बू कुमार का कथन यथार्थ है। कोई भी एक क्षण के लिए अनाथी मुनि की जगह पर स्वयं को रखकर सोचो कि कोई भयंकर बीमारी लग गई तो उसकी वेदना कैसी भयंकर होगी। आंखों में जलन हो रही है, बदन में जलन हो रही है, उस समय कोई सहायता नहीं कर पाएगा। माता, पिता, भाई सब पास होंगे किंतु कोई कुछ नहीं कर पाएगा।

कर्मों के खेल निराले हैं, ऋषि मुनि भी इनसे हारे हैं...!

कर्मों के खेल बड़े विचित्र हैं। इसलिए हमें सावधान रहना चाहिए। अनादि काल से इन भोगों को भोगा है। इन भोगों को भोगकर आदमी आज तक शांति प्राप्त नहीं कर पाया है। भोगों को भोगने से शांति मिलेगी या अशांति मिलेगी? (प्रत्युत्तर– अशांति) उससे अशांति बढ़ेगी। मेरे को सुनाने के लिए कह रहे हो या पक्की बात है? यहां आप व्याख्यान सुन रहे हो किंतु

सुनने की बात अलग होती है और जीने की बात अलग होती है। हाथी के दांत खाने के और, दिखाने के कुछ और होते हैं। सुनने की बात अलग होती है और अमल करके जीने की बात अलग होती है। हम बढ़ाने में लगे हैं या हटाने/घटाने में? जिंदगी में कितने कष्ट भोगे पैसा बढ़ाने में? पैसा बढ़ा लिया, फिर क्या होगा? ये बताओ कि फिर क्या होगा? ये बताओ कितने पैसे बढ़ जाएंगे तो तुम्हारी तृष्णा शांत हो जाएगी? कितने पैसे कमा लोगे तो मन भर जाएगा? कितना खाना खा लोगे तो पेट भर जाएगा?

एक बात समझ लेना कि खाने को तो रोटी-सब्जी ही मिलनी है। क्या ज्यादा पैसे वालों को खाना कुछ और नसीब होता है और कम पैसे वालों को कुछ अन्य नसीब होता है? फिर हम किधर जा रहे हैं, हमारी दिशा कौन-सी है और हम किस दिशा में बढ़ रहे हैं? आज पता नहीं कौन-कौन से खेल खेले जा रहे हैं। यदि शांति-समाधि को पाना है तो हमें अपने आप पर नियंत्रण रखना होगा।

12 अगस्त, 2019

11

बदला नहीं– पर बदल गया!

फिसलना या गिरना ढलान की तरफ होता है। आदमी फिसलता है तो ऊपर की तरफ गिरता है या नीचे की तरफ? पानी का बहाव ढलान की तरफ होता है। गिरने और फिसलने से बचने के लिए आदमी बहुत सावधान रहता है। ढलान पर चलते हुए आदमी उतना सावधान नहीं रहता है, जितना चढ़ाई के समय रहता है। चढ़ाई देखते ही वह सावधान हो जाता है।

यह सावधानी इसलिए है कि कहीं गिर नहीं जाऊं। यह बहुत अच्छी बात है। मैं जहां तक सोचता हूं ढलान पर व्यक्ति को बहुत सावधान होना चाहिए क्योंकि खतरा ढलान में ज्यादा है, चढ़ाव में नहीं। दूसरी तरफ विचार करने पर मन में दर्द भी होता है कि व्यक्ति द्रव्य रूप से गिरने में इतना सावधान है, पर भाव रूप से गिरने के प्रति सावधान नहीं है। गिरने पर हड्डी टूटना, चोट लगना, कपड़े खराब होना द्रव्य की हानि है। इसके प्रति आदमी सजग है किंतु भावों में, विचारों से गिरने के प्रति इतना सजग नहीं है, जबकि वह हानि जन्मों-जन्मों को बिगाड़ने वाली है।

अभी आप आचार्य श्री उदयसागर जी म.सा. के समय की घटना सुन रहे थे। आचार्य श्री उपालम्भ दे रहे थे। मुनि सुन रहे थे, पी रहे थे। यह बहुत स्पष्ट बात है कि जो व्यक्ति दु:खों को पी सकता है, उसको अमृत को पीने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। समझ लो कि उसने अमृत पी लिया। जो व्यक्ति दु:खों को नहीं पी सकता है, वह अमृत पी भी लेगा तो वह अमृत कुछ भी फायदा करने वाला नहीं है। हम आज उस एक बिंदु को लेकर खड़े हैं, एक तराजू लेकर खड़े हैं। उस तराजू के एक पलड़े में आचार्य श्री उदयसागर जी म.सा. के उन संत को रखते हैं और दूसरी तरफ हम अपने आपको रखते हैं तो क्या अंतर लगेगा? क्या अंतर लगेगा? (प्रत्युत्तर– रात और दिन का) रात और दिन में क्या अंतर है? रात और दिन के फर्क को हम समझ रहे हैं?

एक उदाहरण दे रहा हूं। समझ लीजिए कि उन संत के विचारों को हम एक पलड़े में रखें, जिनका वजन 50 किलो है और दूसरे पलड़े में हम अपने विचारों को रखें, तो वह कितने किलो तक पहुंच पाएगा? कहना बहुत कठिन है।

ये जमाना इतने ह्रास की ओर बढ़ रहा है कि हम आज उदयसागर जी महाराज के संत से अपनी तुलना नहीं कर पा रहे हैं। आचार्य श्री उदयसागर जी म. सा. की दूसरी जन्म शताब्दी चल रही है। यह घटना लगभग डेढ़ सौ साल पहले की है। सवा सौ-डेढ़ सौ साल में कितना अंतर आ गया? सवा सौ साल की बात छोड़िए, दस-बीस साल में कितना अंतर आ जाता है।

इस अंतर का कारण क्या है? व्यक्ति द्रव्य रूप से तो बड़ा संभलकर चलता है किंतु भावों से अपने आप को नहीं संभाल पा रहा है। भाव से नहीं संभल पा रहे हैं। भावों से उसकी दशा क्या हो रही है, उस पर यदि कोई शोध करे तो उसे लगेगा कि शांति और समाधि केवल कागजों में लिखी हुई मिलेगी। ये जीवन में आने वाली चीजें नहीं हैं। शांति और समाधि जीवन का अंग है या कागजों का अंग है? वर्तमान में जब दृष्टि दौड़ाते हैं तो लगता है किसे कहें शांति और समाधि? शांति का स्वरूप क्या है? जहां देखो, वहां तनाव। जहां देखो, वहां अशांति।

इस तनाव का कारण क्या है? कारण देखो तो कुछ भी नहीं है। पर है भी। इसको ऐसे समझिए। एक कपड़ा लगभग 20 इंच का है। फैला देने से लंबाई दिख रही है। इसमें यदि 2-4 गांठें लगा दी तो क्या कम हो गया? क्या इसका वजन कम पड़ जाएगा? इसको तौलेंगे तो क्या वजन कम पड़ जाएगा? इसमें घटा कुछ भी नहीं। कपड़ा जितना था, उतना ही है। हम देखते हैं कि वजन वही है, आकार-प्रकार में कुछ घटा नहीं है फिर भी बहुत घट गया। आप नहीं समझ पा रहे हैं कि क्या घटा, और क्यों घट गया? गांठें पड़ गई हैं ना, वही घटाने वाली है। वह घटा देती है। जीवन के सारे सुख को, आनन्द को, वे गांठें पी जाती हैं। व्यक्ति जीवन का आनन्द नहीं ले पाता है और गांठें हरी-भरी होती जाती हैं। मजबूत होती जा रही हैं। कुछ नहीं बदला किंतु बहुत कुछ बदल गया।

'देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान,
कितना बदल गया इनसान, कितना बदल गया इनसान।

चांद न बदला, सूरज न बदला, ना बदला रे आसमान,
कितना बदल गया इनसान, कितना बदल गया इनसान॥

बताओ, क्या बदला? आकार-प्रकार वही है, आंखें वहीं की वहीं हैं। कान वहीं हैं। नाक वहीं है। हाथ वहीं है तो फिर क्या बदल गया? आज से सौ साल पहले आंखें कहां होती थीं? वहीं होती थीं जहां हमारी हैं। ऐसा नहीं है कि पीछे की तरफ थी आंखें? युग के और जमाने के आधार पर बदलाव नहीं आया। आकार-प्रकार वही है। यह हो सकता है कि हाइट में कमी आई हो या मोटाई में फर्क पड़ गया हो, किंतु इनसान वैसा ही है। हम देख रहे हैं कि आकार-प्रकार में कोई फर्क नहीं पड़ा है। आंखें वहीं हैं, नाक वहीं है, कान वहीं है, फिर भी कहते हैं कि 'कितना बदल गया इनसान, कितना बदल गया इनसान।' कितना बदल गया? जो चीजें बदलनी चाहिए थीं, वे नहीं बदलीं और जिनको नहीं बदलना चाहिए था, वे बदल गईं। समता, सहिष्णुता को नहीं बदलना था। वह बदल गई किंतु मनुष्य में जो गांठें थीं, वे गांठें हैं या खुल गईं? वे तो बनी हुई हैं। सब यह देख रहे हैं कि क्या परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन से व्यक्ति अशांत ही हुआ होगा, उसे शांति नहीं मिली होगी।

गांठ पड़ने से कपड़ा घटा नहीं किंतु सिकुड़ जरूर गया है। लंबाई, चौड़ाई, आकार-प्रकार में घटा नहीं किंतु सिकुड़ जरूर गया। वह सिकुड़ता रहेगा। ये स्थिति जब हम देखते हैं तो लगता है कि आदमी गिरने से, फिसलने से इसलिए सावधान रहता है कि कहीं कपड़े खराब न हो जाएं। हड्डी नहीं टूट जाए। चोट नहीं लग जाए। हॉस्पिटल में जाना नहीं पड़ जाए।

एक दिन की बात है या कुछ दिनों की बात है। या कुछ महीनों की बात है। कपड़े खराब हो गए तो पानी से धुल जाएंगे। साबुन लगाकर कपड़े साफ हो जाते हैं। इसमें थोड़े रुपये खर्च होंगे कोई बात नहीं। किंतु यदि भाव बिगड़ गए, भावों में गिरावट हो गयी, भावों से पतन हो गया तो हमारी दशा क्या होगी? तो हम कहां रहेंगे? कितने जन्मों तक उनका प्रभाव, कितने जन्मों तक उसका असर रहेगा?

एक बार सम्राट समरादित्य की कहानी पढ़ रहे थे। गुणसेन, राजकुमार और अग्नि शर्मा की कहानी है। वो कहानी बताती है कि एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ और पूरे नौ भवों तक दुश्मनी चलती रही। गुणसेन के मन में दुश्मनी नहीं थी किंतु अग्नि शर्मा ने गांठ बांध ली। उसने

ऐसी गांठ बांधी कि यह राजा मेरे साथ हमेशा दुर्व्यवहार ही करता है। बचपन में दोनों के बीच हँसी-मजाक में थोड़ी कुछ बात हो जाया करती थी। तब गुणसेन, अग्निशर्मा को परेशान कर देता था। फिर समय निकला, गुणसेन राजा बन गया और अग्निशर्मा तपस्वी बन गया। वह तपस्या करने लगा। राजा को मालूम पड़ा। राजा उसको निमंत्रण देने के लिए गए कि इस बार का पारणा मेरे यहां पर होना चाहिए। अग्निशर्मा ने मना किया तो वे कहने लगे कि मेरे प्रति इतना अनुग्रह अवश्य करें। अग्निशर्मा ने कहा कि ठीक है, तुम्हारे यहां पारणा करेंगे। पारणे का प्रसंग था। तपस्वी निकले और चूंकि निमंत्रण था और वहीं जाना था तो दूसरी जगह जाने की आवश्यकता नहीं थी। उनकी ऐसी प्रतिज्ञा थी कि एक जगह जाने के बाद दूसरी जगह नहीं जाना है। एक जगह खाना मिल जाए तो ठीक नहीं मिले तो वापस लौट आना है।

वे तीन बार राजा के यहां पारणा करने के लिए गए, किंतु हर बार घटनाएं ऐसी घटी की पारणा नहीं हुआ। एक बार गए तो घर में लंबे समय के बाद पुत्र-रत्न की प्राप्ति होने पर खुशियां मनायी जा रही थीं। उस खुशी में किसी का ध्यान उस तपस्वी की ओर नहीं गया। तपस्वी इंतजार करता रहा। लोगों ने कहा कि यहां से हट जाओ। उसको हटा दिया और वह वहां से चला गया। राजा को मालूम पड़ा, तो वह तपस्वी के पास जाकर क्षमा याचना करता है और फिर उसको पारणे का निमंत्रण देता है। तपस्वी ने भी उसको स्वीकार कर लिया कि ठीक है, संसारी जीव हैं, भूल जाते हैं। प्रमाद हो जाता है। दूसरी बार गया तो राजा के सिर में भयंकर वेदना हो रही थी। सारे लोग उनके उपचार में जुट गए। सब लोग उसी दौड़-भाग में लगे थे। तपस्वी आया किंतु कोई भी उसको पूछने वाला नहीं मिला। तपस्वी वापस लौटकर चला गया। तीसरी बार फिर राजा गया, फिर उसने जाकर क्षमा याचना की और कहा कि गुरुदेव को इस बार भी निमंत्रण को स्वीकार करना ही पड़ेगा। तपस्वी कहता है कि ठीक है कोई बात नहीं। तीसरी बार भी तपस्वी जाता है किंतु उस दिन भी घटना घट गई। किसी दूसरे पड़ोसी राजा ने आक्रमण कर दिया और सबका ध्यान उधर था।

अनुच्छेद 370 हटने पर लोग सब बातें भूल गए। लोग तेजी, मंदी, ये-वो सब भूल गए। क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, सब भूल गए। दिमाग में कौन-सी बात रह गई! अभी लोग किधर देखते हैं? अभी भी अखबार

में सबसे पहले कौन-सी न्यूज पढ़ते हैं? टीवी पर भी पहले क्या देखने जाएंगे? कल ईद हुई तो देखें कि कश्मीर में क्या हुआ? वही बात दिमाग में रही या नहीं रही? हो सकता है समय नहीं मिला हो और नहीं देख पाए हों वह बात अलग है। किंतु दिमाग में वही बात रही और दिमाग दूसरी तरफ से हट गया।

वैसे ही गुणसेन राजा पर दूसरे राजा का आक्रमण हुआ तो सबका ध्यान उधर चला गया। सब लोग उसमें लग गए। तपस्वी आया और फिर वापस चला गया। खाली हाथ चला गया। दो बार में कुछ नहीं हुआ किंतु तीसरी बार में राजा की पुरानी आदत याद आ गई कि ये मुझे परेशान करना चाहता है। बचपन में भी परेशान करता था, आज राजा बन गया फिर भी परेशान करने की आदत है। मुझे निमंत्रण देता है और पारणा कराता नहीं है। पारणा हुआ नहीं तो तीन महीने की तपस्या हो गई। एक मासखमण, दूसरा मासखमण और फिर तीसरा मासखमण हो गया। मतलब 90 दिन की तपस्या हो गई और पारणा एक बार भी नहीं हुआ। अब उसको क्रोध आने लगा। राजा फिर आया और क्षमा याचना करने लगा। अब क्षमा करने की जगह वह आग बबूला हो रहा है। कुछ बोलना चाह रहा है पर क्रोध से कुछ बोल नहीं पा रहा है।

तीसरी बार भी पारणा नहीं होने पर उसके मन में एक गांठ बंध गई कि राजा वैसा ही व्यवहार कर रहा है। अब उसे समाधि नहीं मिल रही है। शांति नहीं मिल रही है। तपस्या अभी भी चल रही है किंतु शांति नहीं रही। पहले तपस्या में मन प्रसन्न रहता था, अब वह प्रसन्न नहीं रह गया। उधर राजा में कोई फर्क नहीं आया। उसकी भक्ति में कोई फर्क नहीं आया। परिस्थितियां ऐसी आ गईं जिससे राजा भूल गया कि तपस्वी को उसने निमंत्रण दिया है।

इसे कुदरत की बात समझें या कोई होनहार समझें। कुछ भी हो सकता है। किंतु राजा की मानसिक स्थिति वैसी नहीं थी कि उसको परेशान किया जाए। हो सकता है कि पहले कोई बात हुई हो, आपस में खेल-कूद में कभी हँसी-मजाक में परेशान करते रहे हों, किंतु अब परेशान करने की बात नहीं थी। फिर भी अग्निशर्मा के मन में वैसी गांठ बंध गई कि राजा ने मुझे परेशान करने के लिए ये सारा खेल किया है। अब कितना भी राजा समझाए कि मैंने ऐसा कोई खेल नहीं खेला है। मेरी परेशान करने की भावना नहीं थी। मैंने ध्यान नहीं रखा, भूल गया यह मेरी गलती थी। मेरे सामने

परिस्थितियां ऐसी थीं। लेकिन अब वह किसी भी परिस्थिति को समझने के लिए तैयार नहीं है।

मैंने सोचा वह सही है। राजा कहे कि परिस्थितियां ऐसी थी, वह कहेगा यह तो नाटक है। यह बहाने की बातें हैं। वो विश्वास नहीं करेगा क्योंकि विश्वास खिसक गया।

मैंने एक जगह लिखा है कि जिस दिन विश्वास खिसकेगा, उस दिन विश्व खिसक जाएगा। मेरी दृष्टि में यह सही है। दुनिया विश्वास पर टिकी हुई है। माता-पिता, सारे रिश्ते-नाते विश्वास पर टिके हुए हैं। विश्वास हट जाए तो कुछ नहीं टिकेगा। पूरे विश्व से विश्वास को हटा दो तो ये पूरा विश्व ढह जाएगा। ये विश्व नहीं रहेगा। विश्व को रखने वाला विश्वास है। जब तक हमारा विश्वास है, तब तक बहुत कुछ बचा हुआ है। जिस दिन विश्वास ढह गया, उस दिन हमारे भीतर बहुत बड़ा रूपांतर हो जाएगा।

चांद न बदला, सूरज न बदला, ना बदला रे आसमान,
कितना बदल गया इनसान, कितना बदल गया इनसान॥

ये बदलाव कैसे आया? विश्वास हटा, मन में गांठ पड़ गई। अब ऐसे में न तो वहां विश्वास पैदा हो रहा है और न गांठ खुल रही है। यही दशा जीवन की रही तो क्या मिलेगा?

नहीं प्रभु से प्यार तो फिर क्या पाएगा,
रोना है बेकार छूट सब जाएगा।

सब छूट जाएगा, किंतु ये गांठ नहीं छूटेगी। परमात्मा की सेवा और भक्ति में आ गए हैं फिर भी यह गांठ नहीं खुली तो कब खुलेगी? पर्युषण भी आ रहे हैं। रक्षाबंधन भी आ रहा है। ये पर्व इसलिए हैं कि हमारे भीतर की गांठें खुल जाएं किंतु ऐसे प्रसंगों पर हम गांठ को और खींचकर मजबूत कर लेते हैं। ऊपर से तो हम दिखाते हैं कि गांठ खुल रही है किंतु भीतर में गांठ को और मजबूत करने की आदत है। बाहर से दिखाते हैं ये देख लो, वो देख लो। किंतु जब तक चश्मा लगा रहेगा तब तक नजर वही रहेगी। चश्मा जब तक नहीं उतरेगा, तब तक मेरी आंखों को वही नजर आएगा। यदि मेरी आंखों में मोतिया आ गया तो मुझे कोई चीज एक नहीं दिखेगी। हर चीज अलग-अलग टुकड़ों में या भिन्न-भिन्न प्रकार से दिखेगी। अब मैं कहूं कि चीज के टुकड़े हो गए तो चीज के टुकड़े हो गए हैं या आंखों में मोतिया आ

गया? जब तक आंखों का आपरेशन नहीं होगा, वह मोतिया बना रहेगा और मुझे कोई भी चीज सही नजर नहीं आएगी। चीज नहीं बदली है, किंतु मेरी आंखों में मोतिया आने से मेरी दृष्टि बदल गई है। दृष्टि जब तक बदली हुई रहेगी तब तक मुझे सारी की सारी चीजें बदली-बदली नजर आएंगी। स्वाभाविक है कि चीजें सही रूप में नजर आ ही नहीं पाएंगी।

आचार्य पूज्य गुरुदेव का एक लक्ष्य रहता था कि हमने साधु जीवन लिया है, हमने संयमी जीवन को स्वीकार किया है तो हमारे भीतर समाधि रहनी चाहिए। समाधि बनी रहे उसके लिए वे महामना बड़े सजग रहते थे। कभी किसी की बीमारी की हालत या किसी भी विशेष परिस्थिति जैसी कोई स्थिति होती तो गुरुदेव स्वयं पहुंचते और उनके कार्य को स्वयं करने लगते। उनका प्रतिलेखन करना या सिर पर हाथ फेरना या जो भी कार्य होता था वे स्वयं करते थे। मैं यदि श्री शांति मुनिजी म.सा. की बात कहूं तो उनका यह फरमाना रहता था कि हमारे भीतर कैसा भी तनाव रहा हो, उत्तेजना आ जाती हो किंतु गुरुदेव के पास जाते ही, गुरुदेव के चरणों में माथा रखते ही, उनका हाथ सिर पर आते ही वे सारी चीजें गायब हो जाती। सारी चीजें साफ हो जाती। ऐसा कई बार उनका फरमाना रहा है। ये अलग बात है कि जिस समय आदमी की दृष्टि बदल जाती है, उस समय वह सही रूप से सृष्टि को नहीं देख पाता है।

आचार्य श्री को कभी प्रतिलेखन या अन्य सेवा का कार्य करते हुए संत नहीं करने का निवेदन करते तो वे कहते थे कि अरे भाई! तुम लोग तो करते ही रहते हो। मेरे को मौका कहां मिलता है? आप लोगों को तो रोज ही मौका मिलता है, मुझे भी तो लाभ लेने दो। इतना प्रेम भरा वाक्य होता, वात्सल्य से भरा वाक्य होता कि साधु सारे दुःख-दर्द भूल जाएं। उसका ध्यान ही हट जाए कि मैं बीमार हूँ। उसका ध्यान गुरुदेव के वचन सुनने में चला जाता कि गुरुदेव क्या फरमा रहे हैं? गुरुदेव जो फरमा रहे हैं वह गांठें खोलने का रास्ता है। विश्वास बढ़ाने का रास्ता है। यदि विश्वास बढ़ता है तो भीतर की ग्रंथियां खुल जाती हैं। फिर हमारे भीतर जो बदलाव आएगा, वह बदलाव आएगा समता का। वह बदलाव आएगा सहिष्णुता का। वह बदलाव आएगा श्रद्धा का। वह बदलाव आएगा समर्पणा का। यह बदलाव आएगा और वह गांठें खुलने लगेंगी। अथवा यों कहें कि गांठें खुल जाएंगी तो यह बदलाव आ जाएगा।

प्रभव चोर की गांठ खुल गई है। उसने कह दिया कि आगे से मैं कभी चोरी नहीं करूंगा। आप घर में रहें, मैं आपका दास बनकर आपकी सेवा में रहूंगा। क्या जम्बू जी को सोच लेना चाहिए कि ठीक है मैं दीक्षा लूं तो क्या मिलेगा? गृहस्थ में रहूंगा तो प्रभव के कारण पांच सौ चोर सुधर रहे हैं! या सुधर जाएंगे। अब क्या दीक्षा का विचार छोड़ देना चाहिए और गृहस्थ में रह जाना चाहिए जम्बू को?

जम्बू जी के घर में रहने से जो अनादि काल से विषयों का सेवन किया है, क्या उन विषयों का और सेवन करने से अभिलाषा मिट जाएगी, अभिलाषा पूर्ण हो जाएगी? नहीं हो पाएगी। यदि शांति को पाना है, समाधि को पाना है तो अभिलाषा का त्याग करना पड़ेगा। अभिलाषा का त्याग होगा तभी समाधि मिल सकती है। जम्बू ने प्रभव से कहा, कि तुम्हारा कहना है कि ये उतावलापन है। मैं कुछ दिन और गृहस्थ अवस्था में रहूं। तुम्हें लग रहा है कि उतावला हो रहा हूं। किंतु मुझे तो लग रहा है कि गृह त्याग में बहुत विलंब हो गया है। मुझे यह विलंब भी बहुत बड़ा विलंब लग रहा है। मनुष्य जीवन, उत्तम जीवन है। यह उत्तम भव है। इस मनुष्य जीवन में ही शक्ति के द्वार खुलते हैं और खुले हैं। अन्य भवों में हो सकता है कि शारीरिक बल मिल जाए। हाथी को मनुष्य से भी ज्यादा बल मिला। आप से या हमारे से ज्यादा मिला है और चक्रवर्ती और वासुदेव से और तीर्थंकरों से हाथी का बल ज्यादा है। हम सामान्य बात ही कर लेते हैं। हमारे को जितनी शक्ति मिली है उससे कई गुणा ज्यादा बल हाथी में है। ये शारीरिक शक्ति भले ही मिल जाए, बल भले ही मिल जाए किंतु सोचने-समझने की क्षमता किसको ज्यादा मिली है? मुझे आज ही एक विचार आया था। विचार यह था कि, इतनी सारी बुद्धि होते हुए भी आदमी भाव पतन से क्यों नहीं बच पाता है। लोगों में समझ नहीं है ऐसा भी नहीं है। समझ है, किंतु समझ पर कुछ आवरण आ जाता है। आवरण अपनी पकड़ का, अपने अहं का। यही आवरण समझ पर हावी हो जाता है। हमारी समझ पर धूल चढ़ जाती है। परतें चढ़ जाती हैं धूलि की।

जम्बू कुमार को जो समझ मिली वह इस जन्म में मिली। इसलिए थोड़े समय तक गृहस्थ में रह जाएं, उसके बाद मुनि जीवन को स्वीकार कर लें प्रभव की इस बात को वे कैसे स्वीकारें? इस क्षण भंगुर जीवन में आज का ही भरोसा नहीं है, तो कल का भरोसा कौन करे? कोई बात मान भी ले किंतु आने वाली मौत को कौन रोक सकता है?

कोई मौत नहीं चाहता है। 'सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं' सारे जीव जीना चाहते हैं। किसी को मरने का नाम भी सुहाता नहीं है। कोई आपको कह दे कि आप कब मरोगे तो आपको अच्छा लगेगा या बुरा लगेगा? कोई बीमार है, शय्या पर लेटा हुआ है, अस्पताल में है आप जाकर बोलो, तुम्हें अब मर जाना चाहिए। मर जाना ठीक है अब। फिर जवाब क्या होगा? वह कहेगा कि क्यों मर जाने की बात कह रहे हो तुम? डॉक्टरों की कमी आ गई क्या? बीमारी में सोया हुआ है, भले ही वह मन में विचार कर रहा हो कि भगवान्! उठा लें तो अच्छा है। किंतु दूसरा आदमी आकर कह दे कि मर जाओ, तो अच्छा नहीं लगेगा। तपस्या का पारणा करने का कहे तो बहुत अच्छा लगता होगा। किंतु कोई कह दे कि आप भी तपस्या में आगे बढ़ो तो....? खुद बढ़ के देखो, मुझे कह रहे हो तपस्या में बढ़ो। कोई कहे कि आपके 30 हो गए हैं तो अब 31 की ओर बढ़ो तो मन में विचार आएगा कि तुम एक ही करके तो देखो। हमारा जवाब क्या रहेगा?

आप विचार करो, ये बातें बड़ी छोटी हैं। किंतु ये छोटी बातें भी हमारे मन में खोट भर देती हैं। हमारा मन खिन्न हो जाता है। यह जन्म मिला है, आनन्द मिला है, वह आनन्द भी हमारे हाथ से चला जाता है।

थोड़ा विचार करें तो सद्बुद्धि और समझ जो अभी पैदा हुई है, वर्षों बाद पता नहीं वह रहेगी या नहीं रहेगी? ये सद्बुद्धि चली गई तो फिर क्या होगा! इसलिए शुभस्य शीघ्रम्। भावी के भरोसे बैठे रहना समझदारी की बात नहीं है। क्योंकि कितने ही प्रसंग हाथ से निकल जाते हैं और फिर वह चीज नहीं रह पाती है। प्रमाद के कारण से इस चेतना ने बहुत दुःख भोगे हैं। नरक आदि की गतियों में बहुत दुःख भोगा है फिर भी उनका अंत नहीं आ रहा है।

यदि कोई वैभव की बात करे तो जान लो कि वैभव भी शरणभूत नहीं है। यह साफ है कि धनी को भी, काल की रात आती है। उसकी भी मृत्यु होती है। जम्बू चारित्र में शहद बूंद का एक उदाहरण दिया है।

इस उदाहरण रूप जयचंद की कहानी बहुत बार सुनी होगी। पूरी कहानी बहुत लंबी है। संक्षेप में कहता हूं, रात को वह भटक गया और दूसरी तरफ चला गया। सुबह अकेला पड़ गया। एक हाथी उसके पीछे पड़ गया और वह दौड़ता हुआ एक पेड़ की शाखा को पकड़ उससे लटक गया। उसने देखा कि हाथी को गुस्सा आ रहा है और वह पेड़ को भी उखाड़ने की कोशिश कर

रहा था। उसने नीचे देखा कि अजगर मुंह खोले खड़े थे कि कब वह नीचे गिरे और कब वे उसको चट कर जाएं। हाथी पेड़ को उखाड़ने में लगा था और जिस टहनी के सहारे वह लटक रहा था उसको दो चूहे काट रहे हैं। वह बड़ी दुविधा में था। उधर हाथी के हिलाने से पेड़ पर मधुमक्खियों के छत्ते को रगड़ लगी और उसमें छेद हो गया जिससे शहद की एक बूंद टपकी और उसने ऊपर देखा। तो जैसे ही उसने देखा वह शहद की बूंद उसके होंठ पर गिरी। उसने होंठ पर जीभ घुमाई, कहा 'आहा! बहुत मीठा है, बहुत मीठा है।' उसकी दृष्टि अब किस पर लगी है? अब उसकी दृष्टि न हाथी पर है, न अजगर पर, न चूहों पर और न गुस्साई बिफरी मधुमक्खियों पर और न ही टहनी पर है। चूहे काट रहे हैं, हाथी पेड़ को उखाड़ रहा है। पता नहीं टहनी कब कट जाएगी और पेड़ कब उखड़ जाएगा? मधुमक्खियां भी काट रही है। पर शहद...

'घटते घटते घट जाएगी, तेरी रे उमरिया'

हमारी आयु निरंतर घट रही है। डिवाइडर के पाइप जैसा मोटा रस्सा है वह भी धीरे-धीरे काटते-काटते, कट जाएगा? पूरा रस्सा कट जाएगा या नहीं कट जाएगा? और कभी एकदम कम रह गया तो थोड़ा-सा झटका लगेगा। उस झटके में 'राम-नाम सत्य है, सत्य से (सभा-मौन है)। जयचंद कहता है आहा, आहा क्या कहना है! जयचंद का ध्यान उधर नहीं है। इतने में देवदूत का, विद्याधर का एक विमान आया। उसकी पत्नी कहती है कि देखो! वह व्यक्ति कितना दुःखी है। इसको सुखी कीजिए। वे उसके पास जाते हैं और कहते हैं कि तुम्हारी जिंदगी खतरे में है। आओ, तुम हमारे साथ चलो। तुम जहां कहोगे तुम्हें वहां छोड़ देंगे। जयचंद ने कहा कि बस चलने को तैयार हूं। एक बूंद शहद टपकने वाला है, वह टपक जाए तो चलता हूं। इतने में बूंद टपक गई। उसके मुंह में आ गई। देव ने कहा कि अब बूंद आ गई अब तो चलो। उसने कहा कि हां, लेकिन बस वो एक बूंद तैयार हो रही है और बस टपकने ही वाली है। वो आ जाए फिर चलते हैं।

ऐसे में कई बूंदें आ गईं फिर भी वह कहता रहा कि एक बूंद आ जाए। बहुत बूंदें आ गई तो भी प्यास बुझी नहीं। कितनी बूंदें और आ जाएं? एक बूंद और आ जाएगी तो क्या तृप्ति हो जाएगी? उसको तृप्ति मिल पाएगी? संसार के मनुष्यों की यही दशा है। एक बूंद सुख की चाह है। आदमी सोचता

है कि बस अब एक पोता हो जाए। पोता हो गया तो फिर पोते के लिए यह कर लूं, वो कर लूं। ये इच्छाएं लगी रहती हैं। अभी बेटा हुआ है, थोड़ा बेटा बड़ा हो जाए। उसको पढ़ा-लिखा लूं। फिर शादी कर दूं। शादी हो गई तो अब पोता हो जाए बस, फिर तो निवृत्त होना ही है।

ये संसार है। इसमें जो आया है, वह जाएगा। ये संसार असार यहां जो आया है वो जाएगा। जिसने जन्म लिया है वह बचेगा नहीं? किंतु हम हट रहे हैं, खिसका रहे हैं। करूंगा, करूंगा, करूंगा। बम्बकी जी? बापजी– मन में सोच लिया है कि दीक्षा तो एक बार लेनी ही है।

फिर कब लोगे, क्या मरने के बाद भूत बनकर लेंगे? क्या मृत्यु नहीं आएगी? क्या उससे दोस्ती बना रखी है। उसको कह रखा है कि बिना मेरी मरजी के न आए। विल पॉवर से कह सकते हैं कि दीक्षा लूंगा। किंतु कब लेंगे? ये तो बता दो कि कब लोगे? कहना आसान है तो कह देते हैं। महाराज को राजी रखना आसान है तो कह दिया, कि महाराज! दीक्षा तो लूंगा। महाराज भी राजी हो गए कि ये दीक्षा लेने वाला है। वैरागी है। मिन्नी जी! दीक्षा लूंगा यह बात याद है या भूल गए? कब तक याद रहेगी? महीने दो महीने? (प्रत्युत्तर– आजीवन!)

कोई भाई बोल रहा है, आजीवन याद रखूंगा। मतलब मन की बात खुल गई। जो भीतर में है बाहर आ ही जाता है। आजीवन याद रखेंगे कि दीक्षा लेनी है। इसका अर्थ समझ में आ रहा है या नहीं? आजीवन याद रखेंगे कि दीक्षा लेना है! इसे याद रखेंगे आजीवन! यानी लेनी तो है ही नहीं। वह जयचंद कह रहा है एक बूंद और। वह कितनी बूंदों से तृप्त हो जाएगा? ऐसे तृप्ति होने वाली नहीं है। देव ने भी बहुत देर इंतजार किया फिर सोचा इसके इंतजार का अंत नहीं है। इसकी तृष्णा का अंत नहीं है। जैसे वह व्यक्ति उस सुख के सागर को छोड़कर केवल भोगों के पीछे, उस बूंद के पीछे लगा हुआ है, वैसे ही हमारा मन लालायित होता जा रहा है। इसलिए भोगों के पीछे आसक्त बने पड़े हैं। एक बूंद और आ जाए। बस एक बूंद और। इस उदाहरण को मानव पर घटित करते हुए बताया है कि जयचंद की तरह संसारी जीव है। शहद बूंद की तरह संसार की आसक्ति, लोभ-लालच है। हाथी, मोर, अजगर चार गतियां, शाखा जिंदगी, चूहे रात-दिन, मधुमक्खियां परिवार। इन सबको लोभ-लालच आसक्ति से संसारी जीव भोगता रहता है। सारी

कठिनाइयों को झेलता रहता है। देवदूत की तरह संत-गुरु भगवन्त हैं। वे रक्षा का उपदेश देते हैं। मार्ग दिखाते हैं। पर संसारी जीव यदि जयचंद की तरह विषय भोग रूपी लोभ-लालच में ही रह जाए तो उसे संसार भ्रमण से कौन रोक सकता है? उस जयचंद के विषय में आपसे पूछें तो आप उसे मूर्ख ही कहेंगे पर आप स्वयं कहां खड़े हैं? क्या कर रहे हैं? विचार करेंगे तो स्पष्ट हो पाएगा।

आज भी कुछ श्रावक मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रहे हैं। हम भी उनसे प्रेरणा लें। अपने जीवन को धन्य बनावें।

13 अगस्त, 2019

12

जलता जाए बोध दीप

'णाणस्स सत्वस्स मगासणाए'

ज्ञान को प्रकाशित करो, प्रकट करो। एक दीया तेल से भरा है, बाती भी लगी है लेकिन प्रकाश नहीं है। एक तीली को माचिस से रगड़कर बाती से लगाने से प्रकाश प्रकट हो गया। प्रकाश दीये के भीतर था या माचिस में? प्रकाश कहां था? (प्रत्युत्तर–माचिस में) इस सवाल से हम दुविधा में पड़ गए।

माचिस में प्रकाश कहां था। रगड़ से पैदा हुआ। तीली उससे रगड़कर बाती से लगाई गई। तीली थोड़ी देर में बुझ जाती है लेकिन दीया लंबे समय तक जलता है। तीली लंबे समय तक नहीं जलती है तो वह प्रकाश किसमें था? प्रकाश दीये में था, उस बाती में था, उस तेल में था। उसमें वह ताकत थी जिससे प्रकाश पैदा हो गया। यदि उसमें ताकत नहीं होती तो प्रकाश नहीं होता। अब दूसरी बात करते हैं, दीया में बाती लगी हुई है लेकिन उसमें तेल के स्थान पर पानी भरा हुआ है। तीली को रगड़कर हमने कितनी बार ही उस बाती को लगाया किन्तु उसमें प्रकाश नहीं होगा। दीया वैसा ही है। बाती वैसी ही है। केवल तेल बदल गया। तेल की जगह वहां पानी आ गया। पानी आने से वहां प्रकाश प्रकट नहीं हो रहा है। प्रकाश पैदा नहीं हो रहा है। तीसरी बात करते हैं। दीया, बाती, तेल सब है किन्तु तेल में पानी मिला हुआ है। अब वहां प्रकाश तो हो रहा है किन्तु बीच-बीच में व्यवधान खड़ा होता है। चड़-चड़ की आवाज आती है। जब भी जलीय अंश आता है उसमें चड़-चड़ की आवाज आती है। जितना तेल का भाग पहुंचा है उससे प्रकाश हो रहा है किन्तु जहां-जहां पानी का अंश आएगा वहां थोड़ा डिस्टर्ब-अवरोध पैदा करेगा।

ये तीन अवस्थाएं हमारे सामने हैं। हमारी मनःस्थिति भी वैसी ही तीन तरह की हो गई है। एक शुद्ध तेल की भांति, जिसमें ज्ञान प्रकट होते हुए देर

नहीं लगती है। उसमें ज्ञान का प्रकाश प्रकट होते हुए देर नहीं लगती है। पानी वाले दीये में प्रकाश क्या आ पाएगा? पानी वाले भाग में प्रकाश प्रकट नहीं हो पाएगा। तीसरी में पानी और तेल दोनों का मिश्रण है। उसमें प्रकाश प्रकट तो होगा किन्तु एकदम स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हो पाएगा। हमारा अहंकार, हमारी ईर्ष्या, हमारा द्वेष, उसको बाधित करता रहेगा।

अब व्यक्ति को विचार यह करना है कि उसे कौन-सा प्रकाश पसंद है? उसे कौन-से दीये में तूली लगानी चाहिए? पानी वाले में लगानी चाहिए या तेल वाले में? जिस तेल में पानी मिला हुआ है, उसमें या खाली तेल वाले में लगानी चाहिए? (सभा– तेल वाले में) आप बोल रहे हैं कि तेल वाले में लगानी चाहिए। हमारी पसंद, हमारी च्वाइस सबसे उत्तम है। प्रायः करके हम अच्छे पदार्थ को ही पसंद करते हैं।

लड़के की शादी के लिए लड़की को देखने के लिए गए। बहुत कुछ गुण मिले लड़की में, किन्तु एक दुर्गुण लगा कि लड़की छोटी-छोटी बातों पर मुंह फुलाकर बैठ जाती है। ऐसी लड़की को पसंद नहीं करेंगे। लड़की का हर बात पर मुंह फुलाना पसंद नहीं आएगा। इसी तरह लड़की के लिए लड़के को देखने के लिए गए। उसमें बहुत सारे गुण हैं किन्तु एक बात सामने आई कि लड़का ड्रिंक (शराब) करता है। ऐसे में आप पसंद करेंगे? नहीं करेंगे। बहुत सारे गुण हैं फिर भी एक छोटा सा दुर्गुण बहुत से गुणों पर पानी फेरने वाला हो जाता है।

इसी तरह मन का एक छोटा सा द्वंद्व हमारे जीवन की पूरी शांति और समाधि का हरण करने वाला हो जाता है। लकड़ी में लगे दीमक से लकड़ी खोखली हो जाएगी क्योंकि दीमक के पीछे दीमक, दीमक के पीछे दीमक, दीमक के पीछे और दीमक आएंगी। द्वंद्व का यह दीमक हमारे मन को खोखला कर देता है।

भगवान् कहते हैं कि ये 'अट्टे लोए परिजुण्णे' भावों से व्यक्ति का मन जीर्ण हो जाता है, परिजीर्ण हो जाता है। और परिजीर्ण होता है तो बीच-बीच में छेद हो जाते हैं। बीच-बीच में उसमें से चीज झलकने लग जाती है। उसमें यदि कोई वजन वाली चीज रखो और कपड़ा गला हुआ होगा तो कपड़ा फट जाएगा। उस चीज को झेल नहीं पाएगा। भगवान् कहते हैं कि ऐसे मन में धर्म नहीं टिक सकता। 'दुसंबोह, अविजाणए' उसको बोध मिलना मुश्किल है। उसे बोध की झलक नहीं मिलेगी। ज्ञान की झलक नहीं मिल पाएगी। उसमें क्षमता ही नहीं है। उसे समझ में ही नहीं आ रहा है तो वह बात

उसके ऊपर से निकल जाएगी क्योंकि उसके दीये में या तो पानी भरा हुआ है या फिर तेल और पानी मिले हुए हैं। उसमें तेल की मात्रा कम और पानी की मात्रा ज्यादा है। इसलिए वह बोध को प्रकट नहीं कर पाएगा।

हम अपने आप को सौभाग्यशाली मानते हैं कि हमें बोध मिला। मैं चैतन्य हूं ऐसा हमें बोध मिला। कम-से-कम हम इतना जानने लग गए कि आत्मा और शरीर भिन्न है। यह अनुभव हुआ या नहीं हुआ? किंतु कुछ लोग नहीं जान रहे हैं कि ये शरीर और आत्मा एक है या आत्मा और शरीर भिन्न है? उसे समझना चाहिए कि कपड़ा और मैं एक ही है या अलग है? हम कहेंगे तो क्या कहेंगे? यह कपड़ा मेरा है। यह कपड़ा मैं ही हूं, ऐसा नहीं कहेंगे। यह मैं हूं। यह कपड़ा मेरा है।

एक बच्चा परिजनों से विलग हो गया। उसे सभा के बीच लाकर पूछा गया यह बच्चा किसका है? जिसका था वह सामने आया और कहा कि यह बच्चा मेरा है। मेरा और मैं दोनों अलग हैं या नहीं हैं? शरीर कहता है कि यह मैं हूं या मेरा शरीर है? ये हाथ किसका है? मेरा। जिसमें मेरा का संबंध है, वो मैं नहीं हूं। उसके साथ मेरा रिलेशन है। उसके साथ मेरा जुड़ाव है। उसके साथ मेरा संबंध है। किन्तु मैं नहीं हूं।

संबंध किन्हीं दो पदार्थों या दो से अधिक के बीच होते हैं। एक से अधिक का संबंध होता है, अकेले में संबंध नहीं है। अकेले में मैं ही होगा, मेरा नहीं होगा। एक से जब अधिक होगा तो मेरे का भाव जुड़ेगा और जब एक ही है तो फिर उसमें मेरे का भाव नहीं जुड़ेगा। इससे हमको यह बोध मिला कि शरीर और आत्मा भिन्न है।

ऐसे समय में हमको क्या करना चाहिए? दीये को जलते रहने देना चाहिए या दीये को फूंक मारकर बुझा देना चाहिए? बुझा देंगे तो अंधेरे में चले जायेंगे। पहले भी अंधेरे में थे फिर अंधेरे में चले जायेंगे। यदि दीये को जलते हुए रखा और सही दिशा में गमन किया तो मंजिल तक पहुंच जायेंगे।

एक जंगल में एक महात्मा या कोई संन्यासी रहता था। दो व्यक्ति, दो व्यापारी, अकाल आदि के कारणों से, आजीविका की कठिनाइयों से गांव से निकले और विचार किया कि दूर-दराज जाकर कुछ पैसे कमाएंगे। इज्जत वाला आदमी इज्जत से गांव में रहता है और जब पैसे की स्थिति गड़बड़ा जाती है और इज्जत दावं पर लगने जैसी स्थिति होती है। लोगों में इज्जत के

कांकरें होने लग जाए तो उसे लगता है यहां से बाहर जाना ठीक है। यहां रहकर इस रूप में जीना उचित नहीं है। वे विदेश के लिए रवाना हो जाते हैं। वे दोनों व्यापारी भी रवाना हो गए। संयोग से वे दोनों उस संन्यासी तक पहुंच गए। उस संन्यासी ने दोनों को आर्त भावों में देखा। उस दीन-अवस्था में उन्हें देख उसे लगा कि क्षुधा से भी पीड़ित हैं। तो उसने कहा, आप लोगों को क्षुधा भी लगी होगी? यहां कुछ खाना पड़ा है, पानी भी है। उन्होंने खाना खा लिया, पानी पी लिया। खा-पीकर वे उस महात्मा के समीप बैठ गए। महात्मा ने कहा– लगता है धन की टोह में, धन कमाने के लिए घूम रहे हो। दोनों ने संन्यासी के पांव पकड़ लिये और कहा– भगवान्! आप से क्या छिपा है? आप तो घट-घट के ज्ञाता हैं। अन्तर्यामी हैं। आपने ठीक जाना। उसके पास में दो टॉर्च थीं, जिसे उसने उन दोनों को देते हुए कहा कि देखो भाई, तुम दोनों उत्तर दिशा में चले जाना। बीच में गुफा आएगी गुफा में इस टॉर्च का प्रयोग करना। इसके प्रकाश का प्रयोग करना किन्तु ध्यान रखना कि गुफा में इधर-उधर रास्ते निकलेंगे। उन रास्तों की तरफ देखना मत। उन रास्तों की तरफ समय लगाना मत। सीधे चले जाना। तुम जहां पहुंचोगे वहां रत्नों के ढेर मिलेंगे। वहां रत्न ही रत्न मिलेंगे। तुम जितना लेना चाहो, ले सकते हो और ऐसा करके अपनी दरिद्रता को धो सकते हो। संन्यासी ने पुनः चेताया ध्यान रखना गुफा में कई लुभावने दृश्य आएंगे उनमें मन को लुभाना मत। यदि लुभा गए तो भटक जाओगे। उस स्थिति में वापस सत्पथ दुष्कर है। कठिन है।

दोनों लोग चले। एक व्यक्ति उस संन्यासी के कहे अनुसार केवल सामने देखकर चल रहा है और दूसरा व्यक्ति कभी इधर तो कभी उधर देखता है। इधर-उधर देखते हुए उसने एक रास्ता देखा। उस रास्ते में सोने की चट्टानें पड़ी हुई थीं। उसने सोचा कि संन्यासी ने हमारे साथ छल किया, कपट किया। उसने कहा था कि गुफा में इधर-उधर मत देखना। उसे लगा कि इस रास्ते में सोने की चट्टानें पड़ी हैं इसलिए उसने देखने से मना किया। उसने दूसरे व्यक्ति से कहा, कि देख भाई, इधर देख। संन्यासी ने हमारे साथ छल किया है। इधर सोने की चट्टानें पड़ी हुई हैं। पहला व्यक्ति कहता है कि तुम देखा-देखी में मत पड़ो। अभी गुफा में सामने की तरफ मुंह किए हुए चलो। जैसा उस संन्यासी ने कहा है, वैसा करो।

दूसरा व्यक्ति बोला कि यह छलावा है। इतना सारा सोना यहां पर है, यह बात उसने नहीं बताई। पहला व्यक्ति बोला, तुम पंचायती मत करो।

जैसा संन्यासी ने बताया, वैसा चलना ही ठीक रहेगा। दूसरा व्यक्ति बोला कि तुम जाओ, मैं ऐसे छल-कपट करने वाले लोगों का भरोसा नहीं करता और वह उस रास्ते पर चला गया। दूसरा व्यक्ति सीधे-सीधे गया और जैसे गुफा पार हुई उसकी टॉर्च बंद हो गई। उसमें उतना ही मसाला था। उतनी ही क्षमता थी या तेल था कि वह गुफा को पार कर सके। उसके बाद मसाला खत्म हो गया और उसने देखा तो गुफा के बाहर रत्नों का ढेर लगा हुआ है। उनकी ज्योति, उनका प्रकाश इतना है कि टॉर्च की जरूरत ही नहीं है।

उसने विचार किया कि 'अति लोभो न कर्तव्यं, चक्री भवति मस्तके।' अर्थात मुझे ज्यादा लोभ नहीं करना चाहिए। अति लोभ नहीं करना चाहिए। अति लोभ करने से दिमाग चक्री हो जाता है, फिर व्यक्ति अनिर्णय में चला जाता है। उसका दिमाग घूमते-घूमते रह जाता है। वह डिस्टर्ब हो जाता है। इसलिए नीतिकारों ने बहुत अच्छी बात कही है कि 'अति लोभो न कर्तव्यं' कि ज्यादा लोभ नहीं करना चाहिए। यह बात हमारे लिए सही नहीं है। हम तो लोभ में ही जी रहे होते हैं। आपसे एक बात पूछूं कि 24 घंटों में कितनी देर लोभ के संस्कार आपके मस्तिष्क में नहीं रहते हैं। कितने घंटे ऐसे हैं जब लोभ के संस्कार आपके मस्तिष्क में नहीं रहते हैं? रात में सोते हुए, नींद में भी क्या होता है? नींद में कौन-सा टॉपिक हमारे दिमाग में चलता रहता है? नींद में भी कौन-सा विषय चलता रहता है? ये बताओ कि आज तक किसी को भी नींद में सपना आया या नहीं आया? कोई है जिसको एक बार भी सपना नहीं आया? हाथ खड़ा करेंगे कि किसी को आज तक सपना नहीं आया हो किसी भी प्रकार का। एक को भी नहीं? ऐसा कोई नहीं है जिसको कभी कोई सपना आया ही नहीं।

अब यह बताओ कि ऐसा सपना किस-किस को आया कि मैं साधु बन गया हूँ? किसी को नहीं आया? आप कह रहे हो कि सपने में साधु को देखा है। मैं कह रहा हूं ये बताओ कि किसी को ऐसा सपना आया क्या कि मैं साधु बन गया? किसी को नहीं आया? क्यों नहीं आया? इसलिए नहीं आया क्योंकि हमने दिमाग में सोचा ही नहीं कि मुझे साधु बनना है। माला तो बहुत फेरी नमो अरिहंताणं की लेकिन कभी सोचा नहीं कि अरिहंत बनूंगा। (प्रत्युत्तर– भावना है) समझ में आता नहीं है कि भावना क्या है? नमो अरिहंताणं बोलते हुए कितनी बार भाव आते हैं कि अरिहंत बनूं? तेल का दीया काम आएगा या पानी का दीया? मन के दीये में यदि पानी भरा हुआ हो तो क्या काम आएगा? पानी भरा हुआ है मतलब राग-द्वेष, मोह-

माया बनी हुई है। मेरा-तेरा भरा हुआ है, तो वह दीया काम नहीं आएगा। फिर अरिहंत बनने का सोचना बेकार है। दीया पानी का लेकर चल रहे हैं तो नमो अरिहंताणं क्या काम आएगा? अगर हम बोलते हैं नमो अरिहंताणं तो वह ऊपर-ऊपर से निकलता है। भीतर घुसा ही नहीं। ये शब्द ऊपर से निकलते हैं, भीतर घुसे नहीं हैं। आप बोलते हो आरंभ-परिग्रह अल्प हो वह भीतर से निकलता है, भीतर घुसता है या बाहर ही रह जाता है? भीतर नहीं घुसता है, वह तो बाहर का बाहर ही रह जाता है। भीतर घुसे तो मालूम पड़े कि मुझे साधु बनना है। मुझे आरंभ-परिग्रह का त्याग करना है। बोलने में बोलते हैं कि आरंभ-परिग्रह का त्याग कर दूं किन्तु आज यदि मौका मिले तो आरंभ-परिग्रह को बढ़ाने में ध्यान लगेगा या घटाने में? (प्रत्युत्तर– घटाने में)

कौन बोला? खड़े हो जाओ। जसराज जी! आज से दुकानदारी बंद, धंधा बंद। आपको पहले भी एक बार कहा था कि चार महीने तक समता भवन में ही रहना है और इस पंडाल में ही रहना है। भोजनशाला और इस पंडाल के अलावा कहीं नहीं जाना है। कोई संसार का काम नहीं करना है। यहीं पर रहना और किसी वाहन का प्रयोग नहीं करना है पर क्या हुआ? क्या समता भवन में बस गए? आरंभ-परिग्रह का त्याग करके बताते। केवल कहने से नहीं होगा। कहना बड़ा सरल है। करना दुष्कर है। धन्ना जी जैसे कुछ लोग ही होते हैं जो करने की दिशा में गतिशील होते हैं। कहने के, सुनने के शूरवीर तो बहुत हैं। सुन-सुनकर कान पका लिया और बोल-बोल कर के, क्या पड़ा है संसार में? बोलते हैं, अरे भाई! कुछ नहीं पड़ा है इस संसार में।...तो किसलिए पड़े हो इस संसार में। क्या पड़ा है संसार में...। फिर किसलिए पड़े हो यहां। कुछ भी नहीं है तो आ जाओ हमारे साथ। तब हम जान पाएंगे कि आप सच में जान रहे हो कि क्या पड़ा है संसार में? बात सपने की चल रही थी। धन के सपने तो आए होंगे। संत बनने का सपना नहीं आया। यह क्या दर्शाता है? मन-मस्तिष्क में, धन ही धन चक्कर लगाता रहता है। इसलिए वह रात को नींद में भी दिखता रहता है। दिमाग एक क्षण के लिए भी शायद ही लोभ से मुक्त हो पाता है। जर्रे-जर्रे में लोभ भरा है। धन के भाव भरे हैं।

अभी विदेह मुनि जी बता रहे थे कि 100 रुपये में मॉल से इतना सामान ले लिया कि गाड़ी करनी पड़ी। लोडिंग गाड़ी करनी पड़ी। मॉल से सामान लाने के लिए गाड़ी इसलिए किराये पर लेनी पड़ी क्योंकि उसने तो मॉल से इतना सारा सामान ले लिया! हमने क्या लिया? हम देखते ही रहे या कुछ लिया भी?

समझ लो कि शोरूम भरा हुआ है। अलमारी भरी हुई है। शो-केश भरा हुआ है। उसके आगे एक ग्लास लगा हुआ है। सारी चीजें दीख रही हैं। दीख तो रही हैं किन्तु मिली क्या? सारी पेटियां बंद हैं। आप ग्लास को खिसकाओ तो वह खिसकता नहीं है। हाथ भी अन्दर की तरफ जाता नहीं है। उसमें आपको दिख तो रहा है लेकिन हाथ में कुछ नहीं आ रहा है। हमारी दशा लगभग वही है। देख रहे हैं, सुन रहे हैं कि हमको मान नहीं करना है, क्रोध नहीं करना, हिंसा नहीं करनी, परिग्रह नहीं रखना। ये सारी चीजें दीखती तो हैं किन्तु हाथ में आती नहीं हैं। इसलिए हाथ नहीं आ रही है क्योंकि ग्लास लगा हुआ है। ग्लास जब तक हटेगा नहीं, तब तक वह चीजें सिर्फ दीखेंगी। केवल देख ही सकते हैं, पा नहीं सकते। शरीर और आत्मा की भिन्नता को भी केवल जाना-सुना है, अनुभव नहीं हो पाया है। यदि अनुभव हुआ होता तो उसका उपयोग भी होता। जो बोध प्रकट हुआ है, पैदा हुआ है उस बोध का उपयोग भी होना चाहिए।

जो व्यक्ति संन्यासी के बताए हुए रास्ते पर चल रहा था वह पहुंच गया। कौन-सा? दो मित्र चले थे ना? एक तो गली कहूं या कुछ भी उसमें घुस गया और दूसरा व्यक्ति गुफा के पार पहुंच गया। जो गुफा के पार पहुंच गया उसे रत्न दिखे। उनमें से कुछ रत्नों को लेकर वह निकल गया। अब उसको टॉर्च की जरूरत ही नहीं है। उन रत्नों की इतनी रोशनी है, इतना प्रकाश है कि उस गुफा में अपने आप ही रोशनी हो गई। वह व्यक्ति संन्यासी के पास पहुंचा और उसका आभार प्रकट किया। संन्यासी ने पूछा कि तुम्हारा दूसरा मित्र कहां है? तो उसने सब कुछ बताया और पूछा कि उसका मित्र कब आ पाएगा? संन्यासी ने कहा कि उसका इंतजार मत करना। उसका इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है। उसका इंतजार करना बेकार है। वह तुम्हें अब मिलने वाला नहीं है। यह एक रूपक है। इस उदाहरण, इस घटना से जो भी समझ लो।

इस रूपक से सार क्या लेना है? लाभ क्या उठाना है? इससे बोध क्या पाना है? यह मनुष्य जीवन एक टॉर्च के रूप में है। मनुष्य जीवन वह रोशनी देने वाला टॉर्च है, जिससे संसार रूपी गुफा को पार किया जा सकता है। पार कर लोगे तो लाभ मिलेगा। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन का लाभ मिलेगा, जिससे कभी भी तुम्हारी जिंदगी में अंधेरा नहीं आएगा। दूसरा व्यक्ति सोने की चमक में पड़कर गुफा पार नहीं कर पाया और वह गुमनामी में चला गया।

चार गति, 84 लाख जीव योनि हैं। बाह्य समुद्र में कोई व्यक्ति गिर जाए और बचाने वाला कोई रक्षक मिल जाए तो हो सकता है कि वह बच

जाएगा, समुद्र से निकाल लिया जाएगा किन्तु चतुर्गति संसार में खो गए, यहां से निगोद में चले गए, तो बोलो कि वहां से ढूंढ़कर लाने वाला कौन? निगोद में चले गए तो वहां से खोज कर लाने वाला कौन है? सुरेन्द्र जी सेठिया! इंद्रचंद्र जी सेठिया! कौन किसकी खोज करेगा? कौन किसकी पहचान करेगा? है कोई पहचान करने वाला? बोलो ना कोई है क्या जो पहचान कर सके? ज्ञानियों के ज्ञान में है, यह केवल ज्ञानियों के ज्ञान से ही पहचान हो सकती है। हमें अपने आपको स्वयं का ही बोध नहीं है कि मैं कौन हूं? निगोद में दीये का क्या हो गया? निगोद में चले गए, हमारे बोध का वह दीया बुझ गया। एक बार निगोद में चले गए तो वापस यह बैटरीयुक्त टॉर्च, मनुष्य जीवन मिलने का भरोसा नहीं है। अनंत काल बीतने पर भी मनुष्य भव मिल गया तो समझ लो कि वह हमारा सौभाग्य है। वह हमारा सौभाग्य है क्योंकि श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन के अनुसार वनस्पति काय में गये हुए व्यक्ति का अनंत काल तक कोई पता नहीं पड़ता। कब वापस मनुष्य जन्म मिलेगा कोई पता नहीं है।

फिर क्या करना चाहिए हमें? विचार करो कि हमें क्या करना चाहिए? क्या इधर-उधर संसार की गलियों में निकल जाना चाहिए या इस संसार-गुफा से पार हो जाना चाहिए? जो गुफा से पार हो जाएगा, वह अपने जीवन को धन्य बनाने वाला बन जाएगा। इस गुफा की गलियों में भटक गया तो इन्हीं 84 लाख योनियों में भटकेगा। कितनी बार अप्काय, कितनी बार निगोद में और कहां-कहां गया? कहां-कहां घूमा? ऐसी कौन-सी जगह है जिसका इस आत्मा ने स्पर्श नहीं किया। आज तक हमारी आत्मा इसी प्रकार से कर्मों के थपेड़े खाती रही है। क्या अब भी इन्हीं कर्मों के थपेड़े खाते रहेंगे? क्या इन्हीं राग-द्वेष, दोष की गलियों में घूमते रहना है? सोचो, विचार करो कि हमें क्या करना चाहिए?

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी महाराज साहब का जीवन अपने आप में बहुत सधा हुआ था। वे एक छोटे-से गांव में जन्मे किन्तु भावना जगी, दीया जला लिया। दीया जलाने वाला कौन होता है? छोटे गांव वाला या बड़े गांव वाला? (प्रत्युत्तर– छोटे गांव वाला) आप बोल रहे हैं कि छोटे गांव वाला। क्या बड़े गांव वाला नहीं? फिर तो आप जोधपुर वाले दीया नहीं जलाते होंगे क्योंकि बड़े गांव के हैं! दुर्ग वाले भी बड़े गांव के हैं तो वे भी दीया नहीं जलाएंगे! हम लोग दूसरों के दीयों के प्रकाश में जीने वाले

हैं। हम अपना दीया क्यों जलाएं? अपना तेल कौन खर्च करे, महंगे भाव का तेल है। दूसरों का दीया जल रहा है तो हम क्यों दीया जलाएं? रोड लाइट लग रही हैं तो घर में लाइट हम क्यों लगाएं?

आप लोगों ने निर्णय दिया कि छोटे गांव वाले दीया जलाएंगे। किंतु छोटे गांव वाला हो या बड़े गांव वाला, दीया किसी का भी जल सकता है। अन्यथा अंधेरे में जीते रहेंगे। हमारे भीतर स्फुरणा होनी चाहिए। दीया जलाएं या मिथ्यात्व के अंधेरे में जीते रहें। आचार्य देव आचार कुशल, प्रवचन कुशल, संयम कुशल, प्रज्ञप्ति कुशल थे। स्वयं की साधना में कुशल आचार पलवाने का ही उनका लक्ष्य नहीं था। वे स्वयं भी ध्यान की बहुत साधना करते थे। वैसे भगवान् का मार्ग पूरा ध्यान ही है फिर भी व्यक्ति थोड़ी देर के लिए अपनी ऊर्जा को संग्रहित करने का प्रयत्न करता है। वह इतनी संग्रहित हो जाती है कि दीर्घकाल तक उसका प्रभाव उसके जीवन पर बना रहता है।

घटना दुर्ग की है। गुरुदेव दुर्ग पधारे। अठारह अक्टूबर उन्नीस सौ सड़सठ की घटना है। बोथरा जी! बताओ क्या घटना थी? बोथरा जी कहेंगे कि मेरे जन्म के पहले की बात है? मैं पूछता हूं, मैं दुर्ग में मौजूद था क्या? अच्छा यह जानते हैं क्या कि नाना गुरु ने बचपन में किस बुढ़िया का घड़ा उठाया था? यह जानते हो क्या कि श्री नानालाल जी ने दीक्षा किनसे ली थी? (प्रत्युत्तर– गणेशाचार्य से दीक्षा ली) उस समय पू. गणेशाचार्य ने चश्मा पहना हुआ था या नहीं था? यह एक मेमोरी टेस्ट है। उस समय मालूम नहीं, सोच में पड़ जाएंगे कि चश्मा पहना हुआ था या नहीं था? मैं यदि यह पूछ लेता कि दीक्षा देते समय उनके सिर पर साफा लगा हुआ था या नहीं था? आप बहुत ही जल्दी से बोल देते कि साफा नहीं लगा हुआ था। इसलिए मैंने पूछा चश्मा लगा हुआ था या नहीं? आप सोच में पड़ गए। हमारे जन्म के पहले की कुछ बातें भी सुनी, पढ़ी जानी हुई हैं। 'गहरी पर्त के हस्ताक्षर' पढ़ लेते तो आपको कहना नहीं पड़ता कि मेरे जन्म से पहले की बात है। हमें मालूम नहीं है। आप इसका जवाब दे देते। 18 अक्टूबर 1967 की घटना है। 'पिछली रात्रि को 5:40 बजे के लगभग गणित का चिन्तन करते हुए पाट से नीचे उतरते हुए अन्तर आभास का दृश्य अपूर्व था। प्रथम तो उज्ज्वलता ऐसी लग रही थी, जैसे प्रकाशपुंज में से धूम जड़ मूल से अलग हट रहा हो। इससे महसूस हुआ कि मिथ्यात्वादि विकार

जड़मूल से उखड़ गए हों और सर्व विकारी प्रवृत्तियां धुएं के रूप में लगने लगीं। तदनन्तर विचार हुआ कि वस्तुतः आत्मा की दशा इस प्रकार से आगे बढ़ती है। संत जो पढ़ाई कर रहे हैं, वह भी आवश्यक है। पर इन संतों की योग्यता बढ़ जाए तो आंतरिक पढ़ाई उससे भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अतः इसके लिए एक विधान पद्धति का आंतरिक कोर्स तैयार कर उसके अनुसार आंतरिक अध्ययन करवाऊँ। इसके पश्चात् ऐसा भाषित होने लगा कि धूम्र रहित तीन-तीन हाथ के लगभग लम्बे और गोल खंभे के समान गोल छड़ जैसा प्रकाशपुंज का दृश्य आंतरिक स्थिति के सामने है।' उस समय नव दीक्षित संत भी थे। हम लोग योग्य नहीं रहे, जिस कारण से आचार्य देव की वह मनोकामना पूर्ण नहीं हुई। लंबे समय के बाद फलित हुई समीक्षण-ध्यान साधना के रूप में किन्तु जो होना चाहिए वह नहीं हुआ। हमारी पात्रता होती तो शायद बहुत कुछ प्राप्त हो जाता। किन्तु हम बहुत गलियों में घूमने वाले, गलियों में घुसने वाले थे। चंचलता और चपलता थी जिससे वह विद्या प्रकट नहीं हो पाई।

गाय के स्तनों में दूध होता है। दूध उसके स्तन में पड़ा रहता है। किंतु जब तक उसका बछड़ा सामने नहीं आता तब तक वह गाय पाउसती नहीं है। इंजेक्शन लगा देना अलग बात है किन्तु सहज रूप में गाय में क्या होगा? बछड़े को यदि गाय के पास छोड़ दो तो बछड़े के पास जाते ही पाउस जाएगी। बिना प्रयत्न किए गाय के स्तनों में दूध आने लग जाएगा। पहले स्तनों को कितना ही खींचा किंतु दूध नहीं आ रहा था पर जैसे ही बछड़ा सामने आया दूध आ गया। वैसे ही वह ज्ञान रूपी दूध गुरुदेव के वहां से नहीं निकल पाया। मैं यह समझ रहा हूं कि हमारी पात्रता नहीं होगी इसलिए प्राप्त नहीं हुई। हमारे भीतर पात्रता होती तो वह चीज हमें मिलती। हम वही पानी का दीया लेकर चल रहे होंगे। मेरा-तेरा लेकर चलते हैं, जिससे कर्मबंध के अलावा कुछ मिलने वाला नहीं है। आदमी के दिमाग में द्वंद्व चलता रहता है। जो पानी के दीये को लेकर चलता है और सोचता है मेरा दीया जल क्यों नहीं रहा है, मेरे दीये से प्रकाश पैदा क्यों नहीं हो रहा है, मेरा दीया सही है। अब भला अंधेरे में रहने वाले को क्या पता प्रकाश क्या होता है? द्वंद्व में जीने वाले को क्या पता निर्द्वंद्व का जीवन क्या होता है? पानी के दीये से प्रकाश प्रकट नहीं होने वाला। कोई कितना भी प्रयत्न कर ले, किसी के पास चला जाए, पानी के दीये से प्रकाश प्रकट नहीं होगा।

पहले हमें पात्र बनना चाहिए। हम पात्र होंगे तो मौका मिल जाएगा। हम देखते हैं, धार्मिक क्षेत्र में, धर्म के क्षेत्र में ऊहापोह, खींचतान हो रही है। कैसी जिंदगी है? कैसा जीवन जी रहे हैं? इससे क्या मिलेगा? क्या लेना है और क्या देना है? हमने क्या धर्म समझा है? हमने धर्म को समझा क्या है? सामायिक और पौषध में इनसे क्या लेना देना? फालतू के लड़ाई-झगड़े, कितनी उलझनों को दिमाग में भरे हुए हैं? हम उलझने वालों में से हैं या फिर सुलझने वालों में से हैं? हम वहां तक उलझ जाएंगे कि चैतन्य याद भी नहीं रहेगा। यदि चैतन्य में हो कि मेरा दीया बुझ न जाए, और बुझ गया तो फिर क्या होगा? फिर कहां जाएंगे? कहां कुछ गोते खाएंगे पता नहीं चलेगा। इसलिए जम्बू कुमार की तरह अपने दीये को जला लो।

मुझे याद आ रही है आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी महाराज साहब की एक बात। आचार्य श्री सरदारशहर में पंचमी के लिए पधारे। दूसरी तरफ से आचार्य श्री तुलसी का आगमन हो रहा था। संयोग से दोनों का मिलन हो गया। आचार्य श्री तुलसी ने आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. से गुजारिश की कि सरदारशहर में कितने घर हैं आपके? तो पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. ने पूछा, आपके कितने हैं? उन्होंने बताया कि मेरे 22 सौ (बाइस सौ) घर हैं तो आचार्य श्री गणेशलाल जी महाराज साहब ने कहा, उन 22 सौ के अलावा जितने भी घर हैं वे सब मेरे समझें। 22 सौ घर ज्यादा हुए या बाकी बचे हुए घर? ज्यादा कितने थे? मेरे घर कितने हुए? साधुओं को घर से क्या लेना देना भाई? मेरे घर, तेरे घर में क्या है? साधु तो जिस घर में जाएगा वह घर उसका हो जाएगा। साधुमार्गी के वहां ही गोचरी मिलेगी ऐसी बात नहीं है। जिस घर में जाएंगे वहीं गोचरी मिल जाएगी। ऐसा नहीं है कि माहेश्वरी समाज के घर में गोचरी नहीं मिलेगी या अग्रवाल या किसी अन्य समाज का घर है तो गोचरी नहीं मिलेगी। रामस्नेही का घर है तो गोचरी नहीं मिलेगी। ऐसी बात नहीं है। गोचरी किसी भी घर से ले सकते हैं। हम कहां से गोचरी लें, किस घर से लेना है या किस घर से नहीं लेना यह हमारे ऊपर है। हमारी मर्यादा हमें पता है।

यह अलग बात हो गई। किंतु भिक्षा के लिए हमारे लिए हर घर के द्वार खुले हैं। साधु के लिए भगवान् ने चार पात्र बताएं हैं। झोली चार कोण की होती है और दिशाएं भी चार हैं– उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम। हम जिस दिशा में जाएंगे, चारों दिशाएं हमारे लिए खुली हैं। हाथ में लियो है कांसो, तो

मांगण में काईं सांसो। हाथ में ले लिया मांगने का बर्तन तो जिस घर जायेंगे, खुला मिलेगा हमारे लिए। हर घर का द्वार हमेशा खुला मिलेगा। अब बताओ आप लोगों के पास ज्यादा है या साधु के पास? कहते हैं साधु अकिंचन् है। उसके पास क्या है? जो आपके पास नहीं है वो साधु के पास है।

दीया जलाने की बात हो रही थी। हमें विचार करना चाहिए कि हमें कौन-सा दीया जलाना है? तेल वाला दीया जलाना है या फिर पानी वाला दीया जलाना है? तेल वाला दीया जलाना चाह रहे हो तो देखो कि दीये में तेल है या नहीं है? देखो कि कहीं पानी मिला हुआ तो नहीं है? मेरे-तेरे का संबंध पानी ही तो है। यह मेरा-तेरा वाला पानी मिला हुआ होगा तो दीया कैसे जलेगा? कितना भी वसुधैव कुटुम्बकम् की बात कहो डिवाइडर तो डिवाइडर ही है। वह तो भेद करता है। आप डिवाइडर के भीतर हैं। हम खुले में हैं। वसुधा को कुटुम्ब बनाना है तो इस डिवाइडर के घेरे को दूर करें। यह डिवाइडर का घेरा दूर हो या न हो पर मन में तेरे-मेरे की जो दीवार खड़ी है उन्हें अवश्य दूर करो। उनको दूर करेंगे तो आत्मा को शांति मिलेगी। आत्मा समाधि को प्राप्त कर पाएगी, नहीं तो दिमाग घुलते रहेंगे। कितने भी तर्क कर लें जब तक हमारा दिमाग साफ नहीं होगा, यह घूमता रहेगा। हमारे ज्ञान धन को लीलता रहेगा। जैसे पेट में कीड़े पैदा हो जाने पर आदमी कितना भी खाता है रस कीड़ा ले लेता है? शरीर पस्त नहीं बनाना है क्योंकि कीड़े रस को हजम कर जाते हैं। सारी खुराक खा लेते हैं। शरीर का कीड़ा जब तक नहीं निकलेगा, शरीर नहीं बनेगा। इसी प्रकार मन का कीड़ा नहीं निकलेगा तो मन को चैन नहीं पड़ेगा। हमको समाधि नहीं मिलेगी। हमको सुख नहीं मिलेगा। हमको शांति नहीं मिलेगी।

इसलिए आप अपने आप में विचार करेंगे और हाथ आई मनुष्य जन्म रूपी टॉर्च का सही उपयोग कर लेंगे तो गुफा पार हो जाएगी। नहीं तो गुफा में भटक जाएंगे। सही दीया जलाएंगे तो आत्म बोध जगेगा। आप क्या करेंगे सोचें, विचार करें। साधुओं का धर्म है मित्र की भांति बता देना। आप उसमें से क्या लेंगे, क्या नहीं लेंगे, यह आपके ऊपर है। आप विचार करें और अपने जीवन को धन्य बनावें।

14 अगस्त, 2019

13

जय-जय भारत देश महान्

आज का प्रसंग आप सभी को ज्ञात होगा। आज कई प्रसंग हैं। एक प्रसंग है पक्खी का, दूसरा प्रसंग है राखी का, तीसरा प्रसंग है पन्द्रह अगस्त का और चौथा प्रसंग है श्रावणी पूर्णिमा का। चार प्रसंग एक साथ उपस्थित हैं। श्रावणी पूर्णिमा, पक्खी और रक्षाबंधन, तीन प्रसंग तो बहुत बार उपस्थित हो जाते हैं। लगभग 74 वर्षों में चौथी बार पन्द्रह अगस्त, रक्षाबंधन, पक्खी और श्रावणी पूर्णिमा– एक साथ चार प्रसंग उपस्थित हुए हैं।

पाक्षिक पर्व धर्म आराधना के लिए है। उसका भी संदेश है कि हम धर्म आराधना करते हुए आत्मरक्षा का प्रसंग उपस्थित करें। हमारी आत्मा जो कषायों में चली जाती है, राग-द्वेष की परिणिति में चली जाती है, उसे बचाना है। उसे रिवर्स होना है। लौटाना है। राग-द्वेष की प्रवृत्ति से हटाना है, दूर करना है। दूसरा प्रसंग श्रावणी पूर्णिमा के रूप में है। यदि इसकी बात करूं तो इसे वैदिक पर्व के रूप में माना गया है। आज के दिन को अति महत्त्वपूर्ण बताते हुए कहा गया है कि आज के दिन वेदों के अध्ययन-अध्यापन का प्रसंग रहता है। ऐसा बताया जाता है कि आषाढ़ी पूनम के दिन शिष्य, गुरु के पास जाता है। वह जाता है तब अज्ञान से भरा होता है और श्रावणी पूर्णिमा तक ज्ञान की ज्योति हासिल कर लेता है। उसके बाद गुरु से आशीर्वाद लेता है। गुरु वरदान देते हैं और वह शिष्य गुरु दक्षिणा के रूप में गुरु से प्रतिज्ञा करता है कि मैं जगह-जगह जा कर वेदों का, ज्ञान का प्रचार-प्रसार करूंगा। इसे गुरु और शिष्य के पर्व के रूप में मनाते हैं। गुरु ज्ञान देता है और शिष्य दक्षिणा के रूप में वेदों के प्रचार-प्रसार की भावना व्यक्त करता है।

रक्षाबंधन की प्रवृत्ति का जो इतिहास वर्तमान में चल रहा है उसके लिए बताया गया है लगभग आठ सौ वर्ष हुए होंगे। वैसे रक्षा के कार्य किसी भी दिन होते रहे हैं और हो रहे हैं। जब किसी देश पर चढ़ाई होती है तो किसी-

न-किसी के रक्षा के सूत्र मिले हैं। कई राजाओं ने जनता की सुरक्षा की, किसी ने किसी की रक्षा की तो किसी ने किसी की रक्षा की है।

ऐसे प्रसंग बहुत से बनते रहे हैं, मिलते रहते हैं। पर जिस प्रकार का रक्षाबंधन का संबंध भाई-बहिन के साथ जुड़ा हुआ है, उसका कोई ठोस आधार नहीं है। इसके पीछे रिजन क्या है। इसके पीछे क्या कारण है। स्पष्ट कह पाना कठिन है। मनुस्मृति में बताया गया है कि बाल अवस्था, कौमार्य अवस्था में स्त्री की रक्षा उसके पिता के द्वारा होती है। जवानी के समय पति के द्वारा और बुढ़ापे में उसकी रक्षा पुत्रों द्वारा होती है। वहाँ भाई-बहिन का कोई संबंध नहीं बताया कि भाई उस बहिन की रक्षा कब करे। इसका अर्थ यह नहीं कि भाई को रक्षा करनी ही नहीं चाहिए। भाई की जवाबदारी बनती नहीं हो, उत्तरदायित्व बनता नहीं हो, ऐसी बात नहीं है। भाई को भी रक्षा तो करनी है। किन्तु अपने पास जो सामग्री है उसके आधार पर बात करते हैं। जैसा जानने को मिला है कि भाई के रूप में और बहिन के रूप में यह रक्षाबंधन लगभग आठ सौ वर्ष पुराना है। उत्तर पुराण में येन बद्धो बलि राजा... श्लोक मिलता है। इसके अलावा कोई रूप रेखा मिलती नहीं है। जैन आगमों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। हालांकि विष्णु कुमार की कहानी रक्षाबंधन के प्रसंग से सुनाते हैं लेकिन वह कार्य रक्षाबंधन के दिन हुआ ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। उस दिन से रक्षाबंधन का प्रसंग चला हो ऐसा कोई हेतु, दृष्टान्त नहीं मिलता यह कि विष्णु कुमार ने मुनियों की रक्षा की थी, उस कारण से रक्षाबंधन चालू हो गया। कुल मिलाकर यदि अपन रक्षा की बात करते हैं तो भगवान् ने जो उपदेश दिया है वह सबसे उत्तम है। 'मित्ति मे सव्व भूएसु' जगत के सभी प्राणियों के साथ मैत्री भाव स्थापित करना। जगत के समस्त प्राणियों के साथ हमारा मैत्री भाव स्थापित हो जाता है तो सबकी रक्षा हो जाती है। फिर कोई किसी का शत्रु नहीं रहेगा। सारी दुनिया का खाका ही बदल जाएगा– न न्यायालयों की आवश्यकता रहेगी, न कानून की। फिर न कोई अपराधी होगा न पुलिस की आवश्यकता रहेगी, न सेना की आवश्यकता रहेगी।

इस प्रकार की कल्पना करने से हमें अनुभूति होती है कि जब सेना नहीं रहेगी, पुलिस नहीं रहेगी, अपराधी नहीं रहेगा, कानून नहीं रहेगा कायदे नहीं रहेंगे, न्यायालय नहीं रहेंगे उस समय हमारा समाज, हमारा राष्ट्र और हमारी जनता किस प्रकार से रहेगी? कैसा अनुभव करेगी? उस समय का अनुभव

कैसा रहेगा? (सभा– अनूठा, अहिंसावादी रहेगा) असंभव कुछ भी नहीं है। आज भी कई जगहों पर ऐसी स्थितियां बनी हुई हैं कि दुकान के बाहर लिखा मिलेगा कि किसी वस्तु को लेना हो तो गल्ले में पैसे डालो और जो चीज चाहिए वह ले जाओ। किसी भी आदमी की आवश्यकता नहीं है– सेल्समैन रहित। न कोई मोल है न कोई भाव-ताव हैं। जो पैसे लिखे हुए हैं, उसे डालिए और चीज हस्तगत कर लीजिए। ये ईमानदारी की बात है। ऐसा नहीं कि दुकान में कोई दिख नहीं रहा है तो झटपट जो भी लेना है ले लो। हो सकता है सुरक्षा की अपनी व्यवस्था रही होगी क्योंकि इलैक्ट्रॉनिक युग में विज्ञान की प्रवृत्ति ने बहुत सारे ऐसे उपकरण बना दिए हैं, जैसे अमुक अंगूठा लगाएगा तो दरवाजा खुलेगा और अंगूठे का जिसका निशान है उससे ही खुलेगा। कोई दूसरा खोल नहीं सकता, उससे ही खुलने वाला है। कोई घटना घटती है तो खोज होगी खोलने वाला है कौन? पूरे विश्व की जनसंख्या कितनी है आज तक की? (प्रत्युत्तर– सात अरब) सात अरब के लगभग पूरे विश्व की जनसंख्या है। ये जनसंख्या हमने मनुष्यों की मानी है। पशु-पक्षियों, कीड़े व अन्य जीवों-प्राणियों की संख्या गिनें तो बहुत हो जाएगी। हमारे पास उसका आकलन नहीं है। न संभव ही है। क्योंकि न कैलकुलेटर काम करेगा, न कम्प्यूटर काम कर पाएगा। ये आंकड़े हमें वे नहीं दे सकेंगे? अब दूसरी बात करता हूं– सात अरब मनुष्यों में एक समान अंगूठे का निशान किसी भी इनसान का नहीं होता है। किसी के भी एक समान अंगूठे के निशान नहीं होते हैं। सात अरब में कोई-न-कोई भिन्नता होगी। अंगूठा छापेंगे तो सात अरब प्रकार के अंगूठे मिल जाएंगे। सबके कोई-न-कोई भिन्नता होगी। क्या यह आश्चर्य नहीं है? एक छोटे से अंगूठे में इतनी क्या रचना है। क्या किया है, बोलो? इतना भारी अन्तर कि एक से दूसरे का, किसी का अंगूठा एक समान नहीं होगा। सरकारी कागजों पर केवल हस्ताक्षर नहीं करवाए जाते हैं, क्योंकि हस्ताक्षर नकली भी हो सकते हैं। विश्वास किस पर है? (प्रत्युत्तर– अंगूठे की छाप पर) अंगूठे की छाप पर विश्वास है, तो फिर हमें अंगूठा छाप होना चाहिए या पढ़ा-लिखा होना चाहिए? विश्वास किसका है? अंगूठे की छाप का। अंगूठे की जो छाप लगती है उस छाप का विश्वास है। इसका यह अर्थ मत ले लेना कि अंगूठा छाप तो बढ़िया है। हम तो अंगूठा छाप ही रहेंगे। यदि कोई अंगूठा छाप है तो भी दिक्कत नहीं क्योंकि वह कमाकर नहीं लाए ऐसी बात नहीं है। आज के युग में ऐसी बात आती है कि बिना पढ़े-लिखे

आराम से कमाकर खा रहे हैं। और एज्यूकेशन वाले?...एज्यूकेशन वाले तो लाइन में लगे हैं। उनको खाने के लाले भी पड़ रहे होंगे? ऐसा इसलिए कि उनके पास कमाने की दृष्टि एक ही है– जॉब करना, नौकरी प्राप्त करना। वे चाहते हैं केवल जॉब मिल जाए वह भी सरकारी जॉब। सरकार के मेहमान बन जाएं। वे सरकारी जॉब पर आधारित रहना चाहते हैं, इस कारण से पढ़-लिख लिए किन्तु पढ़े-लिखे होने के बावजूद रोजी-रोटी के लाले पड़ रहे हैं। ऐसा अनुभव किया होगा? आपने सुना होगा या न सुना हो हमने सुना है कि कम्पनी का मालिक अंगूठा छाप है और उसके मैनेजर, डाइरेक्टर, मैनेजिंग डाइरेक्टर हायर एज्यूकेशन वाले हैं। एकदम हायर एज्यूकेशन वाले लोग उस अंगूठा छाप के पास सर्विस कर रहे हैं, फिर महत्त्व किसका आ गया सामने? (प्रत्युत्तर– अगूंठा) मूल बात अंगूठा छाप की नहीं है। इसकी तह में जाएंगे तो उस व्यक्ति का कोई सत्कर्म रहा होगा जिसकी बदौलत उसकी पुण्य-वानी फली है और पुण्य फलने से अंगूठा छाप होकर भी अरबों की सम्पत्ति का मालिक बना हुआ है। बिना पुण्य योग के अंगूठा छाप भी गलियों में भटकते हुए मिलेंगे। यहां पर जब बात करते हैं पुण्य योग की, तो प्रश्न होता है कि पुण्य-वानी का अर्जन किससे होता है? उसका अर्जन सत्कर्म करने से होता है और आज के दिन की दृष्टि से विचार करें तो उसका संबंध सत्कर्म से जुड़ा हुआ है। रक्षा का भाव सत्कर्म के अंतर्गत आता है। किसी भी प्राणी की रक्षा की जाए, किसी प्राणी की रक्षा की भावना अच्छा कर्म माना गया है। सत्कर्म के अंतर्गत इसे स्वीकार किया गया है।

पौराणिक काल में रक्षा के स्वरूप को दर्शाने वाली एक कथा इस प्रकार भी है। दानवों ने जब देवों से युद्ध ठान दिया तब इन्द्र, दानवों से युद्ध करने के लिए तत्पर हुए। जैन आगमों के आधार पर ऐसा फलित नहीं होता, किन्तु पौराणिक आख्यान के आधार पर कहते हैं कि दानवों ने देवों पर हमला बोल दिया और हमला बार-बार बोला जा रहा था। जैसे भारत और पाकिस्तान की बात आप समझ लो, वैसे ही दानवों ने देवों पर बार-बार हमले किए। हर बार मुंह की खाई फिर भी जिसकी नीयत युद्ध करने की होती है, लड़ाई करने की होती है वह अवसर देखता रहता है। मौका देखता रहता है और जब उसको ऐसा लगता है कि मैं सशक्त हो गया हूँ वह फिर से युद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसा बताया गया है कि दानवों की दृष्टि अमृत घट पर लगी हुई थी। उन्हें लगा कि देवों के पास अमृत घट है उस अमृत घट

को हम हथिया लें। वह अमृत घट हमारे हाथ में आ जाए। लड़ाई तो हो गई किन्तु आज तक वह अमृत घट दानवों को नहीं मिला। इस आख्यान पर विचार करें कि अमृत घट है या नहीं या यह कथा कल्पित है। कुछ भी समझ लो किन्तु एक बात बड़ी प्रेरणा देती है कि अमृत घट दानवों के हाथों में नहीं जाता है। दानव अमृत घट हस्तगत नहीं कर पाए। वह देवों की सम्पत्ति है। देव उन्हें कहा गया है जिनके दिव्य विचार होते हैं। अर्थात् अमृत घट दिव्य विचार वाले मनुष्य के पास हो सकता है। दिव्य विचार रखने वालों के पास हो सकता है। अपवित्र, मलिन, गंदे विचार रखने वाले लोग कभी भी अमृत घट को प्राप्त नहीं कर पाते। हम भी सुख-सुविधाएं खूब चाहते हैं और कभी पुण्य योग से किसी को मिल भी जाती हैं। नहीं मिलने पर हमारे मन में प्रतिस्पर्धा के भाव, ईर्ष्या के भाव जगते हैं कि उसको इतनी सम्पत्ति क्यों मिल गई? अमुक को इतना वैभव क्यों मिल गया? अमुक आदमी इतना मस्त और सुखी जीवन क्यों जी रहा है?

जब शालिभद्र की कथा पर विचार करते हैं तो वहाँ ऐसा कोई पात्र नहीं मिलता जिसके मन में शालिभद्र को लेकर ईर्ष्या के भाव पैदा हुए हों कि शालिभद्र को इतना वैभव कैसे मिल गया? क्यों मिल गया? ऐसा तो नहीं कि उस समय किसी के भीतर ईर्ष्या नहीं रही हो। सदा आबाद रही है– ईर्ष्या। ऐसा कोई काल नहीं रहा जिसमें ईर्ष्या नहीं हुई। युगलिक काल छोड़ दीजिए किंतु जिस समय हमने कर्म करने की प्रवृत्ति चालू की तब मनुष्यों के दिल में ईर्ष्या की भावना पैदा हो गई! किन्तु उस कथा में ऐसा कोई पात्र नहीं मिलता जिसके मन में शालिभद्र को लेकर ईर्ष्या पैदा हुई हो।

सेठ धन्नाजी की कहानी में उनकी जीवनी यह बताती है कि वहां पर द्वेष करने वाले, ईर्ष्या करने वाले और कोई थे या नहीं थे किन्तु उन्हीं के तीनों भाई उनसे ईर्ष्या करते थे। तीनों ने अपना एक ग्रुप बना लिया था। अच्छे लोगों की ग्रुपिंग होगी या नहीं होगी, बुरे लोग बहुत जल्दी ग्रुप बना लेते हैं। और उनकी ग्रुपिंग सख्त होती है। आतंकवादियों की ग्रुपिंग इतनी मजबूत है कि पूरा विश्व उनको नष्ट करने के लिए तैयार है– आतंक को समाप्त करने के लिए, जड़-मूल से नष्ट करने की भावना सारा विश्व रख रहा है किन्तु क्या उस पर कंट्रोल पा लिया? आप विचार करो! पूरा विश्व चाहे अमेरिका हो, रूस हो, जापान हो, जर्मनी हो, सभी की शक्तियां कम हैं। आतंकवादियों की संख्या कितनी है? मेरे खयाल से सारे विश्व की

जितनी सेना है उसका एक चौथाई हिस्सा भी न हो। मेरे को पूरा आंकड़ा मालूम नहीं है, आंकड़ा कहां से लाएं? सेना का आंकड़ा मिल सकता है, किन्तु आतंकवादियों का आंकड़ा नहीं मिलेगा। कई नए-नए पनप जाते हैं और बहुत मजबूत हो जाते हैं। जीवन की उनको कोई परवाह है ही नहीं, मरने के लिए तैयार हैं। यह भी एक प्रकार का उन्माद है। जुनून है और इसे धार्मिकता का पुट, रंग देने से वह उन्माद और गहरा हो जाता है। कुछ ग्रंथों में ऐसी बातें लिखी हुई है कि काफिरों को समाप्त करोगे तो जन्नत मिलेगी। वहां पहुंचने के बाद अप्सराएं मिलेंगी जो तुम्हारी बंदगी करेंगी। जहाँ ऐसे सब्जबाग दिखाए जाते हैं वहाँ आदमी सोचता है कि यहां पर ऐसी जिंदगी से क्या मतलब? क्यों न मर कर जन्नत को प्राप्त कर लूं। वह जन्नत जाने की राह ढूंढ़ता है। किन्तु यह ध्यान में रखिए इस प्रकार के कृत्यों से यदि जन्नत मिलने लगेगी तो वह जन्नत नहीं होगी, वह जहन्नुम ही होगा। क्योंकि वहां ऐसे लोग इकट्ठा होंगे तो सुख से जीवन जीना कैसे होगा? सत्कर्म करने वाला जन्नत को प्राप्त कर सकता है किन्तु किसी के प्राणों का हनन करना, लूटना-पीटना, मारना ये सारे कार्य, ये सारे कृत्य उन्मादी लोगों के हो सकते हैं– धार्मिक जीवों के नहीं। पुण्यवान लोग ऐसे कार्यों से अपने आपको बचाकर रखते हैं। दूर रखते हैं। वे सत्कर्म करने के लिए अपनी तत्परता रखते हैं।

मैं बात यह बता रहा था कि अमृत घट यदि विश्व में कहीं पर है तो कभी भी दानववृत्ति से प्राप्त नहीं होने वाला। दानव बनकर उस अमृत घट को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

एक पद कवि आनन्दघन जी का है–

गगन मंडल के अधबीच कुंआ,
जहां है अमी का वासा।
सगुरा होवे चख-चख जाए,
नगुरा जाए प्यासा॥
अवधू के है गुरु हमारा
जो इस पद का करे निवेरा॥

उन्होंने कहा, आकाश मण्डल के बीचो-बीच एक कुआँ है और उसमें अमृत भरा हुआ है। सगुरा अर्थात् जो गुरु से ज्ञान प्राप्त करके पहुँचता है

वह उस अमृत को चख लेता है। अमृत को प्राप्त कर लेता है। 'नगुरा जाए प्यासा' अपनी हेकड़ी से चलने वाला, अपनी मनमरजी से चलने वाला वह कितना भी चला जाए, कितना भी प्रयत्न कर ले, वह उस घड़े, कुएं के पास पहुँच भी जाए, किंतु प्यासा का प्यासा लौटेगा। उसके स्वाद को चख नहीं पाएगा। सोचिए यहाँ चिन्तन करने का मौका मिलता है कि नगुरा प्यासा जाएगा क्यों? जहां तक मैंने ये बातें सुनी हैं कि मोबाइल, कम्प्यूटर में कुछ ऐसे-ऐसे पार्ट हैं, कुछ प्रॉडक्ट हैं जिनको आप लॉक कर दो तो हर कोई खोल नहीं सकता। ऐसा कुछ है ना? आप लॉक कर दो, आप चाहो तो खोल लोगे किन्तु हैकर्स भी उस अमृत के कुएं को जहाँ अमी का वास है, अमृत का वास है, उस अमृत को चख नहीं पाएंगे। हैक करने वाले लोग निकल जाते हैं या नहीं निकल जाते हैं? अपने कम्प्यूटर का लॉक करने वाले बहुत सारे होंगे किन्तु हैक करने वाले भी होंगे। दुनिया उनसे सतर्क रहती है। वे किसी के मोबाइल को, किसी के डेटा को हैक कर सकते हैं किन्तु आराम और आनन्द की जिन्दगी नहीं जी सकते। सारे विश्व का डेटा हैक कर लें तो भी जो आनन्द प्राप्त होना चाहिए वह आनन्द प्राप्त नहीं कर पाएंगे। पहले तो यही समझ में नहीं आएगा कि गगन मंडल के अधबीच कुआँ कैसे है। यह गगन मंडल के बीच का भाग कौन-सा है?

अकबर-बीरबल की कहानियों में एक बात आती है कि अकबर को कभी-कभी सनक पड़ जाती थी और कोई-न-कोई प्रश्न करते और कहते, इसका जवाब दो। अब सारे प्रश्नों के जवाब देना किसी के हाथ की बात है क्या? किन्तु उसकी पुण्यवानी का योग था कि उसे एक आदमी, बीरबल ऐसा मिला था कि अकबर कैसा भी उलटा-सीधा प्रश्न खड़ा करता उसका माकूल उत्तर दे देता अर्थात् अकबर के प्रश्न का उत्तर उसके अनुसार देता और अकबर को माकूल उत्तर मिलता था।

एक बार की बात है अकबर के मन में विचार पैदा हो गया कि पूरी धरती के बीचोबीच का जो स्थान है वह मुझे चाहिए। सारे लोग दुबक कर बैठ गए और कहने लगे कि यह तो बीरबल ही बता सकता है। लोगों को तो मौका मिलना चाहिए कि बीरबल को कब फंसाया जाए? लोग उतावले हो रहे थे कि बीरबल कब फांसी पर चढ़े इसलिए बीरबल का नाम ले लिया। अकबर ने पूछा बीरबल से कि जवाब दो पूरे जमीन के बीचोबीच का हिस्सा कौन-सा है?

आप से मैं पूछ लूं कि धरती के बीचोबीच का हिस्सा कौन-सा है? हो सकता है भारत के बीचोबीच का हिस्सा निकाल लें। भारत का मध्यम भाग कौन-सा है उसे निकाल सकते हैं। किन्तु पूरी धरती के बीचोबीच का भाग कौन-सा है? हालांकि आगमों का विचार करूंगा तो इस जंबू द्वीप के बीच का, सारे लोक के बीच में रहे मेरु पर्वत के मध्य भाग को हम बता देंगे। यह आगम की बात है। किन्तु अकबर ने पूछ लिया कि धरती के बीचोबीच का स्थान कौन-सा है? लोग कहने लगे, हुजूर! बीरबल, हुजूर बीरबल, बीरबल, बीरबल। बीरबल कहने लगा, हुजूर तैयार हूं, एकदम तैयार हूं पर इसके लिए खर्च बहुत आएगा। आप बताओ, राजकीय प्रकल्प की कोई भी एक परियोजना उसमें कितना खर्च आता है? जैसी परियोजना वैसा खर्च होगा। एक सरकार के द्वारा वह परियोजना पूरी होनी है और कोई दूसरी प्राइवेट कम्पनी उसी परियोजना को पूर्ण करेगी तो दोनों के मध्य क्या अन्तर आएगा? क्या होगा? सरकार का ज्यादा खर्च होगा या प्राइवेट कम्पनी का खर्च ज्यादा होगा? (प्रत्युत्तर—सरकार का) हम मान रहे कि सरकार का ज्यादा खर्च होगा। क्यों ज्यादा होगा? वहां पर काम करने वाले कम होंगे और दिमाग लड़ाने वाले ज्यादा होंगे। अफसरशाही राज में अफसर ज्यादा मिलेंगे और प्राइवेट कम्पनी को जितनी जरूरत होगी उतने ही आदमियों को लगाएगी। इसलिए फर्क पड़ जाता है और सरकारी काम, सरकारी काम होता है।

अकबर ने कहा—पैसे की कमी नहीं है, तुम विचार मत करो। पैसे की बात नहीं है जो भी खर्च होगा, हो जाएगा मुझे जानकारी चाहिए जमीन के, पृथ्वी के बीच का भाग कौन-सा है? बीरबल ने कहा—हुजूर! कम-से-कम एक महीने का समय लगेगा और बजट बता दिया कि इतना खर्च आ सकता है। अकबर ने कहा—जाओ पर एक महीने में मुझे जवाब दे देना। बीरबल घर पर आकर बैठ गया। लोग देखने वाले बहुत होते हैं, बीरबल गया तो कहीं पर भी नहीं है, घर पर ही बैठा है। यह तो जमीन को मापने वाला था किन्तु अभी तक तो घर पर ही बैठा है। चारों तरफ की जमीन मापकर बताने वाला था आदि-आदि। एक महीना पूरा हुआ और उस दिन बीरबल 50 बैलगाड़ियां सूत के धागे से भरी हुई लेकर दरबार में पहुंचा और गणित लगाता हुआ एक जगह बीच में खूंटी गाड़ दी फिर बोला—हुजूर! यही है जमीन के बीच का हिस्सा। अकबर ने कहा, यह तुम कैसे कह सकते हो? हुजूर यह 50 गाड़ी धागा जिससे मैंने धरती को मापा है, आपको विश्वास नहीं तो परीक्षा करा

लो। कोई इंस्पेक्टर, निरीक्षक आ जाए और माप कर ले। बोलो साहब, कौन बनेगा इंस्पेक्टर? कौन तैयार है बनने के लिए? जो कहे कि बीरबल के बताए हुए पर हमें विश्वास नहीं है तो कोई ज्ञात करके बता दो दूसरा स्थान कि मेरे माप में यह बीच का भाग आया है। अकबर मन-ही-मन हँस रहा है कि बेवकूफ बनना है तो बीरबल से बात करो। उसको पता है बीरबल ने कोई माप नहीं किया है किन्तु बोले कौन और कौन वापस माप करे? क्या वह नहीं जानता है कि कोई माप नहीं हुआ है किन्तु ज्यादा धन वाले, ज्यादा पैसे वाले लोग जब तक जूते नहीं पड़ते तब तक उनके दिमाग को उत्तर मिलता नहीं है। उनके माथे पर जूते पड़ते हैं तो उनका दिमाग ठिकाने आ जाता है। हलका हो जाता है। दुरुस्त हो जाता है।

महाराज रणजीत सिंह जी के पास कोई व्यापारी आया। उसने महाराज के पास कोहिनूर हीरा देखा। उसने पूछा इस कोहिनूर हीरे की कीमत कितनी है? महाराज ने जवाब दिया कि सात जूते। वह समझा नहीं। महाराज ने कहा– वैसे इसकी कीमत होती नहीं है, पूरे विश्व को कितनी बार भी भोजन करा दो उसका जो खर्च आएगा उससे भी इसकी कीमत ज्यादा है। कोहिनूर हीरे की कीमत को आंकना किसी के वश की बात नहीं है। कोई चाहे कीमत देकर खरीद लूं तो खरीद नहीं पाएगा किन्तु 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के अनुसार किसी को सात जूते लगाकर पिटाई करके, छीनकर लेना चाहे तो ले सकता है। लड़ाई-झगड़ा करके, युद्ध करके, मारपीट करके इसको ले जा सकता है। इसलिए इसकी कीमत सात जूते है। बाकी अरबों-खरबों रुपये देकर खरीदना चाहो तो कोहिनूर हीरा मिल जाएगा क्या? नहीं मिलने वाला है। वैसे ही बीरबल जानता था कि बिना ऐसा काम किए अकबर को शांति मिलने वाली नहीं है। अकबर का दिमाग ठंडा होने वाला नहीं है, इसलिए ये सब बहाने बनाए। बीरबल को पता है कि किसी के पास उत्तर नहीं है। फिर भी अब किसी को परीक्षण करना है तो करो। परीक्षा अब करे कौन?

ऐसे ही एक बार अकबर के दिमाग में एक प्रश्न आया कि दिल्ली में कौए कितने हैं? मुझे गिनती करके बताओ कि दिल्ली में कितने कौए हैं ? गुलाब जी! जोधपुर में कौए कितने हैं? सफेद कौए या काले कौए कौन-से बताने हैं? अरे सफेद और काले से क्या करना। कौए, कौए होते हैं। बताओ, कितने कौए हैं जोधपुर में। बोलो सिंघवी जी? आदमियों की गिनती करनी हो तो की जा सकती है। कौए की गिनती नहीं कर सकते हो? कौए की

गिनती करे कौन? फिर घूम-फिर कर बीरबल के पास बात आई। उसने कहा– हुजूर! 1,858 कौए हैं दिल्ली में। गजब की बात है। तुम तो कौए की भी गिनती रखते हो? कौए कितने हैं ये भी मालूम है। हमें तो इनसान की गिनती भी मालूम नहीं है। किन्तु तुम तो कौए की गिनती बता रहे हो? अकबर ने कहा– बीरबल से शिकारियों को बुलाकर कौओं को मरवाकर गिनती कराओ कि कितने कौए हैं? प्रत्युत्तर में बीरबल ने कहा कि हुजूर आपने दिल्ली के कौए की बात कही है, जो मेहमान के रूप में बाहर से आए हुए हैं उनकी बात नहीं की है। पहले उनको बाहर रवाना कीजिए। जो दिल्ली से बाहर के कौए आए हुए हैं और जो मेहमान बनकर बाहर गए हैं उनको वापस बुलाकर फिर गिनती कराइए, क्योंकि परदेशी आते रहते हैं। मैंने दिल्ली के कौए की बात कही है। अब कितने कौए एनआरआई हैं उनकी छंटनी करनी पड़ेगी। एनआरआई के कौन हैं और दिल्ली का मूल निवासी कौन है? बहुत सारी बातें हैं, कोई कहीं का है कोई कहीं का। दिमाग में खटपट होती रहती है। इस दिमाग की खटपट को उत्तर द्वारा आदमी भले ही संतुष्ट कर ले पर वह आत्म रक्षा करने में भी समर्थ हो जाए ऐसा नहीं कहा जा सकता।

मैं आपको बता रहा था रक्षाबंधन की बात और कहां से कहां तक पहुंच गया। चालू तो किया था दानव और देवों के युद्ध से और कहां हम दिल्ली के कौए तक आ गए हैं। दानवों ने कई बार प्रयत्न किया किन्तु एक बार भी अमृत घट नहीं मिला। कहते हैं फिर दानवों ने देवों पर आक्रमण कर दिया तो इन्द्र दानवों से युद्ध के लिए जाने लगे। तब इन्द्राणी शचि ने इन्द्र के तिलक किया और अपनी शक्ति का प्रतीक रूप धागा इन्द्र के हाथ में बांधा और कहा कि मेरी शक्ति आपके साथ है, क्योंकि मेरी शक्ति के बिना आपकी शक्ति अधूरी ही रहेगी। वैदिक संस्कृति में माना गया है कि पति-पत्नी मिलते हैं तो उनकी शक्ति पूरी होती है। पत्नी की शक्ति के बिना अधूरी शक्ति विजय प्राप्त करने में समर्थ न हो अतः मेरी शक्ति आप में मिल जाने पर आप निश्चित रूप से विजयी होंगे। उस समय रक्षा के रूप में वह धागा बांधा था। यह कहानी बताती है कि पत्नी अपने पति की रक्षा करती है। इस प्रकार बहुत सारी ऐसी बातें प्रचलित हैं जिनके आधार पर निश्चित रूप से कहना बड़ा मुश्किल है कि आज जो रक्षाबंधन के रूप में भाई-बहिन की बात हो रही है ऐसा ही रूप पहले रहा हो। आज रक्षाबन्धन भाई-बहिन का त्योहार माना

भी जाता हो पर मुझे बताओ इसमें भी ईमानदारी का पुट कितना है? इसमें भी बेईमानी कितनी हो जाती है? सच्चे रूप में रक्षाबंधन की भावनाओं को स्वीकार करने वाले कितने हैं? बहिनें भी मुंह देखकर तिलक निकालती हैं और भाई भी मुंह देखकर चलता है। एक भाई के पांच बहिनें रक्षाबंधन के लिए आई हैं और पांचों में हरेक की स्थिति अलग-अलग है। किसी की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है, किसी की आर्थिक स्थिति बहुत बढ़िया है तो जिसकी जैसी पूजा होगी वैसी दक्षिणा मिलेगी। जैसी राखी, जैसी मिठाई लाई है, वैसा ही इनाम भाई के द्वारा मिलता है। वह सबको समान रूप से उपहार नहीं देता। उसके दिल में समान रूप से सबके प्रति महत्त्व नहीं है। कई बहिनें तो वर्षों से नहीं बोल रही हैं क्या आज के दिन उनके दर्द को हम पी लेते हैं, उनकी पीड़ा को भाई लोगों ने दूर कर दिया? उनके दिलों के दर्द को मिटा दिया गया क्या? उनकी आंखों के आंसुओं को उन्होंने पोंछ लिया? पर ठीक है, नहीं मामा से काना मामा अच्छा है। कोई ऐसा प्रसंग आ जाए और हजारों में दो-चार की आंखें भी पोंछी जा सकें तो लोग कहते हैं कर लेना चाहिए। यह परम्परा के रूप में चल रही है किंतु उद्गम क्या है?

हम में से बहुतों को पता नहीं है। एक श्लोक है 'येन बद्धो बलि राजा, दान वेन्द्र महा बलः। नेन त्वामहं बह नामि रक्षे या चल माचल।' इसमें कहा गया है कि जिससे बलि राजा को बांधा गया, महाबलि दानवेन्द्र उसी रक्षा रूपी धागे से तुम्हें बांधा जा रहा है। बलि को क्यों बांधा गया? जबान, वचन से मुकर जाने के कारण उसे बांधा गया और आज उसी से तुम्हें बांधा जा रहा है। बांधा जा रहा है तो फिर यहां रक्षा की बात कहां है? भविष्य पुराण में एक यही श्लोक मिलता है किंतु इससे रक्षाबंधन का दिन, श्रावणी पूर्णिमा दिन का यह प्रसंग है ऐसा साबित नहीं होता है। हां, विष्णु कुमार की कहानी से फिर भी कुछ संबंध जुड़ता है कि गुरु महाराज ने श्रवण नक्षत्र को कांपते हुए देखा, क्योंकि श्रावणी पूर्णिमा के दिन अमूमन श्रवण नक्षत्र होता है। यदि कहीं कोई गड़बड़ नहीं होती है तो माह की पूर्णिमा के अमुक-अमुक दिन होता है नक्षत्र– चैत्र की पूर्णिमा को चित्रा, जेठ की पूर्णिमा को ज्येष्ठा और वैशाख में विशाखा आदि। जैसा श्रावणी पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र को कांपते हुए देखा तब आचार्य श्री के मन में विचार आया कि कोई-न-कोई संकट आने वाला है। उन्होंने उस संकट को भांपा तो थोड़ी चिंता भी हुई और घटनाक्रम जो भी बना कि मुनियों पर विपत्ति आई और विष्णु कुमार मुनि ने

आकर उन मुनियों की रक्षा की। इस कार्य में कई दिन बीत गए होंगे। अतः श्रावणी पूर्णिमा का दिन निकल गया होगा। एक अन्य प्रसंग से बताया जाता है कि हमारी चेतना की रक्षा करनी है इसलिए ज्ञान रूपी भाई को समकित रूपी बहिन राखी बांधती है। वह ज्ञान रूपी भाई को राखी बांध सावधान करती है कि तुम इधर-उधर भरमना मत। क्योंकि ज्ञान भ्रमित हो जाता है तो दर्शन भ्रमित होता है। श्रीमद् भगवती सूत्र में यह बताया गया है कि जिस समय ज्ञानावरणीय कर्म का तीव्र उदय होता है, उस समय दर्शनावरणीय कर्म का भी तीव्रोदय हो जाता है। ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के तीव्र उदय से दर्शन मोह का उदय होता है और कांक्षा मोहनीय का वेदन करते हुए वह जीव मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है। इससे यह फलित होता है कि ज्ञान भटकता है तो हमारा सम्यक्त्व भी भटक जाता है। ज्ञान यदि दृढ़ रहे तो समकित कहीं भटक नहीं सकता। इसलिए हम ज्ञान को सुस्थिर करें, मजबूत करें। हमारी चेतना को जगाने के लिए उस ज्ञान का सहारा लें। जैसे श्रावणी पूर्णिमा के प्रसंग से बताया गया कि शिष्य वेदों के प्रचार-प्रसार के लिए संकल्पित होता है। वैसे ही हमें भी संकल्प करना है कि ज्ञान का प्रचार-प्रसार हो। हम ज्ञान को आगे बढ़ाएंगे। हम यह कर सके तो समझ लीजिए हमने भी कुछ किया है। इससे भी पूनम का दिन फलित नहीं होता। राखी पूनम है, इसलिए संगति बैठाने के लिए ये युक्तियां जुटाई जा रही हैं, ऐसा लगता है।

आगे बात आती है पन्द्रह अगस्त की। आज सुबह से ही लोग गीत सुन रहे हैं, टी.वी. पर, मोबाइल पर जिस पर भी समझ लो। ये गीत तो गाए जाते हैं किन्तु इन गीतों के पीछे रहने वाले हार्द को और सचमुच में आजादी के माहात्म्य को हम कितना आत्मगत कर पाए हैं? कितना आत्मगत कर लिया है? आजादी को हम सुरक्षित रखने की दिशा में बढ़ रहे हैं या बरबादी की ओर हमारे कदम बढ़ रहे हैं। भारत पर दिनों दिन कर्जा बढ़ रहा है या घट रहा यह मालूम है क्या? हमको क्या पता? हमारी हालत क्या हो रही है? दिनों दिन कर्जा बढ़ता जा रहा है। (जैसा सुनने में आ रहा है) उसका परिणाम क्या होगा? किसी भाई ने कहा कि मोदी जी ने राष्ट्र के नाम पर एक संदेश दिया है कि 'मुझे बचपन में एक संत ने ऐसा कहा था कि मोदी! आने वाले समय में पानी दुकानों पर बिका करेगा और आज हकीकत में ऐसा नजर आ रहा है। इसलिए जल का संरक्षण होना चाहिए।' मैंने त्वरित प्रतिक्रिया की और कहा कि मोदी जी को कोई जवाब देने वाला नहीं मिला

कि 'पानी की रक्षा की बात संत ने कही थी और जब उन्होंने माना कि संत की बात एकदम सही निकल रही है, सही साबित हो रही है तो सबसे पहले उनको संत की रक्षा करनी चाहिए। सत्य की और साधु जीवन की रक्षा करनी चाहिए। साधु रहेगा तो सत्य रहेगा। साधु रहेगा तो सभ्यता रहेगी। साधु रहेगा तो सारा विश्व रहेगा।' और साधुता खिसक गई तो...। यदि आगम का प्रमाण चाहते तो पांचवां आरा जब समाप्त होने को होगा और छठवां आरा लगने की तैयारी होगी तो क्या होगा? धर्म का विच्छेद होगा। साधु-साध्वियां नहीं रहेंगे। छठवां आरा शुरू हो जाएगा उस समय खाने को रबड़ी मिलेगी या कुछ और मिलेगा? सभ्यता क्या रहेगी? मार-काट, लूट-पाट, हिंसा, छीना-छपटी, ये सारे दृश्य, ये सारे कृत्य होने लगेंगे। यदि साधु जीवन की रक्षा की जाए, साधुत्व को बढ़ावा दिया जाए तो सभ्यता रह सकती है। आज जितनी आपाधापी विश्व में मची हुई है इन सबके पीछे कारण है– उन्माद। उस उन्मादी हवा को समाप्त करना पड़ेगा और वह उन्मादी हवा चलती रहेगी तो पानी की बात छोड़ो वैसे भी दुनिया शांति से जी नहीं पाएगी। कहने वालों ने या भविष्यवाणी करने वाले ने तो यहां तक कहा है कि अगर तीसरा विश्व युद्ध चालू हो गया, कोई विश्व युद्ध चालू हो गया तो वह पानी के लिए होगा। होगा तो होगा। होगा तब होगा आज हम चिंता क्यों करें? हमें चिंता क्यों करनी? हम चिन्ता क्यों, किसलिए करें? आज हमें पानी प्राप्त है। अन्य जीवनोपयोगी साधन भी सब हैं। हम तो हमारी जिन्दगी जी लेंगे आगे की चिन्ता आगे वाले करेंगे। मैं क्यों फालतू परेशान होऊं। पंकज जी शाह! आपको मालूम है आपकी गाड़ियों को धोने में कितना पानी खर्च होता है? उस पानी से कितने आदमियों की प्यास बुझ सकती है। इस प्रकार का आंकड़ा एक बार संत ने बताया था कि एक दिन में 50 करोड़ लिटर पानी सिर्फ जोधपुर की गाड़ियों को धोने में खर्च हो जाता है। कितना? कितना? 50 करोड़ लिटर पानी। यदि एक दिन में एक आदमी को 5 लिटर जरूरत पड़े तो कितने लोग उतना पी सकेंगे? एक दिन गाड़ियों की धुलाई बंद हो जाए, तो कितने लोगों को पीने के लिए उपलब्ध हो जाएगा? (सभा से– 10 करोड़) दस करोड़ लोग पानी पी सकेंगे। आप विचार करो एक जोधपुर की हालत यह है तो दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, बेंगलूरु, चेन्नई आदि बड़े-बड़े शहर कितने लोगों का पानी पी रहे हैं? सारा गणित करें तो कितने लोगों का पानी गाड़ियों को धोने में जा रहा है? किसको चिंता है? क्या सरकार

नहीं जान रहीं है? जानता कौन नहीं है? सब जान रहे हैं किन्तु सब आंख मिचौली का खेल है। मैंने आंखें बंद कर ली तो सब बंद हो गया?

खरगोश वाली कहानी सुनी होगी? वह कहानी यहां लागू हो जाती है। क्या कहानी थी खरगोश की? एक खरगोश के पीछे शिकारी पड़ गया। शिकार करने वाला उसके पीछे-पीछे भाग रहा है। खरगोश आगे बढ़ता जा रहा है, बढ़ता जा रहा है। जब भागते-भागते वह थक गया तो एक जगह बैठा और उसने अपने कानों को आंखों के सामने कर लिया। आंखों को बंद कर दिया। आंखों के सामने कान लाने से क्या होगा? हम भी आंखों के सामने कान लाने वाली बात कर रहे हैं। जानते सब कुछ हैं, करते कुछ नहीं हैं। बोलते जरूर हैं कि पानी बचाना चाहिए किन्तु कारगर उपाय क्या हो रहा है? जो हमें बताया गया और जो अखबार में बात आई थी कि एक कार को धोने में 162 लिटर और टू व्हीलर को धोने में 50 लिटर पानी खर्च होता है। उसका पूरा आंकड़ा 50 करोड़ लिटर केवल एक दिन में जोधपुर का है। अब आप बताओ एक महीने का पानी कितना खर्च होगा और एक वर्ष में कितना पानी खर्च होगा? क्या निकालेंगे आंकड़ा? बंधुओ! केवल व्याख्यान से कार्य सिद्ध नहीं होगा। जब तक प्राइवेट या पर्सनल, व्यक्तिगत रूप से हम सम्पर्क नहीं करेंगे, जब तक लोगों को पर्सनल सुझाव नहीं दे पाएंगे तब तक इन चीजों में सुधार होने वाला नहीं है। आज भी हम फव्वारा चलाकर नहाने बैठ जाते हैं। पानी बह रहा है, बहता जा रहा है। पाइप लाइन फूटी हुई है तो सड़कों पर पानी बह रहा है। चिंता है किसको? आवाज आज नहीं उठ रही है, पिछले कई वर्षों से उठ रही है– पानी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ, पानी बचाओ। लोग कहते हैं– पानी बचाओ, पेड़ लगाओ। पेड़ थे तो वर्षा प्रचुर मात्रा में होती थी। हमने पेड़ों को कटवा दिया क्योंकि हमारी गाड़ियों को चलने के लिए जगह चाहिए। सिंगल लाइन से एक्सीडेंट हो रहे हैं तो डबल लाइन बना दी। डबल लाइन से फोर लाइन और सिक्स लाइन और पता नहीं क्या-क्या बना दिया अपनी गाड़ियों को चलाने के लिए। गाड़ियां दिनो-दिन बढ़ रही हैं। क्या हकीकत में इतनी गाड़ियों की जरूरत है? हम स्वयं अपने पैरों पर क्या कुल्हाड़ी नहीं लगा रहे हैं? सड़कों के किनारे रहे हुए बड़े-बड़े वृक्ष हजारों की संख्या में काटे गए होंगे। हम अपनी वृत्ति, अपनी आवश्यकताओं को सीमित नहीं कर पाते हैं।

भगवान् महावीर के सिद्धांत को अपना लें तो सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। भगवान् ने कहा है अपनी आवश्यकताओं को सीमित

करो। यदि हमने अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर लिया तो क्या हो जाएगा? देखो, कितना बदलाव आ जाता है। डॉक्टर नेमीचंद जैन, तीर्थंकर पत्रिका के संपादक आचार्य श्री नानेश को एक पत्र लिखते हैं। सिर्फ आचार्य श्री नानेश को ही नहीं, बहुत से बड़े-बड़े संतों को पत्र लिखते हैं। पत्र में लिखते हैं कि बेकरी का खाना ठीक नहीं है। इस बेकरी के खाने में अंडे पड़ते हैं इसका प्रचार होना चाहिए। बेकरी की चीजें नहीं खानी चाहिए। आचार्य श्री ने जवाब में पत्र लिखवाया कि डॉक्टर साहब! केवल नहीं-नहीं करने से समस्या का समाधान होने वाला नहीं है। बेकरी का बिस्कुट, डबल रोटी वगैरह जो भी सामान आते हैं उसका उपयोग नहीं करना। किंतु आप उसका विकल्प दीजिए कि करें क्या? मत करो, मत करो इससे काम नहीं चलता, उसका दूसरा विकल्प दो। जब विकल्प नहीं दे पाते हो तो आपकी वह योजना कार्यान्वित होना बहुत मुश्किल है। विकल्प दो कि रात के दो परांठे डब्बे में रखें पर अब जमाना रोटी और परांठों का भी नहीं है। अतः विकल्प क्या है? लोग सुबह उठकर परांठा बनाएं इतना टाइम नहीं है। लोगों के पास समय नहीं है कि उठकर चूल्हा-चौका करें? जब एक बार बिस्कुट या डबल रोटी से नाश्ता कर लेते हैं तो इससे ही काम चल जाता है फिर कौन सुबह उठकर चूल्हा-चौका करेगा? अब चाय बनाना तो एक मजबूरी हो जाती है नहीं तो उसका भी आजकल ऑर्डर करते हैं होटलों में और वह भी बनकर आ जाती है टाइम पर। इसका विकल्प क्या है आपके पास, नहीं तो आप कितना भी अखबारबाजी कर लो कितना भी पेपरों में निकाल दो, क्या छूट जाएगा? आज भी जैनियों के यहां पर बिस्कुट के पैकेट मिलेंगे या नहीं? बोलिये। इतना ही नहीं क्या-क्या प्रॉडक्ट नहीं मिल जाते हैं? आज भी चाय-नाश्ते की प्लेट में वे चीजें आ रही हैं। खाली इनकार करने से, नहीं-नहीं करने कहने से काम नहीं चलेगा। हां-हां क्या है बताओ? उसका विकल्प क्या है? विकल्प देंगे तो काम होगा। आप देखिए अभी कुछ दिन पहले एक अखबार में बहुत सारी चीजों का नाम दिया हुआ था कि इन सारी चीजों में बहुत ज्यादा मिलावट हो रही है। हम कितना शुद्ध खा रहे हैं और मिलावट का कितना खा रहे हैं? घी खाना छोड़ेंगे या खाना जरूरी है। जरूरी है क्या? और हम बाजार से घी लाते हैं क्या कीमत होती है? गाय का शुद्ध घी जिसे माना जाता है बाजार में उसकी कितनी कीमत होती है? चार सौ? पांच सौ? (प्रत्युत्तर– सात सौ) अब आप गणित लगाओ गाय के एक लिटर

दूध की कीमत कितनी है? 40 रुपये और एक लिटर दूध में घी कितना निकलेगा? बिलोना करेंगे तो कितना घी निकलेगा उसमें से? बिलोना करते तो मालूम होता कि कितना घी निकलेगा? अच्छा! यहां बैठने वालों में से कितने लोगों ने बिलोना किया है अपनी जिंदगी में? जोधपुर वालों में कितने हैं? दुर्ग वालों में से कितने हैं? घर में गाय होवे तो बिलोना करें। घर में गाय होगी तो दही जमाएंगे। फिर हांडी में बिलोना डालेंगे। आजकल तो बिलोना करने की जरूरत ही नहीं है। मशीन आ गई और सारा काम मिनटों में हो जाता है।

यह आजादी का काम है या परतंत्रता का काम है? हम लोग कितने स्वावलंबी बने? हम लोग स्वतंत्र ज्यादा बने या परतंत्र? यहां से निकलते हैं और भोजनशाला जाते हैं। आज कोई भी भोजनशाला तक जाने के लिए वाहन का उपयोग नहीं करेंगे। जिसके पैर काम करते हैं वे वाहन को छोड़कर पैदल ही...। (प्रत्युत्तर– भोजनशाला जाएंगे) बोल रहे हैं या सच में जाएंगे? आप यह बताओ क्या भोजनशाला तक आप पैदल नहीं जा सकते? और वाहनों में यह तेल जो जलता है, यह पेट्रोल कहां से आ रहा है? उसके लिए भारत सरकार को क्या चुकाना पड़ रहा है? खाड़ी देशों से पेट्रोल आता है! खाड़ी के लोग कहते हैं कि हमें पैसे नहीं चाहिए। खाड़ी के राज्य वाले कहते हैं कि हमको पैसे नहीं चाहिए। पैसे हमारे घर में सड़ रहे हैं। उसके बदले मांस-मटन को भेजो। मांस खाने वाले वे और जीवों का कत्ल कहां होता है, वध कहां होता है? जीवों की वध स्थली कहां है? जीवों के वध की स्थली बनी है भारत की भूमि! जीवों का वध करो और भेजो। पेट्रोल के बदले में उनको आहार परोसने के लिए कितने जीवों की घात होती है? आज से 18-20 वर्ष पहले का सर्वे हुआ उस समय बताया गया 44,000 करोड़ पशु-पक्षी काटे गए। यह तो सरकारी आंकड़ा है। 44 हजार करोड़ और शेष अलग। यह अहिंसक देश, भगवान् राम का राज्य, महात्मा गांधी का भारत, भगवान् महावीर का भारत, गौतम बुद्ध का भारत, ऋषि मुनियों का देश! इस भारत में क्या हो रहा है?

आजादी का समय सुहाना, आओ गायें गान,
जय-जय भारत देश महान्।
आजादी में बने दीवानों, करना है संधान,
जय-जय भारत देश महान्।

जकड़ गुलामी की थी कैसी, जीवन दशा बनी थी कैसी,
फिर भी छोड़ उत्पाद स्वदेशी, मौज मनाते बन परदेशी।
भूल गए क्या पशु सम जीवन, जीता था इंसान।
जय जय भारत देश महान्।

सचाई की बात करो तो एक परत, एक स्टेटस, एक स्तर वालों को तो भारत में आजादी मिली होगी, किन्तु आम जनता को क्या मिला? अंग्रेजों का राज था, कांग्रेस का राज था तो क्या और बीजेपी का राज था तो क्या हुआ? एनडीए का राज था तो क्या हुआ? उनके जीवन स्तर में क्या फर्क पड़ा। आज कोई एफआईआर दर्ज करवाने जाएगा तो आपकी एफआईआर दर्ज होगी या क्या होगा उस कागज का? हवा में उड़ तो नहीं जाएगा? हवा में यह एफआईआर का कागज उड़े नहीं तो उसको दबाने के लिए उसके ऊपर वजन-भार रखना पड़ेगा, वह भार किसका होगा? पैसों का भार होगा तो एफआईआर उड़ेगी नहीं। जैसी भेंट होगी वैसी पूजा होगी। क्या हमारे जीवन में कुछ सुधार आ गया है? बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से हम और परतंत्र हो गए। धर्म को भूले, कर्म को भूले, और बदल रहे हैं। तेज गति से बदल रहा है, मानव का व्यवहार...। क्या व्यवहार था और आज क्या व्यवहार हो रहा है? आज हमारे व्यवहार में क्या तबदीली हो गई है? हमने स्वतंत्रता पाकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी चलाई है या हमने स्वतंत्रता के आनन्द को पाया है? वस्तुतः, हमको स्वतंत्रता का आनन्द भोगना नहीं आया। किसी को रबड़ी खाना ही नहीं आवे और उसको खाने के लिए दे भी दी जाए तो वह क्या करेगा? क्या करेगा वह? इधर-उधर ताकता रहेगा और क्या कर सकता है।

कहते हैं कि महाराणा प्रताप या किसी भी राणा के समय आदिवासियों ने युद्ध में बहुत सहयोग दिया था। उनको लोग मामा कहा करते थे। महाराणा ने विचार किया कि सभी आदिवासियों को अच्छा भोजन दिया जाना चाहिए, सबको सम्मानित किया जाना चाहिए। क्या विचार किया उन्होंने? उन्होंने विचार किया कि सभी को बढ़िया भोजन करवाना चाहिए। उसके अनुसार सभी को भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन में बढ़िया हलवा बनाया गया। उसमें काजू, दाख, किसमिस डालकर स्वादिष्ट बनाया गया। फिर सभी को पंक्ति में बिठाया गया भोजन के लिए। हलवा परोस दिया गया लेकिन सभी एक दूसरे की तरफ देख रहे हैं और बैठे रहे।

जैसे पटेल बैठते हैं वैसे बैठ गए घुटनों को हाथों से पकड़कर। दीवान जी ने पूछा, क्या हुआ आप खाना खाओ। खाना क्यों नहीं खा रहे हो? उन्होंने कहा– कांई खावें खावें, खाणे में तो लटें पड़ी हुई हैं। उसमें जो काजू-दाख थी उनको आदिवासी लोग लटें समझ रहे थे। वे उनको बताते हुए कहते हैं इसमें लटें पड़ी हुई हैं। वे बोले, मारे घर में खाना कोनी कांई जको अ लटां खावां। दीवान जी ने सोचा बढ़िया खाना बनाया जाए इसलिए काजू और दाख को डाला गया है। दीवान जी ने कहा– खाओ, बहुत स्वादिष्ट है। पहले दीवान जी ने स्वयं खाया फिर किसी एक भाई के मुंह में जबरदस्ती ठूंसा। उसे स्वादिष्ट लगा तो वे सभी खाने लग गए और ऐसे खाने लगे कि पत्तलों को मिनटों में चट कर दिया। क्या टाइम लगा? सारी पत्तलें साफ और कहने लगे कि लाओ और लाओ। यह हो जाता है।

हमको आजादी में जीना ही नहीं आया और आजादी मिल गई अर्थात् अभी तक हमारी वगत कच्ची है, हम पक्के नहीं हो पाए हैं। नए-नए लोगों के पास सम्पत्ति आ गई, करोड़ों-अरबों की सम्पत्ति आ गई। इतने दिन कुछ नहीं देखा था, होटलें देखी नहीं थी। दो व्यक्ति थे, उनका कुछ व्यापार चला या पुण्य योग चला, कुछ भी रहा होगा उन्हें बहुत सारे पैसे प्राप्त हो गए। करोड़पति बन गए, अब नॉर्मल होटल में कौन जाएगा। जब बहुत सारे पैसे होंगे तो चलो भाई फाइव स्टार में चलते हैं। छोटे मोटे होटलों में नहीं फाइव स्टार होटल में गए। अब बेचारे पहली बार गए थे। अन्दर जाकर बैठे। इतने में बेरा, कर्मचारी आया। वे कुर्सी पर बैठे थे खड़े हो गए क्योंकि उसको मालिक समझ बैठे। उसका हाथ जोड़कर अभिवादन करने लगे तो वह हंसने लग गया। वेटर को हंसी आने लगी। उसने रोकने की बहुत कोशिश की किंतु हंसी रुकी ही नहीं। कुछ रुककर उसने कहा, मैं मालिक नहीं नौकर हूं। तब वे समझ पाए यह तो नौकर है। फिर कुर्सी पर बैठे तो उनको वो मैन्यू कार्ड दिया। क्या होता है? (प्रत्युत्तर– मैन्यू कार्ड) हां, आपको पता तो है। बात जो भीतर में होती है वह बाहर भी आ जाती है। आपने भी वहां खाया-पीया होगा तभी आपको पता है। छुपे रुस्तम हो आप तो। उन्होंने खाया-पीया, नाश्ता किया उसके बाद उन्हें दिया गया गर्म पानी और नीबू। (सभा में हंसी) भला हो मैंने किताब में पढ़ लिया, नहीं तो मेरे साथ भी वही होता और करता ही क्या मैं भी। मेरे साथ भी कुछ हंसी ठिठोली वाला काम ही होता। आज तो बच्चे भी जान रहे होंगे। क्यों जान

रहे हैं बच्चे? लोग कहते हैं, 'बापजी! बच्चा माने कोनी। क्यों कोनी माने बच्चा? ऐसा बच्चा ने जीणिया ही क्यूं, पहले लिखा-पढ़ी करा लेते कि मानेगा तो ही जन्म दूंगी नहीं तो जन्म नहीं दूंगी। हम कोई लेन-देन करते हैं, खरीदी करते हैं, सौदा करते हैं तो पहले लिखा-पढ़ी होती है या नहीं? ऐसे बच्चे को जन्म ही क्यों दिया जो आपका कहना नहीं मान रहा है। उसके कारण आपको होटल में जाना पड़ रहा है।

उन दो व्यक्तियों को भी नीबू और गर्म पानी ला कर दिया गया तो उन्होंने सोचा सिकंजी पीनी होती होगी खाना खाने के बाद ताकि डाइजेशन अच्छा रहे शायद इसलिए लाए होंगे। (सभा में हंसी) आप लोग अभी इतने हंस रहे हो तो सोचो जिसने देखा उसका क्या हाल हुआ होगा? जैसे ही वे लोग पीने लगे नौकर, वेटर जोर-जोर से हंसने लगा और हंसते हुए किचन की तरफ भागा। वहां भी जोर-जोर से हंस रहा था। हंसी रुक ही नहीं रही थी। सभी लोग पूछ रहे हैं कि क्या हो गया भाई, इतना क्यों हंस रहे हो। तो वह फिर हंसता है बोल नहीं पा रहा है। जोर-जोर से हंस रहा है और हंसते हुए ऊ ऊ ऊ ऊ ऊ ऊ कर रहा है। बोल नहीं पा रहा है, क्योंकि हंसते समय आदमी बोल नहीं पाता। फिर जब हंसी पूरी हो गई तो उसने बताया, ऐसा-ऐसा हो गया। भीतर रहे हुए सभी लोगों ने सोचा, देखें क्या हो रहा है? बाहर जाकर देखा तो उनकी भी हंसी छूटने लगी। होटलों में जाना नहीं होता नहीं तो ऐसा ही काम होगा, वैसे ही आजादी में जीना नहीं आता फिर क्या होगा? ऐसी ही हंसी होगी। आज हमारी हंसी हो रही है, आज हम क्या कर रहे हैं? कैसे बिताया हमने गुलामी का टाइम, आज भी गुलामी में कैसे जकड़े हुए हैं? टाइम हो गया है, मुझे मालूम हैं कि आज के व्याख्यान का टाइम पूरा हो गया है किन्तु आज चार-चार पर्व एक साथ हैं तो एक-एक पर्व का एक-एक घंटा भी लें तो भी चार घण्टे तो वैसे ही जाएंगे। सामान्य दिनों में एक घंटा चलता है आज चार हो गए तो कुछ तो टाइम बढ़ाना ही होगा। आप कहीं पर भोजन के लिए जाते हैं या चार अलग-अलग जगहों पर गए और आपको मीठा-नमकीन नाश्ता परोसा गया। इस प्रकार 4 जगह अलग-अलग भोजन करेंगे या नहीं करेंगे? चारों जगह अलग-अलग भोजन करेंगे।

पटवा जी! यह बताओ भारत गुलाम क्यों बना? अंग्रेज हमारे ऊपर राज क्यों करने लगे? (किसी का उत्तर– मेहनत करनी कम कर दी) मैंने

किससे पूछा और कौन जवाब दे रहा है। जवान से पूछा और बूढ़े जवाब दे रहे हैं। कोई बात नहीं बूढ़े को जवाब देने दो हम तो आगे भी जवाब दे देंगे। इनका अभी बुढ़ापा है इनको जवाब देने दो। ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत में बुलाया गया और वह भारत में आई। यहां उसने ऐसा जाल बिछाया कि हमारे हाथों, पैरों में बेड़ियां पड़ गईं। हम उसमें बंध गए। इतने बंध गए कि उसी के चलते अंग्रेज आ गए हमारे भारत में और उन्होंने राज किया। आज कितनी कंपनियां पहुंच गई? कम्पनी को पूरा लाभ मिल रहा है, पैसे कंपनी को पहुंच रहे हैं क्योंकि हमें सब प्रकार की सुविधाएं चाहिए और ये सारी सुविधाएं जुटाते-जुटाते हम क्या करने लग गए? क्या हो गया है? हम संभलें। आज भी पॉकेट में पेन किसका है? आज पॉकेट में पेन पारकर का है, कहां का है, यह पेन? भारत के दंपती जापान गए और बहिन ने कहा कि बढ़िया से बढ़िया हैंडबेग दीजिए। वो हैंडबेग ही होता है ना जो गले में लटकाया जाता है? क्या बोलते हैं उसको? हैंडबेग ही समझ लो। उसने मांगा दुकानदार से और दुकानदार ने उसको दे दिया। वे बेग लेकर जहां ठहरे हुए थे, वहां गए और उस बेग को ध्यान से देखा तो उसके भीतर लिखा हुआ था 'मेड इन इंडिया'। वह बहिन वापस उस दुकानदार के पास गई और बोली कि यह तो मेड इन इंडिया है। हमें यह बेग नहीं चाहिए दूसरा दे दो मेड इन जापान का। उस दुकानदार ने कहा बिका हुआ माल हमारे यहां वापस नहीं होता है। बहिन ने कहा– हमको ऐसा नहीं चाहिए। दुकानदार ने कहा, मैडम एक काम हो सकता है, हमारे पास मेड इन जापान के स्टिकर पड़े हैं उनको आप उस जगह पर लगा सकती हो। वह बोली, 4-5 स्टिकर दे दीजिए। उसने चार-पांच स्टिकर ले लिए और चली गई वहां से। उसने मेड इन इंडिया की जगह मेड इन जापान का स्टिकर लगा दिया। ऐसी नीयत हमारी है तो हम गुलामी में ही जीएंगे। लोगों को हम यह बताते हैं कि ये खास लेकर आए हैं हम जापान से। देखो यह हैंडबेग लिया है। किंतु हमारे नीरज मुनि महाराज जैसे कोई खोजी आदमी भी होते हैं, उसने फटाक से स्टिकर को हटा लिया और कहा यह क्या लिखा है, मेड इन इंडिया! ये हाल होते हैं हमारे। हम दिखावे में जीना चाहते हैं। हम सावधानी नहीं बरतते हैं। जो यहां पर बैठे हुए हैं उनमें से अमूमन लोगों के पास मोबाइल कौन-सी कम्पनी का है? भारत में बना हुआ है या चाइना में बना हुआ है? (प्रत्युत्तर– मेड इन अमेरिका) अमेरिका से लोग खरीदते हैं पर आपको

पता है क्या अमेरिका चाइना से खरीदता है। फिर वह छाप लगाकर दे देता है मेड इन अमेरिका की। जबकि नीचे छाप देखेंगे तो मेड इन चाइना होगा। यह सारा खेल होता रहता है। सब जगह नहीं भी होता होगा पर स्थितियां चलती रहती है। हालांकि पंकज जी शाह को यह बात कम पसंद आएगी। वे कहेंगे, चाइना वाले सस्ता देते हैं और स्वदेशी चीजें महंगी मिलती हैं इसलिए स्वदेशी चीजों को नहीं लेकर विदेशी चीजों को लिया जाता है। लेकिन क्या आपको मालूम है कि ये जो विदेशी चीजें सस्ती खरीदी जाती हैं उनके बदले हमें करंसी चुकानी पड़ती है और उस करंसी का उपयोग कहां होता है? और इससे हमारे देश की करंसी में गिरावट हो जाती है। यह आपको मालूम है क्या? हमारे देश पर कर्जा बढ़ रहा है, यह आपको मालूम है क्या? हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित करेंगे तो हमें कभी भी परमुखापेक्षी होने की जरूरत नहीं पड़ेगी। विचार करो और सोचो कि सच्चे मायने में हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि राष्ट्र पर कर्जा नहीं बढ़े और हम भी सुख से जी सकें। हमारी धर्म-संस्कृति पवित्र पावन रह सके। हम ऐसा प्रयास करेंगे तो आजाद भारत के आजाद इनसान कहलाएंगे।

आजादी का समय सुहाना, आओ गायें गान,
जय-जय भारत देश महान्।
अरे दीवानों नींद उड़ाओ, बिगड़ी को अब मत बिगड़ाओ।
भले भूख से कम ही खाओ, पर माता को मत तड़पाओ,
अगर चाहते रखना अपनी और देश की शान।
जय-जय भारत देश महान्।

बन्धुओ! भारत देश महान् है। इसमें कहीं से कोई दो राय नहीं है। कोई आप से पूछे कि भारत देश महान् क्यों है? कैसे हुआ भारत देश महान्? जैसे माता की गोद में सभी को जीने का अधिकार होता है, मां की गोद में चाहे कैसा भी बेटा हो, वह मां के लिए बेटा ही होता है। उसके लिए गोद में कोई फर्क नहीं होगा, माता का ममत्व सब पर बना रहता है, वैसे ही यहां पर कोई भी संस्कृति आई, कोई भी सभ्यता आई भारत ने उसको पुचकारा और गले लगाया। भारत माता ने हर संस्कृति और सभ्यता को अपनी गोद में स्थान दिया है। हर प्रकार के धर्म को संरक्षण दिया है, इसलिए यह भारत महान् है। यहां सबके लिए समावेश है। बच्चा चाहे कितनी भी लात लगा दे फिर भी माता बच्चे को प्यार करती है। वैसे ही भारत ने सभी संस्कृतियों-सभ्यताओं

का सम्मान किया है। इसलिए इस भारत देश को महान् कहते हैं। हम देश की महानता को जानें कि क्या है यह देश? आप कहते हैं भारत माता की जय, भारत माता की... जय आहा! आहा! बोलो तो सही क्या आनन्द आता है? एक तरफ यह जयनाद करते हैं, भारत माता की जय, भारत माता की जय। क्या यह जय मां के दिल को सांत्वना दे रही है? भारत भूमि, तड़प रही है या उसको हर्ष हो रहा है? हम इस पर विचार करेंगे और सच्चे मायने में आजादी को समझकर उसे जीने को तत्पर बनेंगे तो अपने जीवन को धन्य बनाएंगे।

15 अगस्त, 2019

14

मन का मोती भिदे नहीं

भगवान् महावीर ने श्रुत धर्म और चारित्र धर्म के रूप में दो प्रकार के धर्म बताए हैं। श्रुत धर्म एक प्रकार का ही है, किंतु चारित्र धर्म में भेद किया गया। वह है– आगार धर्म और अणगार धर्म। सिद्धांत एक होता है, सिद्धांत का भेद नहीं होता है। आचरण में अंतर आ सकता है, आचरण में फर्क आ सकता है। किसी को वजन उठाने के लिए दो तो एक व्यक्ति एक क्विंटल तक वजन भी उठा सकता है और दूसरा व्यक्ति दस किलो वजन भी न उठा सकेगा। वह उसकी शक्ति पर निर्भर है कि उसकी क्षमता कितनी है, उसका सामर्थ्य कितना है। वह कितना भार उठा सकता है? वैसे ही आचरण में कौन कितना आचरण कर सकता है, उसके लिए अंतर कर दिया गया। उसके लिए भेद कर दिया। सिद्धांत में भेद नहीं होता। सिद्धांत किसे कहा गया है या सिद्धांत किसको कहा जाता है? तीनों काल में जो सिद्ध है। जिसको सिद्ध करने के लिए किसी हेतु या तर्क की आवश्यकता नहीं होती, वह होता है– सिद्धांत। जो सिद्ध है और जिसको सिद्ध करने के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं है। मैं कैसा हूं, यह दूसरे से पूछने की आवश्यकता नहीं है। हमारा स्वयं अपने आप से ही पूछ लेना पर्याप्त है। सिद्धांत किसी के मुखातिब नहीं होता कि कोई उसको सिद्ध करे। उसको जरूरत नहीं है किसी के द्वारा सिद्ध होने की। वह अपने आप में सिद्ध है। जो अपने आप में पर्याप्त है उसको कहते हैं, सिद्धांत। वह सबके लिए एक है। अहिंसा है तो अहिंसा है। अहिंसा सबके लिए एक है। अहिंसा का स्वरूप एक है, अहिंसा का महल एक है। अब उस अहिंसा में कौन कितना प्रवेश कर पाता है, यह भिन्नता हो सकती है।

होटल या एक राजमहल में बहुत सारे रूम हैं, बहुत सारे स्थान हैं। कौन, किस स्थान पर रह सकता है यह उस व्यक्ति पर निर्भर है। राजा,

राजा के स्थान पर रहता है। राजकुमार, राजकुमार के स्थान पर होता है और कर्मचारी, कर्मचारिगण के हिसाब से रहता है। चौकीदार, चौकीदारों के स्थान पर रहता है। यह भिन्नता हो गई है किंतु रह रहे सभी राजमहल में ही। एक ही स्थान पर रहते हुए भी जगह का फर्क है। फर्क है या नहीं है? वैसे ही अहिंसा एक है, किंतु परिपालना के आधार पर हमारे में भिन्नता हो जाती है। यह भिन्नता हमारे आचरण के रूप में है कि हम उस अहिंसा का कितना पालन कर सकते हैं? हम कितना अहिंसा सत्य आदि के भीतर प्रवेश कर सकते हैं। यह अपनी-अपनी क्षमता पर निर्भर है।

साधु जीवन में जो प्रविष्ट होना चाहता है, उसके लिए एक अनिवार्यता है। उसमें भंग नहीं है, उसमें विकल्प नहीं है। उसमें ऐसा नहीं है कि थोड़ा ले लूं और थोड़ा छोड़ दूं। उसमें थोड़ा लेना और थोड़ा छोड़ने की बात नहीं है। वह लेना है तो पूरा ही लेना पड़ेगा। उसमें यह नहीं होगा कि आधा ले लूं और आधा नहीं लूं। ऐसा नहीं है कि रुपये के दो टुकड़े कर दो। सौ रुपये का नोट है उसके दो टुकड़े कर दे। क्या वह सौ-सौ में दो बार चल जाएगा? नहीं। पर सौ रुपये के नोट के पूरे सौ मिल जाएंगे या नहीं मिल जाएंगे? मिल जाएंगे पर टुकड़े भले उसके ही हों उनके अलग सौ-सौ रुपए नहीं मिलेंगे। असली मोती भेदा नहीं जा सकता है। असली मोती है और भिद गया तो उसकी कीमत टूट गई। उसकी कीमत कम हो गई। उस मोती को घोटकर पिष्टिक बनाई जा सकती है। जो शरीर को पुष्ट करने वाली हो सकती है किंतु आभूषण के काम में वह नहीं आता। वैसे ही मुनि जीवन वह जिसमें अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह परिपूर्ण होते हैं। जब वह प्रतिज्ञा स्वीकार करता है तो वह यह नहीं कहता कि इसमें आगार यह है और उसमें आगार वह है। आप लोग पच्चक्खाण लेते हो तो उसमें आगार होता है, वह खुला रहता है। श्रावक के पहले व्रत या दूसरे व्रत में अमुक-अमुक आगार होते हैं क्योंकि उसका इतना सामर्थ्य नहीं रहता। वह कहता है कि इतनी परिपालना मेरे से नहीं हो सकती। इसलिए मेरा एक-एक व्रत का अमुक आगार रखा हुआ है, ये खुले रहेंगे। किंतु यहां पर भी एक बात है कि श्रावक जीवन की स्पष्टता है। वह जैसा है वैसा दर्शाता है। श्रावक की स्पष्टता है कि इससे ज्यादा मेरे में सामर्थ्य नहीं है। इससे ज्यादा करने की मेरे भीतर अभी शक्ति नहीं है और वह क्षमतानुसार व्रतादि स्वीकार करता है। साधु का पांचवां महाव्रत अपरिग्रह है जिसमें वह कहता है कि 'चित्तमंतं वा अचित्तमंतं या नेव सयं

परिगिण्हेज्जा' चाहे चित्त रूप में हो या अचित्त रूप में, चाहे सचित्त पदार्थ हो या जड़ पदार्थ हो, परिग्रह को ग्रहण करना ही नहीं है। प्रश्न खड़ा होगा कि साधु आहार ग्रहण करता है, वस्त्र ग्रहण करता है, पात्र ग्रहण करता है और रहने के लिए मकान को भी ग्रहण करता है! हम मकान के लिए यह बोल सकते हैं कि मकान तो साधु अपने नाम पर नहीं कर रहा है। थोड़ी देर के लिए बोल सकते हैं कि साधु तो कुछ समय तक उस मकान में रुकता है– महीने, दो महीने, चार महीने, या दस दिन, पांच दिन, दो दिन। और कोई तो एक दिन में ही रवाना हो सकता है और मकान वह तो छोड़कर ही जाएगा। किंतु वस्त्र, पात्र वह एक दिन के लिए लेगा या सदा के लिए लेगा? उसका वस्त्र, पात्र जब तक चलेगा वह उसको अपने पास ही रखेगा। वस्त्र एक बार उसने ले लिए तो उसको लौटा नहीं सकता है। जब तक वह वस्त्र, पात्र है उसका पूरा उपयोग करना है। उसको लौटा नहीं सकता है। एक बार यदि उनको निश्रा में ले लिया तो उसका वह वस्त्र जब तक वह चल रहा है, उस वस्त्र का उसको उपभोग करना होता है। यह नहीं है कि दूसरा बढ़िया वस्त्र दिखा तो यह वस्त्र वापस गृहस्थ को दे दूं और दूसरा वस्त्र ले लूं। दूसरा कोई बढ़िया पात्र देखा तो अपना पात्र वापस दे दूं और मैं नया पात्र ले लूं– ऐसी चंचलता, ऐसी चपलता मुनि जीवन में नहीं होती। वस्त्र, पात्र जो लिए हैं, वे जब तक चले तब तक उसको चलाना है। जब लगे कि यह वस्त्र चलने लायक नहीं है, पात्र चलने लायक नहीं है, वस्त्र लज्जा ढकने में समर्थ नहीं है। या पात्र इतना बेडोल हो गया है कि कोई देखे तो घिन पैदा हो जाए। लोग धर्म से विमुख हों ऐसा मुनि का लक्ष्य नहीं होता। मुनि का लक्ष्य होता है कि लोग धर्म मार्ग में अनुरक्त हों। धर्म मार्ग से विरक्त न हों। जब वह वस्त्र और पात्र भी ग्रहण करता है तो प्रश्न यह खड़ा होता है कि जब वह कहता है कि 'नेव सयं परिगिण्हेज्जा' किसी भी परिग्रह को ग्रहण नहीं करेगा तो फिर वस्त्र और पात्र को वह ग्रहण कैसे करता है?

यदि कोई दीक्षा ले रहा है तो उस शिष्य को भी ग्रहण कैसे कर रहा है? उसे वे वस्त्रादि और वह शिष्य भी ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए यदि परिग्रह का त्याग है। ऐसा प्रश्न हो सकता है। ऐसा प्रश्न तब होता है जब हम ग्रहण को परिग्रह मानते हैं। ग्रहण करना मात्र परिग्रह नहीं है। परिग्रह की परिभाषा जब हम समझेंगे तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि 'खाली ग्रहण करना ही परिग्रह नहीं है।' परिग्रह किसको कहा गया है? जो मेरे मन को घेर ले, जो मेरे चित्त

को घेर ले, वह है परिग्रह। परिग्रह क्या है? मेरे चित्त में अपना अव-स्थान बना ले। मन मेरा है, चित्त मेरा है। उस चित्त पर, उसने अपना स्थान बना लिया। उस चित्त पर उस मन पर अपनी छाप लगा ली। यदि ऐसा होता है तो वह परिग्रह है। उसको मन में नहीं बसाना चाहिए। वस्त्र धारण किसलिए किए जाते हैं? वस्त्र धारण का उद्देश्य क्या है? लज्जा ढकने के लिए। और शीत, उष्ण आदि के निवारण के लिए। खाली लज्जा ढकने का ही उद्देश्य नहीं है। लज्जा ढकने के लिए तो वस्त्र में एक चोल-पट्टा और एक चादर– ये दो ही पर्याप्त हैं। किंतु किसी को ठंड लगे तो वह दूसरा वस्त्र भी रख सकता है। रख सकता है या नहीं? साधु के लिए मर्यादा की गई है, 72 हाथ की और साध्वी के लिए 96 हाथ की। उसके अंतर्गत ये वस्त्र रख सकते हैं। शीत लगे तो वह उस मर्यादा के भीतर मोटा कपड़ा भी ले सकता है, गर्मी लगे तो वह पतला सूती कपड़ा भी ले सकता है। किंतु ऐसा बनाना चाहिए शरीर को कि कैसा भी समय आ जाए, शीत और उष्ण से उसका मन घबराए नहीं और मन में आर्त भाव भी आए नहीं। जब तक शीत पैदा नहीं होती है, तब तक एक चादर से काम चला ले और जब शीत पैदा हो तो एक चादर के बजाय दो चादर भी रख सकता है। और फिर भी यदि जरूरत हो तो दो के बजाय तीन चादर भी रख सकता है– दो सूती और एक ऊन की। ऊन की चादर यदि ओढ़े तो नीचे सूती, बीच में ऊन की और फिर ऊपर सूती, इस प्रकार से उसका उपयोग करे। ऐसा उपयोग क्यों करना? यह भी विधान बताया गया है, इसके पीछे भी रिज़न (कारण) है। इसके पीछे ममत्व भाव नहीं है। किंतु इसके पीछे उस उपकरण की सुरक्षा के भाव हैं कि ये मेरे संयम में सहयोगी हैं। इसलिए मुझे उसकी देखरेख करनी है। यदि मेरे संयम में उनका उपयोग नहीं है तो उसको धारण करने से कोई मतलब नहीं है।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी का एक ग्रंथ है– 'ओघनिर्युक्ति'। उसमें यह बताया है कि साधु को एक कागज भी अपने पास में नहीं रखना। कितनी महत्त्वपूर्ण बात है, साधु को एक कागज भी अपने पास में रखना नहीं चाहिए? किंतु फिर जब देखा गया कि स्मृति मंद हो रही है, मैमोरी लोस हो रहा है, स्मृति खत्म हो रही है। व्यक्ति अपनी मैमोरी में इतनी सारी चीजें रखने में समर्थ नहीं है। उस समय मोबाइल का युग नहीं था, उस समय कम्प्यूटर का युग नहीं था। अगर होता भी तो साधु के लिए वे किस काम के? उसकी मैमोरी भरी नहीं जाती। तब इन आगमों के ज्ञान को लिपिबद्ध

करवाना चालू हुआ और लिपिबद्ध करवाने चालू हो गए तो उसके लिए कागज भी चाहिए और स्याही-कलम भी चाहिए। उस स्याही को सुखाने का प्रबंध भी करना पड़ेगा। पहले स्याही को घोटकर लिखना होता था और लिखने के बाद उस स्याही को, उस कागज को सुखाने के लिए छोड़ा जाता था। आज तो ऐसी स्याही है कि जैसे-जैसे लिखते जाते हैं वह स्याही तुरंत ही सूखती जाती है। उसको अलग से रखकर सुखाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ज्यों-ज्यों युग बदल रहा है, त्यों-त्यों चीजें बदल रही है। बहुत सारी चीजें परिवर्तित हो रही हैं। भद्रबाहु स्वामी ने बता दिया अपने ग्रंथ में कि एक कागज रखना भी पलिमंथ है अर्थात् एक प्रकार का दोष है। वह परिग्रह बढ़ाएगा और साधु का मन उसमें लगेगा। उसकी सुरक्षा के लिए उसको स्वयं ध्यान लगाना पड़ेगा। वर्षा में वह भीगे नहीं, हवा में उड़े नहीं इसकी सावधानी किसको रखनी होगी? उसके भीतर भी उसका ध्यान बंटेगा। वह ध्यान भी बंटना नहीं चाहिए।

आगमों की दृष्टि को यदि हम समझ लें और उस दृष्टि के अनुसार यदि हम हमारी चर्या बना लें तो फिर किसी प्रकार का, कोई द्वंद्व होना ही नहीं है। आगमकारों का एकदम स्पष्ट मत है कि साधु को 'खिण निकमो रहनो नहीं' एक क्षण के लिए भी निकम्मा नहीं रहना चाहिए। 'करणो आतम' आत्मा के हित में उसके 24 घंटे बीते। एक क्षण, एक पल, हर क्षण उसका किसमें बीते? किसमें लगे? (प्रत्युत्तर-आत्म हित में) कब क्रोध करना? कब अहंकार करना? कब गर्व करना? कब करना, टाइम ही नहीं है। जो एक क्षण भी आत्मा से विमुख नहीं होता है तो उसमें द्वंद्व कहां पैदा होगा, बताओ? निरंतर स्वाध्याय में निमग्न रहे, प्रहर दिन तक स्वाध्याय कर लिया। एक-प्रहर दिन बीत गया तो अब उसका अर्थ चिंतन करना। अब उसके भीतर घुसना, उसके भीतर प्रवेश करना। 'कस्सट्ठा केण वा कंड' किस प्रयोजन से, किसलिए कहा गया है? एक-एक बात की, एक-एक शब्द की पर्यालोचना करना। जब तक उसको नहीं खोलेंगे तब तक वह शब्द बंद तिजोरी में रखे हुए माल के समान है। तिजोरी में माल तो भरा है, किंतु ताला बंद पड़ा है, वह खुला नहीं है। वैसे ही हमने किसी भी गाथा का उच्चारण किया, हमने स्वाध्याय कर लिया किंतु भीतर में क्या है, कुछ भी पता नहीं पड़ेगा और जब उनके शब्दों पर हम पर्यालोचन करेंगे, समीक्षा करेंगे, मंथन करेंगे, गहरे उतरेंगे तब मालूम पड़ेगा कि किस अभिप्राय से बोल रहे हैं? परिग्रह का

अर्थ क्या होता है? चाहे चित्त हो या अचित्त हो। चित्त मतलब, सचित्त या सचेतन। साधु अचित्त का ग्राही होता है या सचित्त का? वह अचित्त का भोगी होता है या सचित्त का त्यागी?

यहां पर शास्त्रकार कह रहे हैं कि सचित्त हो या अचित्त उसको ग्रहण नहीं करे। अचित्त को भी ग्रहण नहीं करे और सचित्त को भी। नहीं करने का मतलब इस रूप में नहीं करे कि वह मन को घेर ले। जैसे यह भोजन ही मुझे चाहिए, यह सब्जी ही मुझे चाहिए, खाने को अमुक पदार्थ ही चाहिए। ऐसा होता है तो साधु अपने स्तर से नीचे जाता है। शैलक राज पहले सरस भोजन करने वाले थे और एकदम से साधु बन गए। साधु बनने के बाद रूक्ष, नीरस आहार का सेवन करने लगे और उसका असर हुआ कि शरीर में व्याधि पैदा हो गई। भ्रमण करते हुए वे अपनी राजधानी में पहुंचे। वहां के स्थानीय उनके पुत्र राजा ने देखा तो उनके मन में विचार हुआ कि मुनिराज रुग्ण हैं। उन्होंने कहा कि मुनिराज, आप यहीं पर विराजें और उपचार करवा लें और उपचार उनका चालू हुआ। उपचार से बीमारी दूर हो गई किंतु खाने के पदार्थों के प्रति आसक्ति बन गई। अब विहार का मन नहीं हो रहा है। विचार करने लगे कि यहीं ठीक हैं। यह भाव है, यह परिग्रह है। साधु का मन ऐसा परिगृहीत नहीं होना चाहिए। हजारों लोग साधु से मिलेंगे किंतु साधु का मन किसी में अटकना नहीं चाहिए। साधु का मन किसी में भ्रमित नहीं होना चाहिए। उसके मन का दर्पण, वह एकदम परिष्कृत रहना चाहिए। यदि परिष्कृत रहेगा तो उसमें वह अपनी शक्ल देख पाएगा। स्वरूप का बोध कर पाएगा। यदि मन का दर्पण मलीन हो गया! उस पर धुंध छा गई! उस पर धूल लग गई, दर्पण पर गहरी परत जम गई अब दर्पण को चेहरे के सामने भी रखेगा तो उसमें अपनी सूरत नजर नहीं आएगी। अपनी शक्ल नजर नहीं आएगी। इसलिए मुनि के लिए बताया कि किसी भी चीज से अपने मन को आवृत नहीं करे। मन में वह चीज छा नहीं जाए इसके लिए उसको बड़ी सावधानी रखनी चाहिए।

खाने की वस्तु, पहनने के लिए कपड़े, भोजन के पात्र– ऐसी किसी भी चीज पर उसका ममत्व भाव नहीं बनना चाहिए। और कोई दीक्षा ले रहा हो तो, चाहे वह शिष्य हो या शिष्या, कोई भी हो उसमें भी मन गृहीत नहीं होना चाहिए। न मन में हर्ष होना चाहिए और न ही मन में गम होना चाहिए। दीक्षा में हर्ष नहीं होना चाहिए। कोई दीक्षा ले तो उस समय हर्ष होना चाहिए या नहीं होना चाहिए? (प्रत्युत्तर– होना चाहिए) होना चाहिए तो क्यों होना

चाहिए? बहुत बारीक है शास्त्रकारों की दृष्टि। बहुत सूक्ष्म है। हम स्थूल रूप में देख रहे होते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि अपने लिए किसी को दीक्षित नहीं करना। अपने लिए किसी को दीक्षित नहीं करना चाहिए। क्या अर्थ हुआ अपने लिए दीक्षित नहीं करने का? अपने लिए दीक्षित किया और मेरे लिए काम करने वाला नहीं बना तो मन में खीझ पैदा होगी। दीक्षा लेने से पहले माता-पिता कहते थे कि तुम्हारे बिना मेरा कौन है? मेरी सेवा कौन करेगा? बुढ़ापे में सेवा कौन करेगा, हमें सहारा कौन देगा? वहां माता-पिता को छोड़ा और यहां मुनि बन रहे हैं! गुरु कहते हैं– शिष्य! तू यदि मेरे को छोड़कर चला जाएगा तो मेरी सेवा कौन करेगा? मतलब दुःख तो रहेगा ही, रोना तो रहेगा ही। गृहस्थ में भी वह रोना है और साधु जीवन में भी वह दुःख रहे तो मुनि बनना क्या सार्थक होगा?

इसलिए भगवान् महावीर की दृष्टि, शास्त्रकारों की दृष्टि इतनी सूक्ष्म रही है कि तुम अपने लिए किसी को दीक्षित नहीं करोगे। मुझे नहीं चाहिए, मेरे को क्या करना है? कल्प है। यदि मुनि का कल्प नहीं है तो कल्प को बनाने के लिए दीक्षित करना है। दीक्षा देने वाले और दीक्षा लेने वाले के प्रति यह भाव रहे कि वह अपनी आत्मा का कल्याण करे। और आत्मकल्याण के लिए कोई सहयोगी चाहता है। वहां सहयोग की आवश्यकता होती है उसमें यदि मेरे सहयोगी की आवश्यकता हो तो सहयोगी बन सकते हैं। उसको साथ दे सकते हैं।

अभी बड़ौद में श्रीमती सरोज जी जैन श्रीपाल जी जैन की पत्नी बीमार थीं। धर्म भावना ऊंची थी और जैसा मुझे ज्ञात हुआ, छह महीने पहले उन्होंने निवेदन किया था कि दीक्षा लेना चाहती हैं। श्रीपाल जी का मन नहीं बना और अभी कुछ दिन पहले उनकी भावना हो गई कि मैं संथारा लेना चाहती हूं। तीन दिन से लगभग आहार के प्रति अरुचि हो गई। महासती मनीषाश्री जी आदि दर्शन देने के लिए पधारीं और फिर परिवार वाले स्थानक में ले आए। वहीं संघ और परिवार वालों की अनुमतिपूर्वक 8 तारीख को उनको संथारा करवाया गया। दीक्षा की भावना हुई। परिवार वालों की और संघ की अनुमतिपूर्वक 9 तारीख को दीक्षा हो गई और 10 तारीख को सुबह उन्होंने अपनी यात्रा, संयमी यात्रा को पूर्णता दे दी। मेरे पास समाचार आए तो मैंने बताया कि आप तीन सतियां जी हों। संथारा कितने दिन चलता है, कुछ पता नहीं होता है। संथारे में तो श्रावक भी संभाल लेते हैं। श्रावक हैं तो श्रावक और श्राविकाएं हैं तो श्राविकांए संभालती हैं। दीक्षा लेने के बाद

जवाबदारी आप तीनों पर होगी। यदि आप तीनों जवाबदारी संभाल सकती हैं तो दीक्षा दें, कोई दिक्कत नहीं है। और उन्होंने अपनी हिम्मत से दीक्षा दी, उनको सहयोग किया। वैसे ही सामने वाले के आत्मकल्याण के लिए सहयोगी बनने की बात बताई है। किंतु यह मेरा टोला बढ़ाएगा। मेरा इतना बड़ा ग्रुप है, वह और बढ़ जाएगा। इस भावना से दीक्षा देता है और परिग्रह का भाव आता है तो दोष किसे लगता है? साधु को दोष लगेगा। आपको हर्ष हो सकता है कि कोई दीक्षा ले रहा है या दे रहा है, किंतु दीक्षा लेने से या देने से हर्ष नहीं होता। यदि हर्ष हो तो हमारे घर से यदि कोई दीक्षा ले तो वही हर्ष होना चाहिए। यदि कोई हमारे घर से दीक्षा लेता है तो पीड़ा क्यों होती है? वह जो पीड़ा हो रही है वह परिग्रह का भाव है। क्योंकि आपने उसको अपने मन में बिठाया है। वह अभी तक मन में जमा हुआ है। अब यदि उसको हटाया जा रहा है तो हमारी नीयत उसको छोड़ने की नहीं है। हम छोड़ना नहीं चाहते हैं। खोटा सिक्का भी हो तो छोड़ूं कैसे? वह जल्दी से छूटता नहीं है। नहीं छूटता है ना? खोटा हीरा आ गया और आप कहीं पर लेकर गए और आपको मालूम पड़ा यह हीरा तो नकली है तो फिर भी आप उसको छोड़ेंगे क्या? नहीं छोड़ेंगे। कैसे फेंकूं कभी कहीं कीमत मिल जाए और उसको इस हीरे की अच्छी कीमत मिल जाए तो? नहीं फेंकते हैं। पड़ा है, पड़े रहने दो।

अभी घर छोटे होने लग गए तो टूटी-फूटी चीजें भंगार में देनी पड़ती है। निकालनी पड़ती है। और पहले बड़े-बड़े मकान होते थे तो किसी कोने में पड़ी हैं। हमारी चीज, कोई एक भी चीज जल्दी से छूटती नहीं है। एक चीज को छोड़ने के लिए मैंने एक दिन पहले भी कहा था कि साड़ियों की मर्यादा कर लें और मालूम पड़ा कि एक साड़ी ज्यादा है या दो साड़ी ज्यादा है। और जो साड़ी यदि मर्यादा से ज्यादा है तो उसको निकालना है। दस बार, पांच बार इधर से उधर करते हैं और देखते हैं। यह भी ठीक है, यह भी ठीक है और इस तरह इधर से उधर करके साड़ियों की थप्पी लग जाती है। एक या दो साड़ियों को निकालना भी भारी पड़ रहा है! बड़ी मुश्किल होती है। वैसे ही हमारे घर से यदि कोई सदस्य निकल रहा है तो हमारे ममत्व को वह परेशान करता है। वहां ममत्व है। हमारे मन से जुड़ा हुआ है, इसलिए उसकी पीड़ा किसको होती है? फेविकोल हो चाहे फेविक्विक हमारी चमड़ी पर चिपक गया और उसको खींचेंगे तो चमड़ी भी खिंच जाएगी या नहीं खिंच जाएगी? यद्यपि दोनों अलग हैं। किंतु फेविकोल चिपका है और उसको खींचेंगे तो

हमारी चमड़ी को भी पीड़ा होगी। कागजों को गोंद से चिपकाया गया। अब उसको खींचो तो एक कागज फटेगा तो दूसरा कागज भी फटेगा या नहीं फटेगा? उसको भी चोट आएगी या नहीं आएगी? (प्रत्युत्तर– आएगी) वैसे ही अब ममत्व किया है तो उसकी चोट हमको आएगी और यदि–

अहो समदृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब-प्रतिपाल।
अन्तर्गत-न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल॥

फिर कोई जन्में तो कोई बात नहीं और मर गए तो कोई बात नहीं। कुछ मिल गया तो कोई बात नहीं और नहीं भी मिला तो कोई बात नही है। 'योगे वियोगे भवने वने वा' योग भावना में हो या वियोग भावना में हो। जंगल में हो चाहे घर में हो। कहीं-से-कहीं, कोई बात मन में नहीं बनेगी। कोई उतार-चढ़ाव नहीं। इस प्रकार त्याग की भावना हमें मन में धार लेनी है। ऐसा होने पर कोई दीक्षित होता है तो गुणिषु प्रमोदम् भाव के रूप में प्रमोद हो सकता है। अन्यथा मन ममत्व से पीड़ित ही होना संभव है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. युवाचार्य बना दिए गए और उस समय समझ लीजिए कि साधुओं की किल्लत थी। बहुत कम साधु संप्रदाय में थे। कितने ही संत ठाणापति बीकानेर और गंगाशहर, भीनासर में विराज रहे थे। मुश्किल से दो-तीन संत साथ में थे। उस समय दीक्षा होने वाली थी श्री सेवंत मुनिजी म.सा. की। तब कर्मठ सेवाभावी श्री इंद्रचंद जी म.सा. ने निवेदन किया युवाचार्य श्री नानालाल जी म.सा. को कि भगवन्, आप दीक्षार्थी के परिवार वालों से थोड़ा रुख मिलाएं। आप उनको समझाने का प्रयत्न कीजिए। युवाचार्य श्री निर्लिप्त थे। उन्होंने कहा कि आपको समझाना है तो समझा लो। नहीं तो जैसा होगा, वैसा हो जाएगा। जैसा बनेगा वैसा बनेगा। यह सुनकर श्री इंद्रचंद जी म.सा. के मन में विचार आया कि ये इतने निर्लिप्त रहेंगे तो संप्रदाय कैसे चलेगा? शासन कैसे चलेगा? एकदम निर्लिप्त रहते हैं तो फिर आगे कैसे होगा? मंजुला श्रीजी म.सा.! आपका मत क्या है? जो आगम का मत है, वही हमारा मत है। हम नहीं कर पा रहे हैं तो बात अलग है किंतु सिद्धांत एक है। आचरण दो, तीन, चार हो सकते हैं। आचरण में भेद हैं, किंतु सिद्धांत में भेद नहीं है। सिद्धांत को कभी भेदा नहीं जा सकता। उसके टुकड़े नहीं किए जा सकते। नदी बह रही है। हमारी जितनी क्षमता है उतना पानी उसमें से पी लिया। वह हमारी क्षमता पर निर्भर है। यह नहीं है कि नदी एक लोटे में आ गई। और आ भी गई। नदी

का जल नदी ही है। किंतु जब हमने उसको लोटे में ले लिया अब वह नदी का पानी ही है। पूरी नदी लोटे में नहीं आई, पूरी नदी आई क्या? नहीं आई किंतु नदी में बहने वाला पानी और जो पानी लोटे में भरा हुआ है उन दोनों पानी के स्वाद में अंतर नहीं आएगा। इसी प्रकार चाहे पूरी अहिंसा और चाहे पूरे अपरिग्रह का पालन करे और चाहे परिग्रह की मर्यादा करें तो उसके स्वाद में अंतर नहीं आएगा। शक्कर का एक दाना उसको जीभ पर रखेंगे तो थोड़ी देर मिठास रहेगी और अगर शक्कर की जगह हम मिस्री की एक डली जीभ पर रखेंगे तो ज्यादा देर तक उसकी मिठास रहेगी। अगर मिस्री की जगह हम शक्कर का दाना चबाएंगे तो उससे कितनी मिठास आएगी? शक्कर के दाने में जिस प्रकार से कम मिठास होती है और जिस प्रकार से मिस्री के डले में ज्यादा मिठास होती है और ज्यादा देर तक रहती है, वैसे ही जितना-जितना तुम अहिंसा, सत्य आदि का पालन करोगे उतना ही तुम्हें आनन्द आएगा। तुम अपने आपको कितना निर्लिप्त रख सकते हो? जितना अपने आपको निर्लिप्त रखोगे, उतना ही आनन्द ज्यादा आएगा और लेप लगा नहीं कि आपका आनन्द कम हो जाएगा। जैसे वह क्या होता है, लेमिनशन। जीभ पर यदि लेमिनेशन लगा लिया फिर कुछ भी खाते हैं तो स्वाद तो आता ही नहीं है। क्यों नहीं आ रहा है? पदार्थ वही खाया जा रहा है किंतु जीभ को हमने कवर्ड कर दिया। जब जीभ पर कवर होगा तो उसका स्वाद नहीं आ पाएगा वैसे ही हमारा दिल, हमारा चित्त, किसी से कवर हो जाएगा। उस पर लेप लग जाएगा तो फिर हमें जो आनन्द आना चाहिए वह आनन्द नहीं आ पाएगा। आनन्द नहीं आ पाने का कारण क्या हुआ? लेप। इसलिए कहा गया है कि स्वयं को निर्लेप बनाओ। स्वयं को निर्लिप्त करो।

आचार्य पूज्य गुरुदेव कितने निर्लिप्त थे! उनके जीवन की कई ऐसी घटनाएं हैं, कितनी ही बातें हैं, उनको हम अभी नहीं बता सकते हैं। अभी इतना समय नहीं है कि वे बातें आपको बताई जा सकें। किंतु फिर भी आप विचार करो कि युवाचार्य पद पर हैं और ऐसी स्थिति है कि घरों में भी जाएं तो साथ में चलने वाला एक भी साधु नहीं है! ऐसा समझ लो थोड़ी देर के लिए और ऐसे समय में यदि कोई दीक्षा हो रही है, दीक्षा तो छोड़ो यदि कोई वैरागी भी है, अभी केवल विचार हुआ है तो उसके लिए भी कितने-कितने पापड़ बेलने शुरू हो जाते हैं? किंतु नहीं। निर्लिप्तता की बदौलत यह जिनशासन टिका हुआ है। यदि लेप लगाने लग जाएं और हम अपने आप

को लिप्त करते हुए चले जाएं तो जिनशासन की वह छवि कैसे रह पाएगी? दीक्षा ले रहे हैं! वे मेरे लिए दीक्षा नहीं ले रहे हैं। मैं अपने लिए, दीक्षा नहीं दे रहा हूं। उनका (दीक्षा दाता का) उद्देश्य रहे कि वे दीक्षा देंगे तो सामने वाला अपनी आत्मा का उद्धार करे। वह अपनी आत्मा का कल्याण करे। वह मेरे साथ में कैसा व्यवहार करे उसकी वह जाने। मेरा विनय करे तो वह जाने, और मेरा अविनय करे तो वह जाने। उसके दिल की बात वह जाने। मेरा काम है कि आत्मकल्याण के लिए वह उत्थित है और उसे यदि किसी साधु की सहायता चाहिए, सहयोग चाहिए तो उसको सहयोग देना चाहिए और भगवान् महावीर ने ऐसी कई आत्माओं को दीक्षा दी। जमाली को भी दीक्षा दी, भले ही बाद में वह विपरीत बन गया। किंतु, वह विपरीत बन गया तो भी क्या भगवान् महावीर के चित्त पर कोई फर्क पड़ा? क्या उनका चित्त दुःखी हुआ? और हमारे को कोई थोड़ा-सा बोल दे तो चित्त ऊंचा-नीचा हो जाता है। क्यों हो जाए? यह हमारा चित्त गर्वान्वित है। गर्वित है। हमारा चित्त गर्व से जुड़ा हुआ है तो वह चोट खाएगा। उस पर चोट पड़ेगी और उसके भीतर में दर्द पैदा होगा। होगा या नहीं होगा? यह संभव है या नहीं? (प्रत्युत्तर– है) और यदि हमने गर्व को हटा दिया तो फिर आपको दुःख होगा? नहीं। मैंने अपने घर में किसी आतंकी को छुपा रखा है, किसी चोर को छुपाया हुआ है। चोरी की वस्तु को छुपाया हुआ है। मैंने चोरी की योजना बनाई या मैंने आतंकियों के साथ मिलकर योजना बनाई तो उसका प्रभाव मेरे मन तक आएगा या नहीं आएगा? उस चोरी का अंश, उस आतंकी का अंश मेरे तक आएगा या नहीं आएगा? अभी नया कानून बन गया है। आतंकियों को सहयोग देने वाला या आतंकियों को सपोर्ट देने वाला सभी को किसकी गिनती में गिना जाएगा? वे सभी आतंकी ही हैं। आतंकियों को घर में जगह देना या आतंकवाद की योजना बनाने वाला, यह सब नए कानून में आतंक के रूप में गिना जाएगा। आपने कहा कि मैंने कोई काम नहीं किया। मैंने सिर्फ सपोर्ट किया। बताओ, सहयोग दिया या नहीं दिया? योजना में अपने आपको शामिल किया या नहीं किया? दो बातें योजना में बताई या नहीं बताई? आपकी वे दो बातें वहां पर आतंकवाद को सफल बनाने में काम आएगी या नहीं आएगी? यदि आपने सपोर्ट किया तो आप का नाम भी आतंकवादी में आएगा। वैसे ही हम यदि किसी से दिल जोड़ेंगे तो उसकी हानि हमें उठानी ही पड़ेगी।

इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि सावधान! तुम सावधान रहो! कवि आनंदघन जी कहते हैं– 'सावधान मनसा करी' साधक सावधान मन से विचार करें। बड़ी सावधानी से कदम बढ़ाएं। अभी संत उत्तराध्ययन सूत्र के चौथे अध्ययन की वाचना कर रहे हैं। उसमें बताया गया है कि 'चरे पयाइं परिसंकमाणो' बड़े सावधान होकर चलो। एक पैर भी रखो तो बड़ी सावधानी से रखो। एक पैर भी चूकने वाला हो गया, फिसलने वाला हो गया तो वह रपटकर हमें कहां से कहां तक ले जाएगा? इसका पता नहीं। इसलिए हर कदम सावधानी से रखें। हर कदम... (प्रत्युत्तर-सावधान) हर कदम... (प्रत्युत्तर– सावधान) यह क्या हो रहा है? कोई परेड हो रही है क्या? 15 अगस्त तो निकल गया! हर कदम सावधान! हर कदम सावधान! ऐसा मुनि/साधु के लिए बताया गया है और वह सावधानी से चले तो बोलो कभी ठोकर खाएंगे क्या? कभी ठोकर लगेगी? 'सावधानी हटी और दुर्घटना घटी।' जैसे ही हमारी सावधानी हटती है तो हमारे भीतर में दुर्घटना हो जाती है। हमें थोड़ा इधर-उधर झांकने का और देखने का मौका मिलता है और दुर्घटना घट जाती है। इसलिए मुनि को इतना सावधान होकर चलने की बात बताई गई है। क्या-क्या बातें बताई गई है? क्या-क्या बातें आपको बतावें?

जम्बू कुमार चारित्र का एक प्रसंग है। प्रभव उनके पास पहुंचा तो उसे कहा, भाई!– किसको भाई बोल रहे हैं जंबू कुमार? प्रभव चोर को भाई बोल रहे हैं। प्रभव चोर जो खूंखार चोर है। चोर कहें, डकैत कहें, जो भी कहें– धन हरण करने वाला। आज जंबू कुमार के घर में ही धन का हरण करने के लिए आया है। हरण करने के लिए पोटलियां बांधकर उसके साथी खड़े हैं और ऐसे समय भी उससे कैसे बात की जा रही है? माधुर्य भरी बातें की जा रही हैं। धन पर यदि ममत्व होता, निःस्पृहता नहीं होती तो रूपक कुछ और होता। धन पर मन नहीं था इसलिए मन का माधुर्य बना रहा। इतना ही नहीं हम एक-एक बात पर विचार करें तो लगता है कि वहां क्या था? और हम कहां पर हैं? हम कहां पर खड़े हैं? माधुर्य हमारा घटना नहीं चाहिए। जैसे मधु में माधुर्य है, वैसे ही साधु जीवन में माधुर्य सदा बना रहना चाहिए। वह माधुर्य कब बना रह सकता है? हमारी माधुर्यता कैसे बनी रह सकती है? जहर पिलाने वाले पिलाएंगे, उनको रोका नहीं जा सकता। जहर पिलाने वाले कितना भी जहर पिलावें। हमारे भीतर उसे परिणत करने की क्षमता कैसी होनी चाहिए? यह कि हम उसको गरल रूप में, विष रूप में परिणत नहीं करे।

बताया जाता है कि समुद्र का मंथन किया गया तो उसमें से रत्न निकले और जहर भी निकला। 14 रत्न निकले। रत्न निकले तो उसको तो लोग ले गए। रत्नों को देव ले गए। और जब जहर निकला तो उसे कौन ले? तब कौन लेने के लिए तैयार हुए? महादेव! उस समय महादेव तैयार हुए उसको पीने के लिए। एक बार पहले भी बताया गया था कि महादेव कब और कैसे बने? जहर पीने से। बाकी सारे जो रत्न ले गए वे तो देव रह गए और शंकर जिन्होंने जहर को पी लिया वे बन गए–महादेव! महादेव कौन बनता है–जो जहर पीता है। उस जहर पीने वाले को कोई कितना भी जहर पिला दे, तो वह मेरे भीतर जाकर जहर का काम नहीं करेगा। चंड कौशिक भी यदि मुझे डस ले तो उसका जहर मेरे भीतर जहर रूप में परिणत नहीं होगा। उसका गलत परिणाम मेरे भीतर नहीं आएगा। ऐसा यदि अपने चित्त को बना लेते हैं तो जहर क्या है? क्या करेगा जहर! आप कह सकते हैं–म.सा.! ये सब बातें हैं। हां, ये सब एकदम बातें ही हैं। किंतु, कपोल-कल्पित बातें नहीं हैं। यदि हम जहर को अमृत नहीं बना पा रहे हैं तो वह हमारी कमजोरी है। हकीकत में यह निश्चित है जिस दिन हमारी विष को अमृत रूप में परिणमन करने की क्षमता हो, बनाने की क्षमता बन गई, तो उसको विष रूप में परिणत नहीं होने देंगे। विष को भी सुधा रूप में बना लेंगे।

मेरा निम्बाहेड़ा चातुर्मास था। एक बार एक वैद्य जी ने कैप्सूल दिये। वह एक प्रकार से जहर ही था बीमारी को दूर करने के लिए। एक श्रावक जी जो डॉक्टर थे, उनको जब मालूम पड़ा तो उन्होंने कहा, म.सा.! यह चीज लेना मत। यह बहुत घातक जहर है। इसका किडनी पर बहुत घातक असर हो सकता है। किडनी को खराब कर सकता है। तो मैंने कहा कि इसे देने वाले भी तो वैद्य जी हैं। किंतु उसके साथ ही उन्होंने बताया साथ में कि एक कैप्सूल यदि लेते हैं और मेरे खयाल से पांच या आठ कैप्सूल दिए होंगे। उन्होंने कहा कि आपको 40 दिन तक रोजाना 100 ग्राम घी खाना होगा। अरे! भाई 100 ग्राम, रोज-रोज 100 ग्राम लाते हुए भी शर्म आती है। उन्होंने कहा कि कैसा भी घी हो, चाहे नकली हो, चाहे असली हो, चाहे डालडा घी भी क्यों न हो किंतु 100 ग्राम घी रोज खाना जरूरी है तभी उस जहर का असर नहीं होगा। उन्होंने उसका काट बता दिया। उसका काट बताया कि घी खा लिया तो किडनी और शरीर के दूसरे अवयवों पर इसका असर नहीं होगा। जैसे उस जहर का काट बता दिया कि घी खा लो तो उस जहर का असर नहीं होगा।

वैसे ही हमारे को कोई जहर पिलावे तो घी का अर्थ क्या होता है? घी का अर्थ होता है–स्नेह-चिकना। हमारे भीतर में इतनी चिकनाहट रहे, इतना वात्सल्य रहे कि वह जहर हमारे भीतर में जहर रूप में परिणत हो नहीं सके। भले ही मीरा को जहर पिला दिया गया और वह भी एक बार नहीं तीन-तीन बार! उनको जहर पिलाने के लिए जहर को दूध में मिलाया गया और जहर मिलाया हुआ प्याला दे दिया गया। तो उसने ले लिया और जहर को पी भी लिया। किंतु कुछ भी नहीं बिगड़ा। क्यों नहीं बिगड़ा? उसका चित्त परमात्मा में रमा हुआ था। उसके भीतर भगवान् की भक्ति का माधुर्य भरा हुआ था तो वह जहर काम नहीं कर पाया।

वैसे ही हमारे भीतर में इतनी क्षमता होनी चाहिए कि कोई कितना भी जहर पिला दे, मेरे भीतर जाकर वह अमृत के रूप में बदल जाए। सर्प को कितना भी दूध पिला दो, किंतु उस दूध का परिणमन उसमें किस रूप में होगा? (प्रत्युत्तर–विष) जबकि दूध को अमृत के रूप में माना जाता है। मर्त्य लोक का वह दूध अमृत के रूप में है उसे जहर में बदला जा सकता है तो जहर को अमृत के रूप में क्यों नहीं बदला जा सकता है। जहर को अमृत के रूप में बदला जा सकता है या नहीं बदला जा सकता? कोई कितना भी जहर पिला दे, शंकर जी को कहा कि महादेव जी! ये लो, जहर पी लो। तो उन्होंने भी कहा, लाओ और जहर पी लिया तो क्या वे मर गए? क्या महादेव जी मर गए? नहीं मरे। अपितु जहर पीकर वे अजर-अमर बन गए, वही बात हमारे भीतर होनी चाहिए। कोई कितना भी जहर पिला दे, मेरा अपना माधुर्य है वह घटना नहीं चाहिए। मैं मधु-कुंभ बना रहूंगा। मैं विष-कुंभ नहीं बनना चाहता।

हमारे भीतर कोई जहर पैदा हो कर फूड पॉइजन हो जाता है। खाने से पॉइजन बन जाता है। कोई चीज ऐसी खाने में आ गई, जिसको डॉक्टर की भाषा में हम फूड पॉइजन कहते हैं। ऐसी कोई चीज या ऐसा कोई पदार्थ हो जिसको खाने से फूड पॉइजन हो। यदि फूड पॉइजन बन गया और उसको बाहर नहीं निकाला गया तो आदमी का जीवन खत्म हो जाएगा। समाप्त हो जाएगा। फूड पॉइजन निकाल दिया तो वापस व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है या नहीं हो सकता है? वैसे हमारे भीतर में पॉइजन पैदा होता ही है। एक सीमा तक बना रहता है तो वह घातक नहीं होता है। शरीर में कितना ही जहर है किंतु वह घातक नहीं होता है। जितना शरीर में चल सकता है उतना तो शरीर

चला लेता है। उसमें कोई दिक्कत नहीं है। किंतु उससे ज्यादा मात्रा बढ़ गई तो वह नुकसान करेगा। वह शरीर के अवयवों की घात करेगा। इसलिए डाक्टर फूड पॉइजन को दूर करने के लिए प्रयत्न करते हैं। जब शरीर में पॉइजन को झेलने की क्षमता है और कोई पॉइजन दे तो उसको क्या हकीकत में हमको पी लेना चाहिए? और यदि पी लिया तो उसका परिणमन नहीं होगा? परिणमन तो होगा, होता है। उसे अमृत रूप बनाने की क्षमता भी अपने में होनी चाहिए।

आज हम किस रूप में परिणमन कर रहे हैं? हमारे को कोई गाली दे दे या भला-बुरा कह दे तो हमारा मन खीझने लग जाता है। उसके चिथड़े-चिथड़े हो जाते हैं। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब है कोई चीज कहीं चिपकी हुई है और उसको खींचें तो उसमें खिंचाव पैदा होता है। चित्त में खिंचाव पैदा हो जाता है। यह अहंकार होता है। यह होता है गर्व जिसमें वह खिंचाव पैदा होता है। और ये खिंचाव हम अनुभव करते रहते हैं। बहुत बार अनुभव करते हैं। ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने इस प्रकार का खिंचाव, इस प्रकार का तनाव अभी तक अपनी जिंदगी में अनुभव नहीं किया हो। है हिम्मत जो कोई हाथ उठाए? चलो तय हो गया कि कोई नहीं है, बहुमत से। नहीं सर्वानुमति से तय हो गया। अतः तय हुआ कि हमारे भीतर जो तनाव पैदा हुआ, वो अटैचमेंट है। हमने अटैचमेंट किया इस कारण से यह तनाव पैदा हुआ है।

जंबू कुमार वही बात कहते हैं प्रभव से कि भाई! यह अटैचमेंट, यह लगाव किस-किस रूप में आदमी को कैसे-कैसे परिणाम दिलाने वाला होता है। दुनिया में अनादिकाल से हर आत्मा के साथ अनंत-अनंत बार संबंध/अटैचमेंट हो चुके हैं। कितनी ही बार हो गए हैं। एक बात मैं यह बताता हूं कि एक ही जन्म में एक व्यक्ति के 18-18 नाते हो गए और उसके कहने की तैयारी बन रही है। 18 नाते की बात कहकर कैसे उसको समझाते हैं। निष्कर्ष यही है कि ऐसे नातों की स्थिति बनती है। ऐसे संसार में तनाव, खिंचाव पैदा होते हैं। दुःख-द्वंद्व पैदा होते हैं। ऐसे संसार में कौन जीना चाहेगा, कौन रहना चाहेगा? बोलो कि महाराज हम रहना चाहते हैं। कितना भी तनाव हो क्या सारे संसार के लोग भागकर चले जाएंगे। सब छोड़कर चले जाएंगे फिर संसार चलेगा कैसे? हम तनावों को लेने के लिए तैयार हैं। तैयार हैं ना? तैयार हैं ना आप लोग? बोलो तो सही। तैयार हो

क्या? अब नहीं बोलेंगे। आप लोग बोल रहे हैं कि प्रयास कर रहे हैं। क्या प्रयास कर रहे हैं? तनाव को लेने का? तनाव में कोई जीना नहीं चाहता। सारे जीव सुखमय जीवन जीना चाहते हैं। कोई नहीं चाहता कि मेरे जीवन में दुःख आवे। कौन-कौन चाहता है कि मैं दुःखी बनकर जीवन जीऊं? कौन-कौन चाहता है कि मुझे जिंदगी में सुख नहीं मिलना चाहिए? कौन चाहता है? कोई चाहता है तो हाथ खड़ा करो अभी पच्चक्खाण करा देता हूं। ये तो सब कहेंगे कि मुझे दुःख नहीं मिले। किंतु खाली सुख से अलूणा लगेगा खाली सुख से स्वाद नहीं मिलेगा। सुख के साथ दुःख का मिश्रण होना चाहिए तभी जिंदगी का मजा है जीने में। खाली मिठाई खाये जा रहे हैं, खाये जा रहे हैं तो कैसा लगेगा? ऊब जाएंगे और अगर मिठाई के साथ बीच-बीच में नमकीन मिल जाए खाने के लिए तो फिर? आहा! थोड़ी नमकीन आ गई तो खाने का मजा आ जाएगा।

हम तो स्वाद लेने वाले जीव हैं। इसलिए स्वाद में ही जीते रहेंगे तो फिर हमको कभी मीठा तो कभी खट्टा तो कभी कड़वे स्वाद की भी आवश्यकता है। तो कभी जिंदगी में तनाव और खिंचाव भी होगा। कभी मीठा रस पैदा होगा, कभी खट्टा पैदा होगा। हमें इन सब चीजों को झेलना पड़ेगा। जब हमारी जीभ स्वाद वाली है तो कभी खट्टा चखना पड़ेगा और कड़वा भी खाना पड़ेगा। चाहे मीठे को स्वाद लेकर खाएं और कड़वे, तीखे को कैसा भी मुंह कर खाएं। हमें खाना पड़ेगा। संसार में रहना है तो सारी चीजों को सहन करना पड़ेगा। जो कहते हैं मुझे इन चीजों में नहीं जीना उसको क्या करना पड़ेगा?

हे प्रभु मेरी एक पुकार मैं भी बन जाऊं अणगार,
तज कर सारे पाप अठार, मैं भी बन जाऊं अणगार।

दिल्ली के लोग भी आए हुए हैं, सुना है। आए हुए हैं तो फिर 20-20 (ट्वेन्टी-ट्वेन्टी) की आवाज नहीं है। अलग-अलग क्षेत्र वाले अलग-अलग क्षेत्र से बोलें ताकि पहचान सकूं कि किसकी आवाज है। कैसी है। सब साथ में बोलेंगे तो पता ही नहीं चलेगा कि कौन-से लोग बोल रहे हैं। देख लो, देख लो एक के बाद एक विकास हो रहा है। ऋषभ जी विकास हो रहा है मारवाड़ में। देख लो म.सा. मेरे चेहरे को, विकास हो रहा है ना? आहा! क्या मुस्कुराहट है चेहरे पर और कोई बीमारी है तो बता दो। (प्रत्युत्तर-नहीं है) फिर चातुर्मास की जरूरत क्या है? जब बीमारी है ही

नहीं तो डॉक्टर करेगा क्या आकर? डॉक्टर तो वहां चाहिए, जहां बीमारी हो। नहीं है तो डॉक्टर क्या करेगा?

आचार्य पूज्य गुरुदेव जोधपुर दीक्षा के बाद सूरसागर पधारे। वहीं वॉकिंग करते हुए श्री थानचंद जी वकील जो जाने माने वकील थे और उस समय में वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ के अध्यक्ष भी थे, जो साफा लगाते थे और वे उधर टहलने के लिए आए हुए थे तो गुरुदेव के दर्शन करने आ गए। सूरसागर आए और कहा, गुरुदेव! आपको चातुर्मास जोधपुर ही करना है। आचार्य श्री ने कहा कि मुझे छोटा क्षेत्र ठीक लगता है। उन्होंने कहा कि मान लो कि कोई मुंबई का बड़ा सर्जन है। वह कहे मुझे गांव में अच्छा लग रहा है तो काम नहीं चलेगा। क्योंकि वहां पर उसको बीमार नहीं मिलेंगे। बीमार लोग कहां पर मिलेंगे? गांव में इतने बीमार नहीं मिलेंगे। बड़े शहर में ज्यादा बीमार मिलेंगे। वैसे ही आप कहते हो कि आपको छोटा क्षेत्र ठीक लगता है तो फिर बड़े क्षेत्र वाले क्या करेंगे? यह तो बीच में बात आ गई इसलिए कह दिया। एक बार अपने-अपने क्षेत्र वाले बोलें, अपने-अपने क्षेत्र के लोग अलग-अलग बोलेंगे। मेवाड़ वाले आप मेवाड़ के हो या मारवाड़ के हो? आपका जिला कौन-सा लगता है? भीलवाड़ा लगता है तो फिर मेवाड़ के हो गए ना। मेवाड़ वाले अलग बोलेंगे और मारवाड़ वाले अलग बोलेंगे।

हे प्रभु मेरी एक पुकार मैं भी बन जाऊं अणगार

यह किस क्षेत्र की आवाज है? (सभा में अलग-अलग उत्तर) मारवाड़ की आवाज है। यह क्या बात हुई है? कोई मारवाड़ बोल रहा है, कोई छत्तीसगढ़ बोल रहा है? बिना मारवाड़ के दिल्ली कहां से आई और बिना मारवाड़ के छत्तीसगढ़ कहां से आया? सारी आवाज कहां की हो गई? (प्रत्युत्तर—मारवाड़) फिर सारी आवाज मारवाड़ की हो गई। मैंने कहा कि अलग-अलग बोलेंगे। अलग-अलग क्षेत्र की अलग-अलग पहचान होती है। बोलो अब।

हे प्रभु मेरी एक पुकार मैं भी बन जाऊं अणगार!

सुभाष जी! बोले क्या आप? कोलकाता से बोले या जोधपुर से बोले? दोनों से बोले! दुविधा में दोनों गए माया मिली, न राम। दोनों में बोले तो दुविधा में पड़ गए ना। न माया मिली और न ही राम। आदमी दुविधा में क्यों चला जाता है? हम दुविधा में क्यों जाएं? अपने को तो सुविधा में रहना है। सुख में रहना है। कैसे रहना है? यह समय के साथ आगे विचार करेंगे।

हमारा एक लक्ष्य होना चाहिए जिंदगी में कि जो यह जीवन मिला है, जो मनुष्य जीवन मिला है, जो हीरा हाथ में आया है इसे मैं ऐसे विषय वासना में नहीं गंवाऊंगा। किसमें नहीं गंवाएंगे?—विषय वासना में। क्या करना है? सिद्धांत को समझते हुए यथा शक्य आचरण में उतारने का प्रयत्न करेंगे।

बन्धुओ! हमारे जीवन का, मनुष्य जीवन का एक ही लक्ष्य होना चाहिए—समाधि। ऐसी मन में धारणा करें, अवधारणा करें और इस दिशा में अपने कदम आगे बढ़ाएंगे तो अपने जीवन को धन्य बनाएंगे।

17 अगस्त, 2019

15

जे आचरहिं ते नर न घनेरे

प्रभु महावीर ने साधना पथ स्वीकार किया और 12 वर्षों तक स्वयं को साधा। साधते गए, साधते गए, नवोन्मेष प्राप्त होते रहे। जब तक उन्होंने परिपूर्णता प्राप्त नहीं कर ली, साधना के पथ से पीछे नहीं हटे। 'कार्यं साधयामि' अर्थात् कार्य सिद्ध करना है। कार्य सिद्ध करने के लिए उसमें लगे रहना पड़ेगा। थोड़-सा चलकर जो व्यक्ति पीछे देखे कि अरे! इतना चलकर आ गया किंतु अभी तक मंजिल प्राप्त नहीं हुई, वह व्यक्ति आगे की गति सम्यक् प्रकार से नहीं कर पाएगा। बार-बार पीछे की ओर देखेगा कि मैंने इतना रास्ता तय कर लिया। मैंने इतना रास्ता तय कर लिया। अब मैं और कितना चलूंगा, कब तक चलता रहूंगा? यह विकल्प, यह प्रश्न जैसे ही मन में पैदा होता है, वहीं गति में विराम लगने लगता है। वह गति फिर आगे बढ़ाने में समर्थ नहीं होती। मन में ऊहापोह चालू हो जाती है। भगवान् महावीर ने इन सारे विकल्पों को शांत कर दिया। उन्होंने निश्चय किया विकल्पों में नहीं जाना मुझे। मैं जिस दिशा में आगे बढ़ रहा हूं उसी दिशा में आगे बढ़ना है मुझे! और वे उसी दिशा में आगे बढ़ते रहे। एक समय ऐसा आया जब उन्होंने घाती कर्मों का क्षय किया। वे केवलज्ञान और केवल-दर्शन को प्राप्त हो गए और जैसे ही केवलज्ञान, केवल-दर्शन प्राप्त हो गये, उनकी देशना प्रारंभ हो गई। उन्होंने उपदेश देना चालू कर दिया। उपदेश देने के संदर्भ में कहा जाता है कि 'परउपदेश कुशल बहुतेरे' यानी दूसरों को उपदेश देने में बहुत लोग कुशल हैं। जो दूसरों को उपदेश तो दे देते हैं किंतु 'जे आचरहिं ते नर न घनेरे।' स्वयं रिक्त बने रहते हैं। खाली बने रहते हैं या दूसरों शब्दों में कहूं तो स्वयं को जो रिक्त नहीं कर पाते हैं। भरे रहते हैं। स्वयं भरे रहते हैं वैसे उपदेश देने वालों की कमी नहीं है। किंतु भगवान् महावीर ने जो उपदेश दिया वह अद्भुत था। एक-एक शब्द उन्होंने जो व्यक्त किया

वह जीवन में जीया गया था। जिसको जीया था उन्होंने वही बात कही। ऐसे उपदेष्टा के लिए कह सकते हैं कि 'जे आचरहिं ते नर न घनेरे'।

युग जिस तेजी से, जिस रफ्तार से बढ़ रहा है, उसमें नए-नए आविष्कार, नए-नए प्रयोग और अनेक प्रकार के नए-नए शोध व्यक्ति के भीतर तर्क पैदा करने वाले हो जाते हैं। अनेक प्रकार के विकल्प/अनेक प्रकार के विचार पैदा करने वाले होते हैं। समय के साथ वे उसका प्रकटीकरण भी करते रहते हैं कि ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिए। कैसा होना चाहिए? यह बात घट चुकी एक प्रायोगिक घटना के आधार पर हम जान लें। अतीत, जैसा कि महासती जी ने फरमाया, चार दृष्टि से अतीत प्रेरणा लेने के लिए होता है। अतीत में अपने चेहरे को देखने की आवश्यकता होती है। तब और अब– तब और अब में क्या अंतर है? तब और अब वैसा ही है तो फिर मैंने इतने वर्षों तक क्या किया? तब और अब में क्या अंतर किया? भगवान् महावीर ने साधना पथ जिस दिन स्वीकार किया, उस दिन से 12 वर्ष/साढ़े 12 वर्ष के बाद में क्या अंतर आया? यह देखना जरूरी होता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. का भोपाल में विराजना हो रहा था। अनेक संघ चाहते थे कि हमारे यहां चातुर्मास हो। हमारे क्षेत्र में विचरण हो। वहां पर भी ऐसी ही कुछ बातें चलीं किंतु मूल बात भोपाल की थी। एक दिन गुरुदेव रूम में विराज रहे थे। एक भाई उपस्थित हुआ और एक कोने में बैठ गया। गुरुदेव अपने काम में रत थे। किंतु सोचा कोई बैठा है तो कोई-न-कोई उद्देश्य होगा। गुरुदेव ने कहा कि क्या बात है? वह बोला 'महाराज! म्हारो कालजो बळे'। उसके ऐसा कहने पर आचार्य श्री ने कहा कि क्या हुआ भाई? उसने जवाब में पूछा, गुरुदेव! आप आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. के ही चेले हो? गुरु महाराज बोले कि हां भाई हूं तो उन्हीं का चेला। चेला तो उन्हीं का ही हूं किंतु तुम्हारे कालजा जलने और मेरा उनका चेला होने में क्या संबंध है? गुरुदेव! आपके ध्यान में होगा ही मैंने यहां से सारी रिपोर्ट, उपाचार्य श्री के चरणों में भेजी थी कि महाराज! हम मोड़ जाति के बनिये हैं। हमारे घरों की संख्या भी काफी है किंतु यहां जो चातुर्मास हुआ था उससे हम लोगों के भीतर जैन धर्म के प्रति नफरत हो गई। आचार्य पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी म.सा. भी मोड़ जाति के बनिये थे। उस भाई ने कहा कि हमने उनका एक समय देखा और उसके बाद में एक आपका समय देख रहे हैं कि प्रतिदिन व्याख्यान हो रहा है। आपके संतों की चर्या हो

रही है। गोचरी, पानी, व्याख्यान आदि सारी चर्याओं का हम अनुभव कर रहे हैं और आज मैं हिम्मत करके आपके चरणों में पहुंचा हूं। गुरुदेव प्रचार के नाम पर जिस प्रकार का वातावरण चल रहा है। जिस प्रकार का वातावरण हो रहा है– हकीकत में क्या प्रचार होगा मैं नहीं कह सकता किंतु हम लोग तो धर्म से विमुख हो गए। हमारी मोड़ जाति का एक अलग स्थानक है और हम चातुर्मास भी करवाते थे। धर्म-ध्यान करते थे, सामायिक-पौषध होता था। किंतु, अब वहां पर यज्ञ-होम करवा रहे हैं। गीता का पाठ हम कर रहे हैं। जैन धर्म या साधु जीवन की चर्याओं को देखकर हमारे विचार काफी कुछ ऊंचे-नीचे हो गए। किस कारण से हुए? प्रचार का युग है, प्रचार होना चाहिए। बिना प्रचार के हम पिछड़ जाएंगे। जब यह आवाज उठा करती है कि प्रचार होना चाहिए, बिना प्रचार के हम पिछड़ जाएंगे– प्रश्न है, प्रचार के बिना पिछड़ेंगे या आचार के बिना पिछड़ेंगे? यह विचार करने की बात है कि हम प्रचार करने से आगे बढ़ेंगे या आचरण करने से आगे बढ़ेंगे? हमने रास्ता ही उलटा ले लिया। हमने बहुत वाह-वाही लेना शुरू कर दिया– प्रचार, प्रचार, प्रचार। प्रचार शब्दों से नहीं, जीवन से होना चाहिए और जीवंत प्रचार हकीकत में आचरण से होगा। वह केवल शब्दों से होने वाला नहीं है। केवल शब्दों से यदि वह प्रचार होता तो भगवान् महावीर दीक्षा लेने के बाद से प्रचार चालू कर सकते थे। 12 वर्षों में कितना ही प्रचार कर देते और कितना ही कुछ धर्म के विषय में हमें बता देते।

विचार कीजिए 12 वर्षों तक उन्होंने स्वयं को साधा। स्वयं को जाना। स्वयं से, अपनी आत्मा से अपनी आत्मा का साक्षात्कार किया। क्या-क्या विघ्न आते हैं, क्या-क्या बाधाएं आती हैं वह उन्होंने जाना। उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से यह जाना कि हमारी गति में बाधक-अवरोधक, हमारे मन की दुष्प्रवृत्तियां हैं। जो लगती नहीं है कि दुष्प्रवृत्ति है। जो देखने में सुंदर है। किंतु हकीकत में हमारे लिए विघ्न के रूप में हैं, बाधा के रूप में हैं– वह है प्रशंसा की चाह। वह है यशोकामना। मेरी प्रशंसा कैसे होगी! लोगों में मेरी पहचान कैसे होगी? मेरा यश, मेरी कीर्ति हर दिशा में बढ़नी चाहिए। फैलनी चाहिए– यह मानसिकता एक भयंकर बीमारी का रूप है। हम यदि आगमों को अच्छी तरह से पढ़ें तो जगह-जगह पर भगवान् ने इस पर चोट की है। इस रास्ते पर चलेंगे तो भटक जाएंगे। किंतु फिर भी हम कितना उससे बच पाते हैं और कितना उस रास्ते से हट पाते हैं यह व्यक्तिगत सोचने की बात है।

भगवानदास जी कहने लगे कि लंबे समय तक बिना साक्षियों के बहनों के बीच में संत बैठते और उन्हें कुछ बोलें तो कहते कि 'अरे! भगवानदास जी, आप भी कहां पुराणपंथी हो। समय कहां चला गया है? यहां लोग आकाश और पाताल को छानते जा रहे हैं और यह चर्चा कोई साक्षी में नहीं है। इतनी-इतनी बहनें हैं और फिर क्या साक्षी की जरूरत है?' नौ बाल ब्रह्मचारी की बाड़ में बताया गया है। तीसरी बाड़ में दो विकल्प दिए हैं। एक विकल्प दिया है कि जिस आसन पर, जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो, उस स्थान पर नहीं बैठना है और दूसरा विकल्प बताया कि जहां स्त्रियों का समुदाय हो, उसके बीच नहीं बैठना है। स्पष्ट है कि बिना साक्षी के, बिना श्रावकों के स्त्रियों के बीच नहीं बैठना चाहिए। एक हजार स्त्रियां मौजूद हैं, किंतु एक भी भाई नहीं है तो, शास्त्रकार कहते हैं कि व्याख्यान नहीं होगा। एक भाई के उपस्थित होने पर ही प्रवचन हो सकता है, भले ही एक हजार बहनें बैठी रहें। क्यों कहा शास्त्रकारों ने ऐसा? क्यों ऐसी बात कही? औरतों के बीच नहीं बैठना चाहिए। ऐसे तो मन जब तक चंगा है तब तक सब ठीक है, सब अच्छा है किंतु मन की गति को किसने जाना? चरम शरीरी आत्मा रथनेमि, राजीमती को देखकर विचलित हो गए हैं। ऐसे एक नहीं, कई आख्यान है किंतु उन सभी को अभी कहने की स्थिति नहीं है। एक नमूना कि चरम शरीरी भी जब विचलित हो सकता है तो किसी को यह हेकड़ी नहीं रखनी चाहिए कि मैं तो 20 साल का दीक्षित हूं। मैं तो 25 साल का दीक्षित हूं। 20 साल और 25 साल कुछ भी नहीं होते हैं। मन एक झटका देता है और व्यक्ति डांवांडोल हो जाता है।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान् ने कहा, जिस स्थान पर बिल्ली है चूहों को उस स्थान पर कभी नहीं रहना चाहिए। चूहों के लिए वह स्थान कभी भी प्रशस्त नहीं है। कोई चूहा यदि अपनी हेकड़ी दिखावे कि क्या डरना है बिल्ली से? क्या कर लेगी बिल्ली हमारा? क्या हो जाता है थोड़ी देर में? बिल्ली किसको पकड़ लेती है? वह चला था बड़ा सज-धजकर कि देख लूंगा बिल्ली को और क्या देखा बिल्ली को? बिल्ली ने देखा या उसने देखा? बिल्ली ने चूहे को देखा या चूहे ने बिल्ली को देखा? इसलिए भगवान् ने आचारांग सूत्र और अन्य आगमों में बहुत बार बताया है कि हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। मुनि को, संयमी जीवन जीने वाले को– संयमी जीवन में रहने के लिए बाह्य मर्यादा की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

ये मर्यादाएं संयमी जीवन की सुरक्षा के लिए तट हैं। इन तटबंधों के बीच में, मर्यादाओं के बीच में हम चलते हैं तो हम अपनी चेतना के प्रवाह को सुव्यवस्थित रूप से चलाने में समर्थ होते हैं।

भगवानदास जी ने कहा कि महाराज, इतना ही नहीं, राग-रागिनियों में साधु बहनों को, बहनें साधुओं को एक-दूसरे को गीत सिखाते। साथ-साथ राग आलापते। हमने संत भगवंतों से स्पष्ट सुना है कि जिस समय मुनि बोल रहा है बहनें उस समय साथ में नहीं बोलें। साध्वियां जिस समय बोल रही हैं उस समय श्रावक साथ में राग का मिलान नहीं करें। आप कहते हो कि म.सा.! इससे क्या होता है? भले ही कुछ भी नहीं होता होगा किंतु नहीं करना है मतलब नहीं करना है। हमें ज्यादा पंचायती में नहीं जाना है कि भगवान् ने ऐसा क्यों कहा? क्या हेतु है? यह भगवान् की आज्ञा है। हम भगवान् के उस दिव्य ज्ञान से अपना ज्ञान ज्यादा नहीं बता सकते। उन्होंने जो मर्यादा दे दी, तो दे दी। चाहे कुछ भी नहीं लग रहा है किंतु हमें उस मर्यादा का पालन करना चाहिए। हो सकता है कि हमारी बुद्धि उतनी नहीं है। हम उसका रिज़न नहीं जान रहे हों। किंतु भगवान् ने कहा है तो कहा है। शास्त्रकारों ने कहा है तो कहा है। हमारी दृष्टि उनसे ज्यादा विकसित नहीं हो गई है। हमारी दृष्टि उनसे ज्यादा विशाल नहीं हो गई है कि हम उसमें संशोधन करने की कोई बात करें। बहुत स्पष्ट रूप से बात करें तो मुनि को उसी प्रकार से पालन करना चाहिए। चलना चाहिए। क्योंकि मुनि ने दीक्षा ली है भगवान् के आगमों के आधार पर, भगवान् के ज्ञान के आधार से ली है। तो जिस आधार से, जिस भावना से, जिस श्रद्धा से यह साधु जीवन स्वीकार किया गया है उसी श्रद्धा से हमको उसमें चलना चाहिए। 'जाए सद्धाएं निक्खंतो तमेव अणुपालिया' दूसरी सारी बातों को छोड़कर केवल एक उद्देश्य के साथ कि मैंने जिस उद्देश्य से साधु जीवन स्वीकार किया है मुझे उसी उद्देश्य को पूर्ण करना है। अपना कदम आगे बढ़ाना है। कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है। कोई दूसरी-तीसरी बात नहीं है। जिस श्रद्धा से, जिस उमंग से, जिस लक्ष्य, जिस उद्देश्य को मुख्य बनाकर मैं निकला हूं उसी उद्देश्य के अनुरूप मेरे कदम आगे बढ़ने चाहिए।

निकले तो हैं हम व्याख्यान सुनने के लिए और बीच में डुगडुगी वाला मिल गया! बाजार में लोग जमा हो गए और हम भी वहां बंदरिया का खेल देखने के लिए रुक गए। रुके थोड़ी देर के लिए किंतु देखते-देखते कितना समय निकल गया? और हम धर्म के व्याख्यान से वंचित रह गए। मन फिसल

जाता है। मन बड़ा विचित्र है। इसको जितना साधकर रखा जाएगा और जितना स्वाध्याय, ध्यान, साधना आदि क्रियाओं में लगाए रखा जाएगा उतना ही लाभ का कारण है। 'खिण निकमो रहणो' एक क्षण के लिए भी मन को छूट नहीं देनी। एक क्षण के लिए भी विराम नहीं देना। आप कहते हो कि महाराज थक जाते हैं। हमारे गुरुदेव फरमाते थे कि विषय का परिवर्तन कर लो। स्थान का परिवर्तन कर लो तुम्हारी थकान दूर हो जाएगी। यदि मैं गणितानुयोग का अध्ययन कर रहा हूं और पढ़ते-पढ़ते दिमाग भारी होने लगा तो उसे धर्मकथानुयोग में लगा लो और धर्मकथानुयोग पढ़ते-पढ़ते वापस मन ऊबने लगा कि बहुत पढ़ लिया तो तत्त्व को सामने रखो जिसमें आप विचार कर सकते हो। उसको करते-करते मन भर जाए तो आचार पक्ष की कोई बात ले लो कि वे क्या बोल रहे हैं? चरणकरणानुयोग को हम सामने रखें कि मुझे कैसे चलना है? क्या करना है? क्या विचार करना है? इस प्रकार से यदि विषय का बदलाव होता रहता है तो मन वापस ताजा हो जाता है। मन में वही ताजगी आ जाती है। आज के मनोवैज्ञानिक या वैज्ञानिक जो भी समझ लीजिए, वे कहते हैं कि यदि पढ़ते-पढ़ते बोरियत हो जाए तो एक बार पढ़ाई बंद कर दो और बिना कुछ विचार किए केवल आकाश को देखना शुरू कर दो। सिर्फ आकाश को देखो। पांच-दस मिनट के लिए आकाश को देखो मन शांत हो जाएगा। फिर वापस अध्ययन में जाओ। उनका मानना है कि 45 मिनट तक एक विषय में मन लगा रहता है उसके बाद मन उछाला खा जाता है। मन उस विषय से हट जाता है। हमारे तत्त्वार्थ सूत्र में भी इस प्रकार की चर्चाएं आती हैं जिसमें एक मुहूर्त तक के लिए बताया है कि ध्यान की धारा एक मुहूर्त तक चल सकती है। वह मुहूर्त 48 मिनट का होता है। 48 मिनट और 45 मिनट में ज्यादा कोई फर्क नहीं पड़ता है। बात लगभग मिलती-जुलती आ रही है। उसके बाद विषय चेंज कर दो। विषय चेंज किया और वापस मन उसी में लीन हो जाता है। और ऐसे यदि चलता रहता है तो हम साधना में आगे बढ़ेंगे। साधना की ऊंचाइयों को प्राप्त करेंगे। अन्यथा यश की कामना हो गई, प्रशंसा की प्यास सताने लग गई तो हम निष्ठितार्थ नहीं बन सकेंगे। निष्ठितार्थ का अर्थ होता है जिसने आत्महित के लिए कार्य किया है। आत्महित में ही चल रहा है। और दूसरे शब्दों में कहा गया है कि जिसने विषय-सुख की प्यास को जीत लिया या विषय सुख की प्यास नहीं है। जो उसका पिपासु नहीं है। वह प्यास जिसकी चली गई है। अब उसे विषय

सुख की प्यास नहीं है वह होता है– निष्ठितार्थ। नैष्ठिक रूप से जिसने उसको स्वीकार कर लिया, वह साधक चाहे गृहस्थ हो या साधु बन गया है, वह अपने लक्ष्य की दिशा में गतिशील हो।

भगवानदास जी कहते हैं कि महाराज, 'मैं दिन में तीन बार, चार बार स्थानक आता था, किंतु संतों को अटपटा लगता।' वे कहते, भगवानदास जी! आप क्या चौकीदारी करते रहते हो? हमारे पीछे-पीछे क्या चौकीदारी करते हो। हम यदि साफ हैं तो कोई दस बार आवे तो हमें क्यों विचार होना चाहिए? यह चौकीदारी करने की बात कहां से आ गई? किंतु यदि चौकीदारी कर रहा है और मैं यदि एकदम क्लीन हूं, एकदम साफ हूं, मेरे में कोई भी गलती नहीं है तो मेरी कोई भी चौकीदारी करे या जासूसी करे, मेरा क्या जाएगा? मेरे मन में अगर चोर बैठा हुआ होगा तो हम सोचेंगे कि वह आदमी यहां पर किस काम से आया है? क्या-क्या लगेगा? मेरी चौकसी की जा रही है, मेरे को घेर कर मेरे पर दृष्टि रखी जा रही है कि मैं क्या कर रहा हूं? वे क्या देखने के लिए आ रहे हैं? साधक को ऐसा भ्रम नहीं पालना चाहिए। मस्तिष्क क्लीयर रखना चाहिए, उसको खुला रखना चाहिए। खुली पुस्तक परीक्षा देते हैं उस तरह रहना चाहिए। ओपन बुक एग्ज़ाम होता है उसी तरह अपने मस्तिष्क को रखना चाहिए। सामान्यतः परीक्षा में कोई बुक खोलकर बैठे तो कुछ न कुछ डर या भ्रम बना रहता है कि कोई देख तो नहीं लेगा। उसके मन में डाउट होता रहता है। कोई देख न ले, कोई देख न ले। किंतु ओपन बुक एग्ज़ाम हो तो कोई भले ही दस किताबें खोलकर बैठे हमको कोई दिक्कत है ही नहीं। कोई कितनी ही बार चक्कर लगाए, हम उस पुस्तक को खोलकर एग्ज़ाम दे रहे हैं फिर भी हमें कोई डर नहीं है। वैसे ही जीवन की पोथी खुली पोथी होनी चाहिए। खुली रहनी चाहिए। कोई भी देखे कभी-भी देखे। जब भी देखे मेरे मन में फर्क नहीं आना चाहिए कि मेरे पीछे ही क्यों लगा हुआ है। मेरे को क्यों देख रहे हैं। मन में यदि चोर होता है, मन में कोई त्रुटि होती है तो उसकी दृष्टि यही रहती है कि कोई मुझे क्यों देख रहा है? देखने वाले की दृष्टि वैसी न भी हो पर जिस मन में जैसा है उसे वही नजर आएगा।

भगवानदास जी को संतों के द्वारा चौकीदार कहे जाने पर भी उन्होंने कहा कि हमने चातुर्मास करवाया था तो हमारी जवाबदारी थी। इसलिए मैं यह देखने के लिए चला जाता था कि किसी को कोई परेशानी तो नहीं है।

चातुर्मास में किसी को किसी प्रकार का व्यवधान तो नहीं है। एक बार तो यहां तक का दृश्य देख लिया कि एक संत किसी युवती के कंधे पर हाथ देकर खड़ा है। यह किसका परिणाम है? (शब्दों पर जोर देते हुए) यह किसका परिणाम है? प्रचार होना चाहिए? यह प्रचार हमें कहां ले जाएगा? मंच पर हमारे भाषण कुछ होते हैं और बाद में हम कुछ और बन जाते हैं। यह कार्य उपयुक्त नहीं है। वहां पर हमारे मन में उतार-चढ़ाव आएगा। इतना ही नहीं, भगवानदास जी ने जो रिपोर्ट उपाचार्य श्री जी को भेजी, उसमें बहुत सारी बातें थीं। एक बार तो मुनियों को पोशाक बदले हुए सिनेमा हॉल में भी देखा गया। यह किस कारण से है? बताओ, आप किस कारण से है? प्रचार क्या करना है? हमको प्रचार चाहिए या आचार? आचार चाहिए या विचार चाहिए या फिर प्रचार चाहिए? क्या चाहिए आपको? आचरण चाहिए या प्रचार? आज बहुत से लोग चातुर्मास के लिए विनती करते हुए चाहते हैं कि बढ़िया व्याख्यान वाले संतों को भेजो, बढ़िया व्याख्यान वाली सतियों को भेजो। बढ़िया व्याख्यान की परिभाषा क्या है? अभी मैं यहां पर इधर-उधर की बातें, कुछ हँसी-मजाक करूं और आपको लोट-पोट कर दूं तो आप कहोगे कि आहा! क्या व्याख्यान है। क्या महाराज हैं? हमारा लक्ष्य क्या होना चाहिए? हमारा लक्ष्य होना चाहिए हमें पर्युपासना करनी है। आप देखिए, लोग मूर्ति की पर्युपासना करते हैं। मूर्ति कुछ बोलती नहीं है फिर भी उसके सामने लोग बैठते हैं। बैठते हैं या नहीं बैठते हैं? बैठकर घंटे-दो घंटे तक पर्युपासना करते हैं। लोग घंटों तक उस मूर्ति के सामने बैठ जाते हैं, उससे क्या मिला? उसको जो मिला, वह वही बता सकता है कि क्या मिला।

श्रद्धा से आत्मा को प्राप्त होता है। हमारी भी श्रद्धा होती होगी। हम मूर्ति बने हुए साधु के पास केवल बैठे रहेंगे भले ही प्रवचन नहीं हो रहा है। व्याख्यान नहीं हो रहा है। हमें प्रवचन का लाभ नहीं मिल रहा है। किंतु साधु का जीवन, उनकी चर्या ही हमारे लिए प्रवचन होगी। जो हम ले सकें वही प्रवचन है। ज्ञान लेना है तो उनकी चर्या से ज्ञान ले सकते हैं। चर्या से समझ सकते हैं। वैसे भी कहा गया है कि व्याख्यान के शब्द जितने काम नहीं करते उतना व्यक्ति देखा-देखी ज्यादा सीखता है। हम जो कर रहे हैं दूसरा साधु उसको देखकर सीखेगा। देखकर किसी की चर्या को जल्दी से ग्रहण किया जा सकता है। घर में पिता, बेटे को सच के आचरण का उपदेश देता है कि बेटा झूठ नहीं बोलना। किंतु वे स्वयं झूठ बोलते हैं तो बताओ बेटा क्या सीखेगा?

यह बताओ कि वह झूठ बोलना सीखेगा या हमारे उपदेश को सीखेगा? हम उसको झूठ नहीं बोलने का उपदेश दे रहे हैं किंतु साधारणतः घर में झूठ बोला जा रहा है तो हमारे उपदेश का असर होगा या आचरण का? हमारे उपदेश का असर नहीं होगा। आचरण को जल्दी से ग्रहण किया जा सकता है। यह परीक्षा बहुत बार ली होगी कि बच्चों को हम जैसा बनाना चाहते हैं, वैसा वह नहीं बन रहा है बल्कि जैसा हम जी रहे हैं– बच्चा वैसा ही बन जाता है। जैसा हमारा जीवन होता है, जैसा जीवन हम जी रहे हैं– बच्चा भी उसी के अनुरूप ढलता हुआ चला जाता है। हमारा जीवन यदि झूठ बोलता हुआ महसूस होगा तो बच्चों को अलग से शिक्षा देने की जरूरत नहीं पड़ेगी। बच्चा अपने आप उसी मार्ग पर चलेगा। उसी रास्ते पर चलेगा।

इसलिए आचार्य पूज्य गुरुदेव ने अपनी डायरी में सन् 1951 में यह बात लिखी थी। लगभग भाव यही है कि सच्चा प्रचार आचरण से होता है– प्रवचन से नहीं। जो केवल ऊपरी प्रचार-प्रसार को चाहता है वह भटक सकता है। और, आत्मा के साथ जुड़कर जो आचरण करता है वह सत्य को प्राप्त करता है। अपने जीवन में वह परमात्मा से साक्षात्कार करता है अर्थात् स्वयं को आत्मा से परमात्मा तक पहुंचा सकता है। केवल प्रचार से और केवल ज्ञान से कभी कल्याण नहीं होगा। 'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः' ज्ञान और क्रिया से मुक्ति होगी। कल्याण होगा। ज्ञान के साथ क्रिया होगी, आचरण होगा तो ही मुक्ति को प्राप्त कर पाएंगे। इसलिए आज हम जिस प्रकार से प्रचार-प्रसार की हवाओं में बह रहे हैं, हमें समझ लेना चाहिए कि वह हकीकत नहीं है। एक बार-दो बार हम किसी के विचार जान लेते हैं तो फिर उनके सामने चर्चा नहीं करते हैं। एक-दो बार टटोलने के लिए बात कर लेते हैं तो बहुत-से लोग यह कहने वाले मिल जाते हैं– नहीं, ऐसी बात नहीं है। उनको मालूम हो जाता है कि ये (माइक आदि में) बोलने वाले नहीं हैं। प्रचार-प्रसार के साधनों का उपयोग करने वाले नहीं हैं। फिर वे स्वयं कहने लग जाते हैं कि जब ये दूसरे साधनों का उपयोग नहीं करते हैं तो माइक का कैसे करेंगे। हमारा लक्ष्य प्रवचन देना है या फिर हमारा लक्ष्य, आत्म-कल्याण का है? हम प्रवचन नहीं देंगे तो भी चलेगा। हमने बहुत बार सुना होगा, पढ़ा होगा स्थूलभद्र मुनिराज के प्रसंग में कि अन्य मुनियों ने दूसरे-दूसरे स्थान पर जाकर चातुर्मास किया। सिंह की गुफा में जाकर चातुर्मास किया। सांप की बांबी पर और कुएं की मुंडेर पर जाकर चातुर्मास किया। वहां पर कौन आता

था व्याख्यान सुनने के लिए। यहां आ गए सुन लिया। सुनने में कोई हानि नहीं है उससे हमारा स्वाध्याय होता है। हमारी अनुप्रेक्षा होती है। हमारा चिंतन होता है। भगवान् यह बात कहते हैं कि उपदेश देने वाला बिना किसी लाग-लपेट के दे रहा है तो उसके कर्मों की निश्चित रूप से निर्जरा होगी। सुनने वाले के कर्मों की निर्जरा हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। क्योंकि सुनने वाला अपने मन से बातें गढ़ लेता है। इसलिए सुनने वाले के कर्मों की निर्जरा हो या नहीं भी हो। सुनने वाला अपनी मरजी के अर्थ लगाएगा। यदि सही दिशा में तत्त्व के रूप में उसको स्वीकार करेगा तो निश्चित रूप से वह भी कर्मों की निर्जरा करेगा और वह दूसरे अर्थों में चला जाएगा तो हो सकता है कि वह निर्जरा नहीं करे। इसलिए सुनने वाले के कर्मों की निर्जरा नहीं भी हो किंतु बोलने वाले के लिए निश्चित है कि वह कर्मों की निर्जरा करने वाला होता है।

मुमुक्षु-आत्माओं ने भी अपने-अपने विचार आप लोगों के बीच में प्रस्तुत कर दिए। आप लोगों के मन में भी आ रहा होगा कि ये रोज आ रहे हैं। अध्ययन चल रहा है। क्या हो रहा होगा? कैसे हो रहा होगा? उनका शिविर आज पूर्ण हुआ। उस प्रसंग से उन्होंने अपनी योजना बनाई और उसके अनुसार उन्होंने कार्य किया। लगभग 15 से 20 मिनट का समय मांगा गया और लगभग 20 मिनट में उन्होंने अपना कार्य संपादित किया। (दीक्षार्थी बहन को इंगित करते हुए) इनका क्या नाम है? वोनिशा जी। यह नया नाम है। यशा जी तो मैंने पहले सुना था यह वोनिशा जी पहली बार सुना है। नए-नए युग में नए-नए नाम आ गए हैं। अभी तो ये रंगीन कपड़ों में हैं। और वे बहनें जो अभी सफेद वस्त्र धारण किए हुए हैं यह सफेद वस्त्र थोड़े ही दिन रहेगा। फिर रंगीन वस्त्र हो जाएंगे। और वोनिशा जी के अभी रंगीन वस्त्र हैं, थोड़े समय बाद फिर सफेद वस्त्र हो जाएंगे। सफेद वस्त्र में ही उनको आना होगा। उनको दीक्षा की जल्दी लगी हुई है। इसलिए मंच पर हाजिर हैं।

और किसको जल्दी है? या अभी दो-तीन शिविर और अटेंड करना है। हमें केवल दुनिया को बताने के लिए नहीं बोलना है, हकीकत में बोलना है। नहीं तो चुप रह जाना है। हम जिस उद्देश्य से इस मार्ग को चुन रहे हैं, जिस उद्देश्य से हम साधना के पथ को स्वीकार कर रहे हैं– घर छोड़ने की, परिवार वालों को छोड़ने की तैयारी कर रहे हैं। माता-पिता को छोड़ेंगे, सबको छोड़ने की तैयारी में हैं। जब अपने भौतिक सुख को त्यागने की तैयारी चल रही

है तो हमें विषय-सुख, यश और कामना में अपने आप को नहीं लगाना कि मेरी प्रशंसा होनी चाहिए। मैं ऐसा व्याख्यान दूं कि लोग कहने लग जाएं कि वाह! क्या व्याख्यान हो रहा है। इस प्रकार के भाव, इस प्रकार के विचार हमारे भीतर कहीं से कहीं तक पनपें नहीं। इसकी समीक्षा हमें हर वक्त करते रहना है। हर वक्त करते रहना चाहिए। हर वक्त का मतलब हर समय हमें हमारी हर क्रिया के प्रति सावधानी रखनी चाहिए। 'क्रिया संवर सार रे' हमारी क्रियाओं का निचोड़ कर्म बंध नहीं संवर होना चाहिए। एक इतनी-सी बात या यह हमारी कसौटी है। उसमें हम अपने विचारों को कसते रहेंगे, अपनी भावनाओं को कसते रहेंगे तो सहसा हम गलत दिशा में नहीं बढ़ पाएंगे। कौन-सी कसौटी है? 'क्रिया संवर सार रे' कि मेरी जो भी क्रिया हो रही है—चाहे मानसिक क्रिया हो या वाचिक क्रिया और चाहे काया से हो—जो कुछ भी क्रिया हो रही है वे सारी क्रियाएं आस्रव का कारण नहीं बनें। उन क्रियाओं से संवर की साधना बने। संवर की आराधना, संवर को पोषण मिले। आप लोगों को भी संवर की प्रेरणा दी जाती है। श्री मदन मुनि जी बोलते-बोलते थक जाते हैं फिर भी बोलते हैं। बोल रहे हैं। चोट पड़ते रहनी चाहिए—संवर, संवर, संवर। घर में भी सोएंगे, किंतु यहां आस्रवों का त्याग करके सोएंगे। साधु बनने के बाद तीन करण, तीन योग से आस्रव रुक जाने चाहिए। इस प्रकार हमारी प्रत्येक क्रिया चाहे मन से, वचन से या काया से हो वह एकमात्र संवर रूप हो। ऐसा लक्ष्य रहेगा, ऐसा प्रयत्न रहेगा तो हमारा साधु बनना, हमारा इस मार्ग पर बढ़ते रहना और लक्ष्य को पाना—वह सफल होगा। अन्यथा कब फिसल जाएं, कैसी दशा हो जाए, वापस वही बात होगी कि हम उलटी दिशा में चल रहे हैं। हमारी अब वह दशा नहीं बने। हमारे कदम जितने भी बढ़ेंगे वे अपने उद्देश्य की तरफ, मंजिल की तरफ बढ़ेंगे। एक भी कदम पीछे की ओर नहीं बढ़ेगा—ऐसा लक्ष्य करते हुए हम अपने जीवन को धन्य बनाएंगे।

एक मुख्य बिन्दु बताना रह गया। बताना यह था कि भगवानदास जी ने गुरुदेव से निवेदन किया कि यदि एक महीने के लिए हमें आपका सान्निध्य मिल जाए तो मैं विश्वास करता हूं कि हम बिछुड़े हुए भाई वापस मिल जाएंगे। आप यहां एक महीने के लिए विराज जाएं तो हम बिछड़े हुए जैन धर्म के अनुयायी, वापस धर्म की आराधना करने वाले बन जाएंगे। आचार्य देव ने जवाब दिया कि नाव में यदि एक छोटा-सा छेद होगा तो वह कभी भी

नाव को डुबो सकता है। मेरे को यहां रहते हुए 29 दिन पूरे हो रहे हैं, तो मेरे आगे विहार करने की स्थिति रहेगी। एक महीने और यदि मैं रुकूंगा तो मैं एक कल्प को तोड़ूंगा। यदि एक कल्प को आज तोड़ेंगे तो कल मेरे दूसरे कल्प को तोड़ने की नीयत बन जाएगी। वे स्वयं समझे हुए थे। वे इतने प्रभावित हुए कि चाहे 100 घर हो या 150 घर हो किंतु आचार्य श्री कल्प तोड़ने को तैयार नहीं हैं। उसके बाद भगवानदास जी लगभग 100 किलोमीटर तक भोपाल से आगे प्रतिदिन गुरुदेव के साथ विहार करते रहे। जितना उनसे चला गया वे चलते और बाकी गाड़ी का सहारा लेते और हर जगह सेवा करते हुए अपनी आत्मा को भावित करने वाले बने। कहने का मतलब है कि प्रचार प्रसार साधु का उद्देश्य नहीं है। संघ की और धर्म की मर्यादाएं और कल्प उनके लिए मुख्य हैं। भगवान् महावीर की यही दृष्टि थी। यही धर्म था। हमें भी वही दृष्टि रखनी चाहिए।

18 अगस्त, 2019